हाथ को बड़ी अदा से घुमाते-फिराते । शेर को तरह अपने लम्बे बाल को और चारों तरफ़ अपने ओजस्वी शब्दों के तीरों की बौछार करते। सरकारी ों और उपाधिधारियों की तरफ उनके निशाने हमेशा चालू रहते थे। विहारी- क 'सर' बनने पर, उनके घोर पाप करने के और सात पुश्तों को लांछन लगाने अपने भाव सुखपाल ने श्रोताओं की कई सभाओं में प्रगट किये थे । हाल ही की गृहस्थी मिट चुकी थी, उनकी वाणी की विकरालता—शायद इसी कारण ं इतनी ज्यादा बढ़ गई थी।

गर्जना' पत्र उनकी निर्भयता के कारण बहुत लोकप्रिय हो गया था । किसीका हाज़ न रखना इस पत्र की खासियत थो। यदि पत्र अकेला ही सारे संसार में ाता तो बहुत पाठकों को यह पूरा विश्वास हो गया होता कि दुनिया में अगर ुरे लोग हैं तो वे राजा-महाराजा, अफ़सर और पदवीधारी ही हैं। सच्चे शूर- ी तरह किसीकी खुशामद के भाव वह अपने पत्र में न जाने देता था; किन्तु ी इस कीर्ति का कारण उसके युवक, स्वतंत्र, निडर और निष्कपट संपादक प्रिय को चुभती लेखनी ही थी। यह बात किसीसे छिपी न थी। बिहारीलाल िले 'सर' के खिताब के कारण उनकी उसने खूब खबर ली थी और लेखों के ले शीर्षक लिखने की सूझ पर पाठक उन्हें खूब पसन्द करते थे।

सर माखनदास को मात।'

'सादे बूट पर खिताब की पालिश।'

'संसार की बाज़ी में पैसे का सर हुकम।'

'ताज़े-से-ताज़ा यह सरकार का सर।'

इस तरह के भड़कीले शीर्षकों के नीचे लेख लिखकर सर बिहारीलाल का उल्लेख जाता। उपाधि न पानेवाले और भी कई लोगों ने बिहारीलाल का मज़ाक उड़ाया। र ऐसे लोग विवाहित न थे।

यह सब होते हुए भी ये दोनों गृहस्थ उपाधिधारियों के निमन्त्रण का तिरस्कार करते थे और फिर आज तो उनको सर बिहारीलाल ने खास निमन्त्रण जो भेजा मोटर से उतरते ही दोनों को बिहारीलाल बहुत आदर-पूर्वक बगीचे में ले गये उनका खास ख्याल रखने के लिए उन्होंने कुसुम से कहा।

कुसुम ने सुखपाल और शान्तिप्रिय को बगीचे में खेल-तमाशों की जगहों में

घुमाया और भोज का समय होने पर वह दोनों के साथ ही बैठी। जनता में सुखपाल और शान्तिप्रिय अपनी देश-सेवा के लिए देवता की तरह माने जाते थे और उनका कहीं भी शामिल होना प्रतिष्ठा की निशानी मानी जाती थी। बाहरी हलचल से जानकारी रखनेवाली कुसुम की दृष्टि में इन लोकप्रिय मेहमानों के प्रति सम्मान का भाव था। उसे केवल एक ही बात चिन्तित रखती थी कि ऐसे माननीय पुरुष हमारे प्रति कठोर क्यों हैं ?

बिहारीलाल के पुत्री के कारण ही कुसुम सभ्य-समाज में परिचित थी। इतना ही नहीं, पर वह उच्छृङ्खलता से रहित एक सद्‌गुणी युवती होने के कारण भी प्रसिद्ध थी। सुखपाल और शान्तिप्रिय ने भी उसकी ख्याति सुनी थी और उन्होंने कई बार इसके पहले भी उसे देखा था। बीस से पचास, या इससे भी अधिक साल की उम्र तक के पुरुषों में ख्याति-प्राप्त लड़कियों के प्रति एक अजीब दिलचस्पी होती है। आज कुसुम के परिचय का प्रसंग आया था। युवतियों की मौजूदगी में पुरुषों की चंचलता का कोई ठिकाना नहीं रहता। पुरुषों की ऐसी स्वाभाविक प्रकृति होती है। वकील और सम्पादक दोनों कुसुम के मौजूद रहने पर बहुत ही चञ्चल बन गये थे और इसके प्रदर्शन में कौन आगे बढ़ता है, इसकी होड़ करने लगे। फिर उनकी उत्सुक चंचलता ने गप-शप का रूप बदल लिया।

'इन वकील साहब का मिज़ाज कैसा है! यह आप जानती हैं ?' शान्तिप्रिय ने कुसुम से पूछा।

'अच्छा ही होना चाहिये।' दूसरा जवाब न मिलने पर कुसुम ने कहा।

'सचमुच! एक अच्छे भाट की तरह ही अच्छा है। उसमें से सिवा रुपए के और दूसरी चीज़ें छनकर बाहर निकल पड़ती हैं।' शान्तिप्रिय ने आँखों को चंचल बनाकर कहा।

'मैं मानता हूँ,' हाथ में एक सिगरेट लेते-लेते सुखपाल ने कहा। 'पर सम्पादकजी की एक खास खूबी के बारे में भी आप कुछ जानती हैं ?'

'वह क्या है ?' कुसुम ने पूछा।

'सम्पादक साहब के कान इतने लम्बे हैं कि दुनिया के किसी भी हिस्से में हुई आवाज़ का उन्हें पता लग जाता है,' सुखपाल ने कहा।

शान्तिप्रिय के चेहरे की रही-सही हँसी भी ग़ायब हो गई। और उसने

जवाब न देकर सुखपाल की हिम्मत बढ़ा दी—और उनके गले में, इतनी सुन्दर आवाज़ बढ़ानेवाली मशीन है कि उसे सुनने पर हज़ारों लोग बिना सुने नहीं रह सकते।

इतना कहकर सुखपाल खिलखिलाकर हँस पड़ा और कुसुम का समर्थन पाने के लिए उसकी तरफ़ देखने लगा। पर कुसुम ने अधिक ध्यान नहीं दिया।

छेड़े गये सम्पादक ने उत्तर दिया—हम दोनों में से भौंकने का काम कौन करता है, यह तो सभी जानते हैं।

कुसुम ने ऐसा भाव प्रकट किया, मानो उसने ये बातें सुनी ही नहीं और धीरे से वहाँ से उठकर गरबा नृत्य का प्रबन्ध करने चली गई।

सुशिक्षिता लड़कियों के गरबा का भी एक प्रोग्राम था। मेहमान लोग उस तरफ़ जाने लगे और देखते-देखते गरबा की जगह के आसपास उनकी एक खासी भीड़ जमा हो गई।

पुराने और नये ढंग के गीत गाये जाने लगे। भिन्न-भिन्न गीत उनकी लय के अनुसार अलग-अलग ताल और तरह-तरह की शारीरिक भाव-भङ्गियों के साथ गाये गये। भाँति-भाँति के वस्त्र और ज़ेवरों से सजी लड़कियों ने मानो किन्नरियों की तरह अपने कण्ठ की मिठास से संसार की जड़ता को विचलित कर दिया। कलापूर्ण सजाये गये दीपकों के प्रकाश ने सारे दृश्य को और भी अधिक सुन्दर बना दिया था।

कुसुम थक चुकी थी और गरबा चालू रहने पर भी वह पास के एक कुञ्ज की बैठक पर सुस्ताने बैठ गई। कुछ देर में ही उसे ऐसा मालूम हुआ कि बैठक की दूसरी तरफ़ भी कोई बैठा है। इसका उसे खयाल नहीं रहा कि वह पहले से बैठा है या उसके पहुँचने के बाद आ बैठा है। उसने उस तरफ़ से आँखें फेर लीं। फिर धुँधले उजेले में सिगरेट का कुछ धुआँ दिखाई दिया और उसे वकील सुखपाल की आवाज़ सुनाई पड़ी—ओ हो! तुम हो कुसुम? क्या थक गई हो?

कुसुम की समझ में यह नहीं आया कि इसका उत्तर दिया जाय या नहीं। पर जवाब मिले या न मिले, इसकी सुखपाल ने कोई फ़िक्र नहीं की।

'आपकी दूसरी तरफ़ जो अकेला खड़ा था, क्या वह आपका मास्टर है?' गरबा के आसपास जमा हुए मेहमानों की कुर्सियों के पीछे रमेश अकेला खड़ा था, उसीके बारे में सुखपाल ने पूछा।

'जी नहीं, वह तो मेरे पिता के यहाँ काम करते हैं।' कुसुम ने कहा।

'अच्छा, आपका नौकर होगा। वह आपके यहाँ कितने साल से है?'

'दो-तीन वर्ष हुए होंगे।' किसी के नौकर के बारे में इस तरह पूछताछ करना, कुसुम को अशिष्टतापूर्ण मालूम हुआ। क्यों यह ऐसी छोटी बातें कर रहा है? उसके हृदय में यह सवाल पैदा हुआ, क्योंकि नेताओं में ज़रा भी दोष दिखाई देना किसी को भी अच्छा नहीं लगता।

सुखपाल बिना इच्छा के उठ गया और मेहमानों की भीड़ में जा मिला।

कुसुम विचार में पड़ गई कि सुखपाल यहाँ पहले से बैठा था या बाद में आया। यदि पहले से ही बैठा होगा तो कुसुम का यह बर्ताव उसे कितना अनोखा लगा होगा? उसने मन में क्या सोचा होगा? फिर वह उठकर चला क्यों गया?

उसे यों अकेले बैठे अच्छा नहीं लगा और वह गरबा की तरफ़ फिर जाने लगी।

रास्ते में शान्तिप्रिय ने उसे बुलाकर कहा—कुसुम, तुम्हारी ही चर्चा हो रही है।

शान्तिप्रिय और रमेश दोनों खड़े-खड़े बातें कर रहे थे। कुसुम उनके पास पहुँची।

'अब आपको बीच में पड़ना चाहिये।' शान्तिप्रिय ने कहा—किस लिए? किससे? और किस तरह बीच में पड़ूँ? ये प्रश्न पूछने व्यर्थ हैं। जब तक संसार में अखबार हैं तब तक आगे बढ़ने का इन्हीं के द्वारा खास रास्ता तय हो चुका है।

'मैं आज की कई ख़बरें आपके अखबार केलिए माँग रहा हूँ, जिससे आपको आज की इस सफलता के लिए ख़ास मुबारकबादी दूँगा। पर आपके यह रमेश मुझे पूरी-पूरी जानकारी नहीं दे रहे हैं।' शान्तिप्रिय ने बताया।

'आपने जो देखा वही तो लिखना है। दूसरी और क्या जानकारी चाहिये?' कुसुम ने पूछा। अखबार में अपना नाम छपा हुआ देखने को धुँधली उत्सुकता कुसुम में जाग उठी। समाचार-पत्रों के आकर्षण का उसे लोभ होने लगा। अखबार के किसी कोने में अपना नाम छपा देखने का सौभाग्य जिसे मिलता है, उसे उस दिन सोने का सूर्य उगता मालूम होता है।

'आपका एक फ़ोटो मैं रमेश से माँगता था, पर यह तो कहते हैं कि 'मुझसे न माँगिये।' अब मैं आपसे ही माँगता हूँ। ब्लाक तैयार कराकर मैं अपने पत्र में प्रकाशित करूँगा। शान्तिप्रिय ने कहा।

'मैं पिताजी से पूछकर देखूँगी। कहकर कुसुम गरबा में शामिल हो गई।

गरबा ख़तम हुआ। रात ज्यादा हो गई थी। धीरे-धीरे मेहमान अपने-अपने घर चले गये।

कुसुम अपने कमरे में जाकर सो गई ; पर उसे नींद नहीं आई। वह जैसे ही आँखें मींचती कि तुरन्त तीन चेहरे उसके सामने आ जाते और वे थे—सुखपाल, शान्तिप्रिय और रमेश के।

पर क्या तीनों ही आकर्षक न थे ?

(२)

बिहारीलाल के ख़ूबसूरत मकान से थोड़ी दूर पर उनके बगीचे में ही एक छोटा बिना कुर्सी का नीचा मकान था। रमेश उसी में रहता था। बिहारीलाल को पढ़ने का बहुत शौक़ था। व्यापार में पड़ने और उसमें सफल होने के बाद पढ़ना-लिखना लोगों को अधिकतर व्यर्थ और बेकार मालूम होता है, पर बिहारीलाल को ऐसा न लगा। समाचार-पत्र, मासिक-पत्र और ऊँचे दर्जे की पुस्तकें पढ़े बिना उनसे रहा नहीं जाता था। व्यापार के एक बार जम जाने के बाद मालिक को अधिक देख-रेख रखने की ज़रूरत नहीं होती। बिहारीलाल फ़ुर्सत के समय दूसरे शौकों के बजाय पढ़ने की तरफ़ अधिक ध्यान दिया करते थे।

वे अच्छे पढ़ने लायक लेखों की खोज में रहते। उनमें से अच्छी और उपयोगी चीज़ें वे उतरवा लिया करते थे। कभी-कभी किसी अच्छी पुस्तक का विवेचन लिख रखते थे और अपना मत भी लिख लेते थे, पर अपने विचारों को छपाकर लोगों को उनका लाभ देने की उत्सुकता उनमें नहीं थी।

डाक्टरों ने उन्हें आँखों की खबरदारी रखने के लिए सचेत किया। इसलिए अब उन्होंने अपने लिए एक सेक्रेटरी (सहायक) रख लिया था। उन्हें समाचार-पत्र और पुस्तकें सुनाना और उनकी रुचि के अनुकूल ऐसे लेखों की तलाश में रहना जो उनके लिए महत्व के हों, उनके पत्रों का लिखना और उनकी तरफ़ से मामूली बात-चीत करना, उनके सेक्रेटरी के ख़ास काम थे।

अपने सेक्रेटरी को, उसकी उन्नति के अच्छे मौके मिलने पर, वे उसके भविष्य का ख्याल कर कोई अच्छी जगह दिला देते थे। और उसकी जगह किसी दूसरे नये आदमी को वे रख लेते थे। अधिकतर वे कालेज में से निकले ग्रेजुएट विद्यार्थियों मे

से ही अपना सेक्रेटरी बनाना पसन्द करते थे। दो-तीन वर्ष उसे वे अपने पास रखकर कोई ऐसी जगह दिला दिया करते थे जहाँ उसका भविष्य सुधर सके। रमेश की जगह के पहले के सेक्रेटरियों के अच्छी जगह पर हो जाने के बाद रमेश का उपकार हुआ। रमेश को भी यह काम पसन्द आया। उसके पढ़ने का ढंग भी बिहारीलाल को अच्छा लगा था और सीधे-सादे वह अपना काम करता जा रहा था। अपने को सौंपे हुए काम से अधिक किसी और बड़ी जगह में जाने के लिए वह उत्सुक नहीं रहता था। मकान में कौन आता है और कौन जाता है, बिहारीलाल क्या करते हैं और क्या नहीं करते, उनकी अमदनी कितनी है और खर्च कितना है, उनके संतान कितनी है और रिश्तेदार कितने हैं, उनकी लड़की विवाहिता है या कुमारी-यह जानने की उसकी क़तई इच्छा नहीं होती थी। दो-ढाई वर्ष से वह बिहारीलाल के पास रहता था, लेकिन न वह कभी दिलचस्पी के साथ कुसुम से बातें करता और न ऐसा मौक़ा ही कोई आने देता। युवक और युवती में बातचीत करने की जो स्वभाविक उत्सुकता होती है, उसे वह पास भी नहीं फटकने देता था। रमेश नये प्रसंग पैदा होने देने से पहले ही उन्हें टाल दिया करता था।

शाम होने से कुछ पहले बिहारीलाल और कुसुम घूमने निकल गये थे। उस समय 'गर्जना' पत्र का नया अङ्क रमेश के पास आया। स्वाभाविक उत्सुकता से उसने उसे खोला और पढ़ने लगा। पत्र में शान्तिप्रिय ने अपना वचन ठीक-ठीक पूरा किया। 'गरीब के आंसू' इस हेडिंग के नीचे बिहारीलाल का सम्पादक से मिलने का हाल पत्र में छपा हुआ था। कौन-कौन मेहमान आये थे, वे क्या करते थे, बिहारीलाल ने मेहमानों के मनोरंजन के लिए क्या-क्या प्रबन्ध किया था—इन सब बातों का व्यंग्य-पूर्ण वर्णन जब रमेश ने पढ़ा तब उसे स्वाभाविक ही गुस्सा हो आया। 'मेहमानी का यह बदला?' उसने सोचा। आखिरी फिकरे में हृदय को उत्तेजित करनेवाला हाल पत्र में इस प्रकार दिया गया था—अगर हमारा देश उन्नत होता तो हम इस मुलाक़ात को ज़रूर महत्त्व देते, पर बिहारीलाल 'सर' का चश्मा पहने बैठे हुए हैं; फिर भला अपने आसपास दिखाई देती भयानक गरीबी वह किस तरह देख सकते हैं? एक ही भोज में आठ-दस हज़ार रुपये का खून कर डालनेवाले पूँजीपतियों से कौन कहेगा कि उनकी गार्डन-पार्टी ने कम-से-कम पचास हज़ार गरीबों के एक वक्त का भोजन छीन लिया है? उनकी सुशील, पढ़ी-लिखी और सुन्दर पुत्री कुसुम ने गरबा का प्रबन्ध

भी किया था। अपनी एक नष्ट होती पुरानी कला को अपनाकर मरुभूमि में वसंत की कल्पना अवश्य उसने कुछ कराई थी, पर वह भी इसके सिवा और बातों में असफल हो रही। इतना ही नहीं, पर उसके गर्वीले बनावट-पूर्ण दिखावे में हमें तो ग़रीबों के आँसू ही चमकते नज़र आये। भगवान! भारतवर्ष को ऐसे 'सर' से बचावे।

रमेश ने अखबार को मेज़ पर फेंक दिया। इस फिकरे ने कितने लोगों पर असर डाला होगा, कितनी गालियाँ 'सर' की पदवी पाये हुए लोगों को मिली होंगी, कितने अनजान पाठकों ने हिन्दुस्तान के 'सर' से अधिक अपनी उच्चता को समझकर संतोष पाया होगा, पर रमेश यह आलोचना सहन नहीं कर सका।

इतने में बाहर से कोई आता मालूम हुआ। उसने आनेवाले को फ़ौरन पहचान लिया। यह ऊँचा, मजबूत शरीर वाला, जरा साँवले रंग का, पर आकर्षक दिखलाई देनेवाला उसका मित्र जगदीश था। रमेश को इस समय और कुछ पूछना न सूझा। और जगदीश के बैठते-बैठते रमेश ने पूछा—यह तुम्हारा अखबार जनता के हृदय की आवाज़ सुनानेवाला है या विष उगलनेवाला है?

'दोनों है।' जगदीश ने शान्ति से जवाब दिया। 'इसमें इतना विष रहता है कि हृदय की धड़कन का ज़ोर बढ़ा देता है।'

'पर बाद में हृदय की धड़कन बिलकुल ही बन्द हो जाय तो?'

'तो इसकी विष को क्या परवा है?'

'हाँ?' रमेश ने नापसंदगी बताते हुए अपनी बात बदली—जगदीश, बहुत दिनों बाद ये बातें बता रहे हो?

'तुमने बात क्यों बदल दी?' जगदीश ने पूछा। 'शरम लगती है क्या?'

'नहीं, तुम्हारी दृष्टि से ही तुम्हारे अखबार की यह कैसी नीचता है?'

'आज से 'गर्जना' से मेरा सम्बन्ध टूट गया है। मैं अलग हो गया हूँ।' जगदीश ने बतलाया।

'क्या कहते हो?' रमेश को बड़ा आश्चर्य हुआ। 'किस लिए तुम अलग हो गये?'

'तुम जो अभी कहते थे न कि यह समाचार-पत्र विष उगलनेवाला है। मुझे यह डर लगा कि मैं अगर इसमें और रहूँगा तो खुद ही विषधर बन जाऊँगा और अन्त में फिर विष के ज़्यादा असर से मर जाऊँगा।'

'तो तुम अब क्या करोगे ? अब तो तुम्हें एक जगह टिकना चाहिये। तुमने कितनी जगहें बदल डालीं ?'

'लगभग बारह !' कठोरता से जगदीश ने उत्तर दिया।

'फिर अब ?'

'रोटी के लिए कोई दूसरी तरकीब करूँगा।'

'तुम्हारा सारा जन्म ही कोशिशों में गया।'

'सारा ? मुझे अधिक नहीं जीने दोगे क्या ? पचीस वर्ष की उम्र हुई है, अभी अधिक समय नहीं हुआ।'

'पर तुम्हें यह जगह छोड़ने की वजह क्या ? कितनी मेहनत से यह जगह मिली थी, इस बात को भूल गये ?'

जगदीश थोड़ा रुका। इन आरोपों पर उसने फ़ौरन विचार किया। उसका स्वभाव ऐसा था कि वह किसीकी आलोचना न सह सकता था। सिर्फ रमेश की आलोचना ही वह सुन रहा था। कुछ रुककर उसने जवाब दिया—रमेश, सारा संसार मुझे अनावश्यक समझता है, पर इस संसार में दो-तीन लोग ऐसे हैं, जिनके लिए मैं अपने प्राण दे सकता हूँ। ये कौन हैं, तुम जानते हो ?

'एक तो कोकिला भाभी !' कुछ गम्भीर बनकर रमेश ने कहा।

'इसे लेकर अधिक मज़ाक अच्छा नहीं लगेगा। अच्छा, फिर कौन ?'

'फिर तुम्हारी जाति।'

'इसके अलावा ?'

'इसको क्या खबर ? यह तो तुम्हीं बताओ।'

'बताऊँ ? मालूम नहीं ? इसके अलावा अब रहे तुम।'

'अच्छा मानता हूँ, पर मेरे लिए अभी तुम्हें प्राण देने जैसा मौक़ा आने में देर है।'

'अच्छा, पढ़ो इसे।' कहकर जगदीश ने अपनी जेब से एक कागज निकाला। सर बिहारीलाल से शान्तिप्रिय के मिलने का उसमें हाथ का लिखा हुआ हाल था, जो 'गर्जना' में रमेश ने अभी हाल में ही पढ़ा था। जगदीश ने आखिरी हिस्से की तरफ लाल पेन्सिल से निशान बनाये हुए एक फिकरे की तरफ रमेश का ध्यान खींचा। उसमें लिखा था कि 'बड़े गर्व से घूमते हुए, सर बिहारीलाल की मदद के लिए रमेश

भी विद्यार्थी एक मिनट भी फिजूल नहीं खोता था। घर से कालेज जाता, और वहाँ कावापस घर पहुँचता। जिस समय जाता उस समय निश्चित किये हुए फिकरों को याद करते जाने की उसने अपनी आदत डाल ली थी। उसे ऐसा विश्वास हो गया था कि मानो परीक्षा में प्रथम आने का जन्म-सिद्ध अधिकार मिल गया हो। वह और जगदीश संयोगवश इकट्ठे हो गये। मिलने पर कोई बात तो करनी ही चाहिये, इस विचार से जगदीश ने इस विद्यार्थी से पूछा—क्यों आज-कल कैसी क्या तैयारी है !

'कोई दिक्क़त नहीं।' शत्रु की निर्बलता और अपनी मोर्चेबन्दी की तैयारी का ख्याल रखनेवाले किसी वीर की तरह निश्चिन्तता से उसने उत्तर दिया।

'दिक्क़त तो हम जैसे फिसड्डियों के लिए है। तुम्हें तो प्रथम आने या द्वितीय आने की ही चिन्ता होगी।' जगदीश ने कहा।

'प्रथम और द्वितीय का तो सवाल ही नहीं; मैं तो प्रथम ही रहूँगा।' सूर्य अपना उदय होना जिस प्रकार जाहिर करता है, वैसे ही विश्वास के साथ उसने अपना भविष्य प्रगट किया। जगदीश को उसके गर्व ने आकर्षित किया और उसने आश्चर्य प्रगट करते हुए पूछा—ओ हो, यहाँ तक तुम्हें विश्वास है ?

'क्यों नहीं ! दूसरा ऐसा कौन है जो प्रथम आता है ?'

'अच्छा बार-बार कहनेवाले ! आज से समझ लेना कि तुम प्रथम अब आ ही नहीं सकोगे !'

'हाँ, कहकर वह विद्यार्थी हँसा। किसी के बेंत की धमकी से राक्षस को जिस प्रकार तिरस्कारपूर्ण हँसी आती है, वैसे ही जगदीश की धमकी का असर उस पर हुआ।

खैर, सारे विद्यार्थियों के बीच जगदीश बी० ए० की परीक्षा में प्रथम आया। कालेज का प्रिन्सिपल उस पर बहुत ही खुश हुआ।

सरकार की तरफ से डिप्टी कलेक्टरों की जगहें भरने को थीं, उनमें से एक जगह के लिए प्रिन्सिपल ने जगदीश की खास तौर पर सिफ़ारिश की, और उसे वह जगह मिली भी।

पर नौकरी में उसकी तबीयत नहीं लगी। बीस-पचीस रुपये में पाँच-सात मनुष्यों के कुटुम्ब को पालनेवाले क्लर्कों की दयनीय नैतिक कमज़ोरी और उसकी आड़ में रिश्वतखोरी छिपाने के लिए अफ़सरों की खुशामद, कृपा रखने के लिए भेंट-सौगात,

और इसे स्वीकार करनेवाले ऊपरी अधिकारियों का लुचापन तथा अपनी ज्ञान-बुद्धि का असह्य घमण्ड—ये नौकरशाही-जीवन की खासियतें जगदीश ने फौरन समझ लीं। उसके हृदय में विद्रोह उठा, पर ऐसे विद्रोह की तो सजा ही होती है। अधिकतर सत्यद्रोह और राजद्रोह गुनाह ही साबित होते हैं। जगदीश को भी राज-द्रोही मानने का मौक़ा आ गया।

एक बार कलेक्टर साहब ने जगदीश के विभाग में मुक़ाम किया। उन दिनों तहसीलदार छुट्टी पर था। इसलिए मुक़ाम के बन्दोबस्त का काम जगदीश के सिर पड़ा। मुक़ाम का बन्दोबस्त उसके हाथ के नीचे के अफ़सरों की परीक्षा का कठिन मौक़ा होता था। इसमें अफ़सर के सारे गुण और दोष प्रगट हो जाते हैं। कलेक्टर साहब कर्तव्य का बहुत खयाल रखते थे। काम करने के विचार से वे सवेरे चार बजे उठकर साढ़े चार बजे अपना नाश्ता करते थे। इस नाश्ते में मक्खन बड़ी ज़रूरी चीज़ होती थी, पर ठीक साढ़े चार बजे मक्खन तैयार न हो सका। गाँव की ग्वालिनें तीन बजे उठकर कलेक्टर साहब के लिए ताज़ा मक्खन तैयार न कर सकीं। इसके कारण डिप्टी कलेक्टर जगदीश के दो दोष कलेक्टर साहब की नज़र में चढ़ गये। एक दोष था सुस्ती और दूसरा दोष था समय की पाबन्दी न करना। गाँव के मालदार गृहस्थों की अच्छी-से-अच्छी गाड़ी कलेक्टर साहब के लिए सारे दिन हाज़िर न रख सकने में जगदीश की निर्बलता, अफसरों में होनेवाले रोब और तेज की कमी भी उसमें मालूम हुई। इस तरह वह एक कमज़ोर अफ़सर साबित हुआ। कलेक्टर साहब की विदा के वक्त भी किसी को एक फूलों का हार तक जगदीश ने उनके गले में न डालने दिया। उसमें पाई गई उद्दण्डता और बड़े से मिलने-जुलने के तरीके की बड़ी खामी कलेक्टर साहब की नज़र में चढ़ गई। मातहत अफ़सर को अयोग्य ठहराने के लिए इससे ज्यादा दोष और क्या चाहिये।

जगदीश को जनता की सेवा करने की इच्छा थी। अपनी जगह को वह लोक-सेवा के साधन के तौर पर मानता था। इससे लोग बहुत मुँह चढ़ गये हैं। वे निडर और स्वेच्छाचारी होते जाते हैं, इस तरह के आरोप जगदीश के सिर मढ़े जाते। क्लर्क आदि कोई भी उसे नहीं गिनते थे। दो साल की नौकरी में तो उसकी तबीयत ऊब चुकी थी। इतने में देश में आज़ादी की महान् भावना का आन्दोलन उमड़ आया,—और सारे भारत में फैल गया। गंगा के किनारे खड़े होकर कोई

मन्त्र-द्रष्टा अपने मन्त्र-बल से गंगा की लहरों को उमड़ाकर देखते-देखते दोनों किनारों को पानी की अधिकता से भरपूर कर दे, ठीक वैसे ही गुजरात के एक महान् तपस्वी ने देश-सेवा की छिछली भावना में आवेशमयी तरंगें उमड़ाकर देखते-देखते सारे भारत को आर्द्र बनानेवाला देश-भक्ति का एक उमड़ता हुआ महानद बहा दिया। भारत के ही नहीं, पर सारे संसार के इतिहास में सुन्दर दृश्यों में से यह एक महान् स्मरणीय दृश्य—भारत का आकाश उज्ज्वल रंगों से चित्रित रहेगा।

उस समय के फैले हुए उत्साह से जगदीश प्रभावित हुआ और मित्रों तथा कुटुम्बियों के आश्चर्य के बीच उसने अपनी अनमोल मानी जानेवाली नौकरी छोड़ दी।

पर फिर? यह सवाल उठते ही बड़ा विकट मालूम हुआ। जगदीश का स्वार्थ-त्याग बहुत बड़ा था, इस कारण पहले उसे देश-सेवकों में जगह मिली, पर उसने कुछ समय में ही देख लिया कि नौकरशाही के जिन दोषों के कारण उसने नौकरी छोड़ी, वैसे ही दोष उसे दूसरे रूप में स्वदेश-सेवकशाही में मालूम हुए। उसमें ईर्ष्या, वैर और स्वार्थ नज़र पड़ने लगे। क्रोधी और आगे आनेवालों का जोश वह कच्चा जोश समझने लगा। उनकी निन्दा की बातों में मार्मिक हास्य-रस मानने लगा। उनकी नैतिक कमज़ोरी में क्षमा-पात्र मानव-दुर्बलता दिखलाई दी, और उनकी सादगी भी बनावटी और आडम्बर-भरी बन गई मालूम हुई।

जनता ने उत्साह दिखलाया, पर वह क़ायम न रह सका। जनता के प्रचण्ड आवेश के पैदा करनेवाले नेता महात्माजी का शस्त्र दिव्य था। दिव्य हथियारों को पवित्र बनाकर प्रयोग किया जा सकता है। पर यह पवित्रता हर जगह सफल नहीं हुई, इसलिए महात्माजी ने अपने शस्त्र रोक लिये और जनता को पूरी तौर से तैयार होने का मौक़ा दिया। इसका लाभ लेकर महात्माजी के अमोघ शस्त्र से विचलित हुई नौकरशाही ने मौक़ा देख महात्माजी को क़ैद कर लिया।

भारत के उत्साह में कमी हुई। स्वयंसेवक जीवन-कलह में, 'अपनी जगह कहाँ है?—यह तय करने में ही फँस गये। संस्थाएँ आदि बन्द होने लगीं। गरीबी स्वीकार करनेवालों को गरीबी में गुजर करना मुश्किल हो गया। जगदीश ने एक संस्था छोड़कर दूसरी संस्था पकड़ी, एक जगह छोड़कर वह दूसरी जगह रहा और बिना किसी बदले के काम करना हो तो आगे आने के लिए उसे सलाह मिली। पर साथ ही उसे तो अपनी पत्नी और एक छोटे पुत्र का पालन-पोषण भी करना था।

उसने कोई धन-संग्रह तो किया नहीं था, और जो कुछ थोड़ा बहुत इकट्ठा हुआ भी होगा, वह उसने उत्साह के आवेग में खर्च कर डाला था।

आखिर बड़ी कोशिश करने पर 'गर्जना' पत्र के सहायक सम्पादक की जगह वह पा सका। पत्र के सम्पादक शान्तिप्रिय को वह कालेज के समय से ही जानता था। शान्तिप्रिय कालेज के पुराने-से-पुराने विद्यार्थी की हैसियत से भी परिचित था। कालेज में चार वर्ष रहने के बदले उसने आठ-नौ वर्ष का लम्बा समय व्यर्थ खर्च किया था और आखिरी वर्ष कालेज में नये भर्ती हुए जगदीश का एक हड़ताल करने में उसने उपयोग किया था। इसी जान-पहिचान के आधार पर जगदीश को 'गर्जना' पत्र के उप-सम्पादकों में जगह मिली।

'गर्जना' पत्र देश के उद्धार का उद्देश्य लेकर प्रकाशित किया गया था। देश-द्रोहियों की गति-विधि पर इस पत्र का सख्त पहरा रहता था; देशद्रोही यानी सरकारी नौकर और खुले तौर पर देश-सेवा के कार्य में सहयोग देनेवाले लोग। इसके आधार पर 'गर्जना' की नीति कायम थी। लोग उसे पढ़ने को उत्सुक रहते थे। उसके ज़ोरदार लेख और मार्मिक प्रहारों से देश-द्रोही डरते रहत थे। 'रतनपुर का रङ्ग' पढ़कर बम्बई के विशीवाले ब्राह्मण का हृदय दहल जाता था, और 'जशपुर की जहाँगिरी' पढ़कर श्याम में रहनेवाले बोहराओं में हलचल पैदा हो जाती थी। फैजगांव के फौजदार के पास एक ग्रामीण को घी की मटकी ले जाते देखा गया। उस घी के क्या पूरे पैसे दिये गये हैं? इस विषय में फौजदार या ग्रामीण दोनों में से क्या कोई सफाई दे सकता है? स्कूल की अध्यापिका बड़ी चालाक और चंचल है, पाठशाला का कार्य सन्तोषजनक है, तो फिर इन्स्पेक्टर के एक बार से अधिक इस पाठशाला का मुआइना करने का कारण क्या है? यदि मित्रता के कारण ही यह मुलाकातें बढ़ती जाती हैं, तो इन्स्पेक्टर का भत्ता और भाड़ा सरकार के खजाने में से खर्च न होना चाहिये; क्या ऐसा प्रबन्ध करने की कोशिश की गई है, यह क्या उच्च अधिकारी बतायेंगे? — इस प्रकार की रोचक बातों की दिलचस्पी बढ़ती थी। जगदीश ऐसी बातें और खबरें बहुत नापसन्द करता था, वह केवल सहायक ही था और उसे तो केवल अपने मालिक शान्तिप्रिय की आज्ञा ही माननी पड़ती थी। कभी-कभी जगदीश को अपनी ही तरफ़ के लड़कों की बातों की जाँच करने की इच्छा हो जाती। इस इच्छा के वश होकर एक समय उसने लिखा था; 'शराब की दूकान पर पहरा देने-

वाले स्वयंसेवक सफलता से ग्राहकों को दूर करने के बाद, खुद अन्दर से लड़खड़ाती हालत में बाहर आते देखे गये। इसमें उन भाइयों का किया परिश्रम कारणरूप होगा या कोई दूसरा भेद होगा?' पर इससे शान्तिप्रिय बहुत गुस्सा हुआ और ऐसी बात आगे न लिखने के लिए जगदीश को चेतावनी दी। यही नहीं, जगदीश को दिया जानेवाला वेतन भी हर महीने घटने लगा। एक बार तो उसे दो-तीन महीने तक बिना वेतन रहना पड़ा। इस कारण उसने पत्र छोड़ देने का विचार किया, पर मित्रों ने उसे रोक लिया। हर जगह से उसे अलग होना पड़ता है, इसमें जगदीश का ही दोष माना गया। इस कारण अखबार को वह अपना और अधिक समय देने लगा। पर सारे दिन और समय पड़ने पर सारी रात काम करके वह थक जाता था। घूमने-फिरने के शौक़ीन जगदीश को अब यह धन्धा बोझ-रूप में मालूम होने लगा। इसमें प्रतिष्ठा पाने और आगे आने का बहुत जल्दी मौका मिलता; पर इस मुद्दत के लिए दिया जानेवाला यह त्याग उसे बहुत बड़ा लगा। उसे इसमें भी सरकारी नौकरी की तरह अपना हृदय देन देना पड़ा है, ऐसा मालूम हुआ। अफ़सरी में अपने पद के दुरुपयोग करने का हर समय डर रहता है, पर पत्रकार की सत्ता अफ़सर की अपेक्षा उसे छोटी नहीं मालूम हुई—बल्कि बहुत ज्यादा मालूम हुई। ज्यों-ज्यों अधिकार बढ़ते हैं, त्यों-त्यों उनके दुरुपयोग का विस्तार बढ़ता है। पत्रकार में उसे अफ़सर की ही तरह, बल्कि उससे भी ज्यादा दोष नज़र आये। तरफ़दारी, दलबन्दी, दोष, विरोधियों को डराने की कोशिश और ओछापन उसे पत्रकार में नज़र आये। इससे वह झुँझलाया और रमेश को बुरे रूप में बतलाने के लिए शान्तिप्रिय के इरादे के बहाने वह इस धन्धे से अलग हो गया।

(४)

बढ़ते हुए अँधेरे में जगदीश घर की तरफ़ आगे बढ़ा। अनिश्चित भविष्य उसके सिर पर मँड़रा रहा था। सब लोग उसी को दोषी बतलाते और कहते कि उसका मन डावांडोल रहता है, इसीलिए वह एक जगह टिककर नौकरी की परवा नहीं करता। और एक जगह से दूसरी जगह चक्कर काटा करता है। वह अपने दोषों पर सोचता हुआ आगे बढ़ता चला जा रहा था। रास्ते की रोशनी बुझ गई थी, पर अपनी धुन में उसे अपने आसपास का ज़रा भी ख्याल नहीं था।

अचानक उसकी नज़र एक हलवाई की दूकान पर पड़ी। वह भली-बुरी और

वासी मिठाई बेचकर पैसेवाला और मोटा-ताज़ा मालूम होता था। उसने एक छोटे सात वर्ष के बच्चे को बड़े ज़ोर का एक तमाचा मारा। इससे जगदीश का ध्यान टूट गया। उसने इसलिए तमाचा मारा था कि वह लड़का रोज़ दूकान के पास आकर चुराने की ताक में फिरता रहता है। जगदीश का उस तरफ़ ध्यान गया, और बच्चे से क़सूर हुआ भी हो, तो भी इतने ज़ोर से उसे तमाचा मारने पर उसे हल्वाई पर ग़ुस्सा आया।

यह देख दूर पर एक स्त्री चिल्ला उठी—अरे, अरे! मेरे बच्चे को क्यों मारते हो? और उसने आकर सिसकते हुए बच्चे को अपनी बाहों में जकड़ लिया। वह उस बच्चे की माँ थी।

'भिखारी जो ठहरे! दुष्ट ने मिठाई चोर कर खाली।' हलवाई कहने लगा। ग्राहकों को रोज़ बेची जानेवाली मिठाई द्वारा दूकानदार कितनी चोरी करता रहता है, यह सोचने की उसे कोई ज़रूरत न थी।

'मिठाई का एक टुकड़ा देना तो अलग रहा, पर वह चोरी करता है, इस बहाने उसे मारते हो! ईश्वर तुम्हारा कैसे भला करेगा?' वह स्त्री बोली। हलवाई यह समझता ही था कि जो कुछ भी उसने किया, वह ठीक है। इसलिए उसने तिरस्कारपूर्वक कहा—चल, हट यहाँ से!

अब तक वहाँ एक छोटी-सी भीड़ जमा हो गई थी। उसमें से एक आदमी बोल उठा—राधी! मिठाई चाहिए? ले चार आने देता हूँ।

यह सुन सारी भीड़ खिलखिलाकर हँस पड़ी। भिखारिन राधा बिना बोले-चाले खड़ी रही। रूपवती भिखारिन का मज़ाक उड़ाते हुए सब लोग उत्सुक बन रहे थे।

'अरे, चार आने से क्या होगा? राधी तो रुपयों से मानेगी।' सबकी हँसी के बीच एक दूसरे पुरुष ने पहले मज़ाक में सुधार किया। राधा पहले तो हँसी, मानो वह अनाथ भिखारिन पुरुषों की बुरी नज़र सहना सीख रही हो। वह और कर ही क्या सकती थी? जगदीश को [illegible] देखकर ऐसा मालूम हुआ कि या तो उसका पतन हो चुका, और या होने की तैयारी में था। फिर राधा का मुँह गुस्से से भर गया। वह बोली—ये दुष्ट मरते भी नहीं।

इतना कहकर वह रोते हुए बालक को साथ ले आगे बढ़ी। अबला का इस तरह मज़ाक़ उड़ाकर ख़ुश होती हुई भीड़ भी तितर-बितर हो गई। यह सब देखकर जग-

दीश को इतना गुस्सा आया कि उसका वश चलता तो वह हलवाई और भीड़ के लोगों को बेतों से मारता।

राधा जिस रास्ते से आगे बढ़ी, उसी रास्ते से जगदीश को भी जाना था। एक-दो दिन से राधा को इस तरफ़ बच्चे के साथ घूमते हुए देखने का जगदीश को भी खयाल आया। 'यह क्या सचमुच भिखारिन होगी', उसने राधा को किसी से कुछ माँगते नहीं देखा था। वह धीरे-धीरे राधा के पीछे जाने लगा। एक ऐसी जगह, जहां कोई रोशनी नहीं थी। वहाँ पास के एक मकान को पगडंडी पर राधा बैठ गई और अपने बच्चे को छाती से लगा लिया।

जगदीश जो पीछे से आ रहा था, यह देखकर खड़ा हो गया। और उसने राधा से पूछा—तुम्हें कहां जाना है ?

'इससे तुम्हें क्या ? मुझे मर रहने दो न !' राधा समझी थी कि उसे कोई पीछे से परेशान करने आया है, इसलिए ये शब्द उसने करुणापूर्ण आवाज़ में कहे थे। पुरुष जाति के प्रति इस वाक्य में करुण तिरस्कार पाकर जगदीश को बड़ी शर्म आई। वह इस तरह बोला मानो वह पुरुष जाति की तरफ से प्रायश्चित्त करने जा रहा हो—माफ़ करना ! मुझे पूछना तो नहीं चाहिये। पर उन लोगों ने तुम्हें जो परेशान किया, यह देखकर मैंने सोचा तुम्हें तुम्हारे ठिकाने पर पहुँचा दूँ।

अपने प्रति 'तुम' सम्बोधित सुनकर वह जगदीश पर कुछ शक करती हुई बोली—मेरा ठिकाना ? मेरा ठिकाना कैसा ? मैं तो इसी कोने में पड़ी रहूँगी, यहाँ से भी कोई निकाल देगा तो किसी दूसरी जगह जा सोऊँगी।

'तुम इस समय भूखी भी तो होगी ?'

'हाँ, दो दिन से कुछ नहीं मिला। यह अभागा बच्चा लालच से मिठाई की दूकान पर खड़ा हो गया, पर दूकानदार ने टुकड़े के बजाय तमाचा मारा। किससे क्या कहूँ ?

'तुम मेरे घर चलो न ?' निर्दोष भाव से जगदीश ने पूछा। मैं तुम्हारे खाने-पीने का इन्तजाम कर दूँगा, और सोने के लिए भी इन्तजाम हो जायगा।

एक पराई अनजान स्त्री को बिना संकोच किये अपने यहाँ रहने के लिए कहते हुए सुनकर इस अजीब युवक को राधा एकटक देख रही थी। राधा को पुरुषों के चेहरे पर शरारत पहचानने की जानकारी हो गई थी, पर ऐसा कोई निशाना उसने

जगदीश के चेहरे पर नहीं पाया। उसका उसके साथ चलने का मन हुआ। और उसने पूछा—तुम्हारे घर और कौन-कौन हैं ?

'क्यों ? मेरी पत्नी और एक लड़का है। तुम्हें कोई दिक्क़त न होगी।'

राधा ने जगदीश के घर जाना स्वीकार कर लिया। वह समझ गई थी कि आज नहीं तो चार दिन बाद ही सही, पर अब किसी के घर रहे बिना उसका छुटकारा न होगा। दूसरी जगह से बिना किसी जान-पहचान के आई हुई युवती स्त्री को बड़े शहर में गुज़ारे के लिए भला कोई दूसरा साधन मिल सकता है ? जगदीश उसे ज़्यादा विश्वास करने लायक मालूम हुआ। यह देखकर और इसीलिए जगदीश के घर जाने की राधा ने फौरन हिम्मत कर ली।

'मेरा घर यहां से पास ही है।' जगदीश ने कहा।

(५)

रास्ते में जलती हुई रोशनी में किसी मनुष्य के मुख पर प्रगट हुए भाव दिखलाई देते तो यह ज़रूर कहा जा सकता था कि जगदीश को अपना घर देखकर कितनी खुशी हुई। एक भारी मकान के बग़ल में छोटा-सा मकान था। इसमें एक मंजिल नीचे और दूसरी ऊपर थी। यह मकान ऐसा मालूम होता था, मानो बग़ल के बड़े मकानवाले की घोड़ा-गाड़ी रखने की जगह हो। ऊपर की मंजिल पर एक छज्जा भी बाहर की तरफ़ से दिखाई देता था।

छज्जे में एक युवती बड़ी देर से बैठी थी। उसने दूर से जगदीश को आते देखा ; और वह खड़ी हो गई। आज जगदीश को आने में बड़ी देर हो गई थी। जगदीश के आने का वक्त होने पर उसकी पत्नी कोकिला छज्जे पर बैठकर उसकी राह देखा करती थी और जगदीश को आते देखकर उसे बड़ी खुशी होती थी और जगदीश को भी उतनी ही खुशी कोकिला को देखकर होती थी।

कोकिला को जगदीश के साथ एक स्त्री और एक बालक को आते देखकर कोई आश्चर्य नहीं हुआ। डिप्टी कलेक्टर जैसा ऊँचा ओहदा छोड़कर अनिश्चित भविष्य की ओर जानेवाले पति की विचित्रता पत्नी न समझ सके, यह नहीं हो सकता। जगदीश का घर मित्रों और जान-पहचानवालों के बैठने का स्थान था। अनेक तरह के मनुष्य वहां आते थे और एक पत्रकार होने की हैसियत के कारण बुरे-भले चाहे जैसे मनुष्यों को उसके घर आने की इजाज़त थी।

'आज मुझसे रहा नहीं जाता। तुम इस समय बिलकुल भूखी रह गई हो, यह क्या मैं जानता नहीं ?'

'कैसे हो तुम ! एक बार भूखो रहने से तुम्हारी कोकिल मर नहीं जायगी और इससे हुआ भी क्या ! खैर, मैं भूखी ही रही तो इससे क्या होगा !' कोकिला ने कहा।

'इससे क्या ?' आवेश में सिर ऊँचा कर जगदीश ने पूछा—इससे मैं समझता हूँ कि अपने घर में अब अनाज नहीं है,।

कोकिला खूब हँसी। उसकी हँसी में जगदीश को अस्वाभाविकता मालूम हुई। उसने जगदीश के सिर पर से हाथ हटाकर उसके गाल पर फेरा और हँसकर कहा—सिर्फ इसीलिए नींद नहीं आती ? अच्छा, चलो मैं तुम्हें अनाज की कोठी दिखला लाऊँ, जिससे तुम्हें विश्वास हो और नींद आ जाय।

पर कहने के सिवा कोठी दिखलाने की कोकिला ने कोई उत्सुकता प्रगट नहीं की, यदि वह ऐसा करने को तैयार होती तो इसका फल क्या होता, यह जगदीश समझ चुका था। उसने कोकिला से कहा—देखो, एक दूसरी खबर तुम्हें सुनाऊँ। मैंने यह नौकरी भी छोड़ दी।

'छोड़ दी, बहुत अच्छा किया।' पति के बिस्तर पर लेटते-लेटते कोकिला ने कहा। फिर जगदीश पर हाथ फेरते हुए बोली—अब नहीं कहते, मुझे नींद आती है।

आश्चर्य-चकित जगदीश का यदि वश चलता तो वह बिस्तर पर बैठ जाता, पर कोकिला का हाथ हटाये बिना वह बैठ नहीं सकता था। उसने कहा—कोकिल ! कोकिल !

जगदीश के अधरों का चुम्बन लेकर कोकिला ने जगदीश को चुप कर दिया। फिर उसने आदेश किया—अब ज़रा भी न बोलना, सो जाओ !

इसके बाद सारी रात चुपचाप बीत गई।

(६)

सवेरे कोकिला जल्द उठ बैठी। उसने प्रभाती गाते-गाते सारा घर साफ़ कर डाला। आंगन और प्रत्येक कमरे में चौक पूरा। राधा उठकर कोकिला के काम में मदद देने लगी। राधा को ज़रा अखरा कि ऐसी स्वच्छ और सुन्दर स्त्री घर का काम कैसे करती है। उसकी समझ में ऐसी दर्शनीय स्त्री को घर के काम-धंधों से मुक्त

होना चाहिये। उससे यह पूछे विना न रहा गया—बहिन, तुम सभी काम अपने हाथों से क्यों करती हो? क्या नौकर नहीं रखा है?

'घर में हम केवल तीन मनुष्य हैं। फिर नौकर रखकर क्या करूँ। और फिर नौकर भला अपने जैसा अच्छा काम कर सकता है?'

'फिर भी भला बड़े आदमियों का नौकर के विना काम चल सकता है?'

आजकल अमीर और शिक्षित स्त्री-पुरुषों का यह विश्वास हो गया है कि विना नौकर रखे उनका काम नहीं चल सकता।

'हमें बड़ा आदमी मत समझना। यह तो कहते हैं कि अपना काम दूसरे को पैसे देकर कराने में पाप है।' कोकिला ने कहा।

एकाएक पास के मकान से किसी के चिल्लाने की आवाज़ सुनाई दी। कोकिला और राधा दोनों चौंक पड़ीं। एक के बाद एक चिल्लाहट—इस प्रकार तीन बार हुई। दोनों ने उस घर की तरफ़ देखा। खिड़की की बन्द जालियों को हिलाने की कोशिश करता हुआ एक भयङ्कर पुरुष वहाँ खड़ा था। जाली तोड़ डालने के लिए वह हिला रहा था। दोनों युवतियों ने उसके सामने देखा। वह फिर एक बार भयङ्कर आवाज़ से चिल्लाया।

'इस मकान के मालिक का भाई पागल हो गया है। उसे एक कोठरी में बन्द रखा जाता है। पर वह पहले कभी इस तरह चिल्लाया हो, अथवा और कोई उपद्रव किया हो, इसका पता नहीं।' कोकिला ने जाली हिलानेवाले पुरुष को पहचानकर कहा।

जगदीश का मकान और उस चीखनेवाले पुरुष का मकान एक दूसरे के पास थे। इतना ही नहीं, पर दोनों मकान एक ही आदमी की मिल्कियत होने से, दोनों घरों में एक दूसरे में जाने लायक खिड़कियों के रास्ते थे। जगदीश को मकान किराये पर उठाने के बाद रास्ते बन्द कर दिये गये थे। अगर कभी जगदीशवाले घर की कोई मरम्मत करानी होती, तब मकान मालिक इस रास्ते से आता था, या कभी-कभी उसकी पत्नी फ़ुरसत के वक्त उस रास्ते से कोकिला के साथ एकाध घण्टे बात-चीत करने आती थी और उसी रास्ते से फिर वापस चली जाया करती थी।

चिल्लानेवाले पुरुष के आसपास, मकान से निकलकर नौकर इकट्ठे हो गये, और उन्होंने उस पुरुष को ख़ूब ताक़त से पकड़ लिया। नौकर उसके ख़ुद के न थे;

और उसकी सार-सम्हाल की भी उन्हें कोई आदत नहीं थी। इसलिए उनमें पीड़िता के प्रति सहानुभूति का न होना स्वाभाविक ही था। उनमें से एक-दो नौकरों ने उसे चिढ़ाने में मज़ा लेना शुरू किया—अब तो दिमाग़ ठिकाने आया ?

'हरामखोर ! यह मुझसे कहता है ?' उस पागल पुरुष ने चिल्लाकर कहा।

'जिसका दिमाग़ ठिकाने न हो, उससे यह कहा ही जाता है।'

'तेरे बाप का दिमाग़ ठिकाने न होगा। लुच्चा ! तुझे आज बाहर निकाल दूँगा। चलो, हटो !' पागल मनुष्य यह नहीं समझता कि वह पागल है। इस विषय में मूर्ख और पागल बराबर ही होते हैं। फ़र्क़ केवल इतना ही होता है कि मूर्ख मनुष्य खुद मूर्ख है; यह दूसरों से मनवाने में भी वह सफल होता है। और मूर्ख मनुष्य के कार्यों को भी अलग से देखा जाय तो दोनों एक दूसरे से बहुत दूर मालूम न होंगे।

नौकर पर पागल की धमकी का कोई असर नहीं हुआ। धमकी का असर मरने तक भी न हो सके, ऐसा ख्याल किसी को है तो वह नौकर लोगों को है। नौकर ने जवाब दिया—मुझे निकलवा दोगे ? इसके पहले तो तुम अस्पताल में पहुँचा दिये जाओगे।

ठीक, यदि नौकर चाहे तो अपने मालिक को सचमुच अस्पताल में जाने लायक कर दे।

जगदीश को रात में देर तक जगने के बाद सवेरे स्वाभाविक ही गहरी नींद आ गई थी, वह इस शोरगुल से जाग पड़ा।

'कोकिला ! आज चाय बनाकर न दोगी ?' वर्षों से छोड़ी हुई आदत जगदीश को याद आई। उसके मुख पर आज कोई अजीब निश्चय मालूम हो रहा था।

'क्यों नहीं ? मैं तो यही सोच रही थी।' पति की ज़रा भी आलोचना किये बिना कोकिला ने कहा।

चाय तैयार करके जगदीश को पिलाने के बाद कोकिला ने रसोई की तैयारी की। पीयूष जाग उठा। यह स्वस्थ और सुन्दर बालक उठते ही हँसने लगा। तन्दुरुस्त बालक स्वभाव से ही खुशमिज़ाज होते हैं। घर में दो नये व्यक्तियों को देखकर वह सकुचाया। पर बालक को दूसरे बालक का खा़स आकर्षण होता है। राधा ने पीयूष को पास बुलाया। राधा का बालक अमर भी छोटे-से घर में खेलते उसे देखकर खुश हो गया। देखते-देखते अमर और पीयूष मित्र बन गये।

जगदीश निश्चिन्त होकर न बैठ सका। वह कभी कुछ पढ़ता, फिर चहलक़दमी करने लगता, कभी छत पर खड़ा हो जाता ; पर उसकी दृष्टि कोकिला पर ही रहती। तुलसी की पूजा करने हाथ में बड़ी थाली लेकर कोकिला ऊपर छत पर गई। जगदीश चुपचाप उसके पीछे जाने लगा। पर वहाँ पहुँचने पर कोकिला दिखाई न दी। उसने कुछ सोचा और अपने छोटे घर में पीछे फिरकर देख आया कि शायद दूसरे रास्ते से तो कोकिला कहीं नीचे वापस नहीं चली गई। पर कोकिला दिखाई न दी। वह फिर छत पर वापस आया तो वहाँ उसने देखा कि कोकिला पास के मकान की खिड़की से छत पर उतरकर तेज़ी से आ रही थी। उस खिड़की की ऊपरी मंजिल में से बाहर सिर निकाले एक पुरुष कोकिला की तरफ़ बुरी दृष्टि से देखता हुआ खड़ा दिखलाई दिया। कोकिला के हाथ की थाली ढँकी हुई थी। उसके मुख पर भय मालूम हो रहा था। जगदीश उसके सामने इस तरह आ जायगा, इसकी उसे कल्पना भी नहीं थी। उसने घबराकर पीछे देखा। पड़ोसी के हक़ का फ़ायदा उठाने एक पुरुष प्यासी आँखों से कोकिला को ताकता हुआ खड़ा था। दोनों तरफ से दो-दो पुरुषों की तीक्ष्ण दृष्टि से बिंधी हुई कोकिला ने घबराकर थाली ज़मीन पर रख दी। थाली ज़मीन पर रखते ही उसकी जेब से आठ-दस रुपए खन खन आवाज़ करते गिर पड़े। जगदीश ने रुपए, थाली, कोकिला और उस पुरुष को एक ही नज़र में देख लिया और वह पीछे वापस आ गया। वह पुरुष जो अभी तक कोकिला के सिवा किसी और दूसरे को न देख सका था, उसकी नज़र जगदीश पर गई। यदि कोई चोरी करता पकड़ा जाय तो साहूकार का भाव दिखाने के लिए वह किनारा काटता ही है।

उस पुरुष ने ठीक ऐसा ही प्रयत्न करते हुए जगदीश को बुलाया।

'कहिये, आज क्या आप घर पर ही हैं? दफ्तर नहीं गये?'

यह मनुष्य जगदीश के मकान का मालिक था। मुँह माँगा भाड़ा लेकर भी भाड़े-वालों को अपने ख़ाली मकान में रहने देने की कृपा करनेवाले मकान मालिक का अपमान करना, आजकल के समय में असम्भव है। जगदीश की ज़रा भी कुछ बोलने की इच्छा नहीं थी। फिर भी उसने पीछे फिरकर उसके सामने देखा और कहा—जी हाँ, आज घर पर ही हूँ।

इस मौके से फायदा उठाकर कोकिला थाली और रुपए लेकर अन्दर चली गई।

'छुट्टी में हैं ?' बातचीत आगे बढ़ाने के ख़याल से मकान-मालिक ने कहा।

'आज से नौकरी ही छोड़ दी है !' कहकर जगदीश वापस जाने लगा।

घर के मालिक ने उपदेश देते हुए कहा—आज फ़ुरसत हो तो मुझसे मिल जाना। मुझे आपसे काम है। यह कहकर वह खिड़की से खिसक गया।

जगदीश ने विचार किया : 'क्या ग़रीबी ही सारे दोषों की जननी होती है ?' चलते-चलते उसने मन में कहा—कोकिला-जैसे गुण जिनमें न होते होंगे, उनका ग़रीबी में क्या होता होगा ?

(७)

जगदीश के साथ बातचीत कर लालजी सेठ घर के अन्दर चला गया। उनकी उम्र इस समय बावन वर्ष से नीचे और पचपन वर्ष से ऊपर नहीं होगी। वह अपने ही पुरुषार्थ से आगे बढ़ा हुआ एक साहस का नमूना था; और उससे परिचय करनेवाले को यह बात भूलती नहीं थी। आठ-दस वर्ष की मेहनत के फल-स्वरूप बहुत-सा धन इकट्ठा हो जाने के बाद की आरामतलबी की दशा में अधिकतर लोगों को बाहर कुछ करने की इच्छा हो जाती है। संसार में धनवालों को बुद्धि की ज़रूरत बहुत कम होती है, उन्हें धन की अवश्य ज़रूरत होती है; और जिस प्रमाण में वह धन खर्च करता है, उसी प्रमाण में वह आगे बढ़ सकता है। वह धन का उपयोग करने के लिए कई बार सोचता है और यह सोचना उसके स्वभाव में शामिल हो जाता है। धनवान का स्वभाव कहता है कि 'धन खर्च करना पाप है।' संसार कहता है, 'धन खर्च न करना पाप है।' इन दो वाक्यों के बीच में धनवान मूर्ख बन जाता है।

संसार की पुकार की तरफ ध्यान जाते ही धनवान को एक दूसरी फ़िक्र होती है 'धन खर्च तो किया जाय, पर कहाँ खर्च किया जाय ?' धन खर्च करने के भी दो मुख्य मार्ग इस काल में माने जाते हैं, एक सरकारी नौकरशाही का मार्ग और दूसरा जनता का मार्ग। नौकरशाही का मार्ग अधिक जगमगाता मार्ग है। अफसरों की मेहमानी में उन्हें भोज देना, यदि और भी अधिक मैत्री का भाव बढ़ाना हो तो उनकी पत्नी और बच्चों को समय-समय पर अच्छी भेंट-सौगात नज़र करना; बग्घी या मोटर हो तो जब अफ़सर माँगें, भेज देना, सरकार जितना ऋण निकाले उतने ऋण का लाभ लेना, पदाधिकारी जैसा कहें उसी के अनुसार—अस्पताल, लाइब्रेरी और सेनिटोरियम बनवाना, तबादले में जानेवाले पदाधिकारी को विदा और आनेवाले

स्वागत करने में काम आनेवाले फूल पैदा करने के लिए बगीचे रखना इत्यादि कई तरह के अनेक रास्तों द्वारा धन खर्च करने की धनवानों को पूरी-पूरी छूट है। उसकी आहिस्ते-आहिस्ते क़द्र भी हो सकती है। धन खर्च करने के प्रमाण के अनुसार राव साहब से लेकर 'सर, तक की उपाधियाँ मिलने की गुञ्जाइश रहती है।

सरकार का जगमगाता मार्ग निश्चित होता है। पर जनता-सम्बन्धी-मार्ग अनेक कठिनाइयों से भरा हुआ होता है। जितनी जनता की संख्या होती है, उतने ही उसकी सेवा के मार्ग होते हैं और प्रत्येक मार्ग धन की आवश्यकताओंवाले होते हैं। स्त्री-बालक, भिखारी, अनाथ, रोगी और निराश्रितों की सहायता करना। टिकिट-कलेक्टरों से सही सलामत बचकर रेल के तीसरे क्लास का एक कोना पसंद कर चुप-चाप बैठ जाओ। फिर गाड़ी चलने पर कभी न भूला जानेवाला एक भीषण संगीत तुम्हारे कानों में सुनाई पड़ता है :

'तुमने कितने बँगले बनवाये ?
प्रभु तुमसे यह पूछनेवाला नहीं।'

तुम सोचते हो कि 'आखिर प्रभु को क्या पूछना है ?' इतने में तुम्हारे सामने एक ताँबे के सिक्कों से खड़खड़ाती संदूकची आ जाती है और कहा जाता है कि अमुक गौशाला या अनाथालय में दान किये बिना तुम्हारे देश का छुटकारा न होगा। यह विश्वास करने को कहा जाता है; इतना ही नहीं, पर चार आने देने से रसीद मिलने के भारी अधिकार मिलने की सूचना भी मिलती है। फिर कुछ देकर देश का ऋण चुकाने का संतोष पा तुम घर पहुँचते हो। घर के रास्ते पर पहुँचते ही मुट्ठी-फंड उगाहते हुए विद्यार्थियों को अपने घर से अनाज मिलता देखकर तुम खुश होते हो। फिर आरामकुर्सी पर बैठकर अपनी डाक पढ़ते तुम्हें खबर पड़ती है कि दो देशसेवक और तीन स्वयंसेवक रात तीन बजे की गाड़ी से महाकष्ट झेलते, तुम्हारे गाँव की सेवा करने, तुम्हारे यहाँ मेहमान बनने आनेवाले हैं। तुम्हें खुशी होती है। फिर आगे चलकर पत्र पढ़ने पर मालूम होता है कि तुम्हारे प्रान्त में तीन समाचारपत्र और दो मासिकपत्र आज तक और बढ़े हैं। देश में व्याकुलता और असंतोष बढ़ता जाता हो तो दिमाग़ ठिकाने नहीं रहता, इसीलिए ठोस और पुख्ता विचारों का प्रचार करने के लिए एक पत्र ; जब तक लोगों में असंतोष और अपमान की तीव्र लगन न जागे तब तक जागृति नहीं होगी, इसलिए ऐसी लगन जाग्रत करने के लिए दूसरा पत्र ; अब दलितों का उद्धार हुए

बिना देश का उद्धार ही नहीं होगा, इसलिए उनके उद्धार को तीसरा पत्र ; बालक के भविष्य की आशा होने से आशा को स्थिर रखनेवाला एक बच्चों का मासिक-पत्र और कला जो कि तुम्हारी सारी प्रवृत्तियों और प्रगति का सार है, इसे ज्यों की त्यों तुम्हारी ही तरह सरल रूप में अनजान लोग समझ सकें, इस प्रकार के विवेचनों से भरा हुआ एक सचित्र मासिक-पत्र। इस तरह तुम्हारे खर्च करने के लिए एक के बाद एक साधन सामने आते रहते हैं।

धनवान् होने से दोपहर का भोजन करने के बाद एकाध घण्टे आराम लेने की तुम्हें अवश्य ज़रूरत रहती ही है। यह आराम और ताज़गी पाने के लिए तुम अपनी बैठक में जाते हो कि इतने ही में किसी फिल्म-कम्पनी या हड्डियों से खिलौने बनानेवाली कम्पनी के डायरेक्टर के तौर पर तुम्हारा नाम प्राप्त करने के लिए दो व्यापारी तुमसे मिलने को आतुर होते हैं। इसके बाद अनाथाश्रम, बॉय स्काऊट-मंडल और साहित्य-सभा को सहायता देने की तजवीज पूरी करते-करते तुम्हें खबर लगती है कि मारवाड़ में अकाल पड़ रहा है, आसाम में अनावृष्टि है और अफगान सरहद पर आग लगी है। वहाँ के संकट-ग्रस्त तुम्हारा सहारा लेने को लालायित हैं। रात नींद में तुम्हें स्वप्न आता है कि तुम पर लाखों सैनिक हमला करके क़ैद कर लेते हैं। और तुम्हारे छोटे शरीर पर हज़ारों शोषण-यंत्र (Pumps) लगाने की सजा देते हैं। बेज़ार बनकर जागने पर तुम्हें खबर मिलती है कि रात को आनेवाले देश-सेवक मेहमान आ गये हैं और थकावट मिटाने के लिए तुम्हारे नौकर को काफ़ी लाने की आज्ञा करते हैं।

इस तरह देश-सेवा के अगणित क्षेत्र हैं और तुम जितना चाहो, उतना पैसा उसमें खर्च कर सकते हो। लालजी सेठ धन इकट्ठा करके उसे उपयोग करने की चिन्ता में थे। सरकारी मार्ग में पैसा खर्च किया जाय या जनता के काम में, यह निश्चय वे अभी तक नहीं कर सके थे। किसी प्रभावशाली सरकारी अफ़सर को अगर हँसते देखते, तो सरकारी मार्ग में पैसा खर्च करनेको तैयार हो जाते और समाचार-पत्रों में किसी की प्रशंसा पढ़ते तो जनता की सेवा के मार्ग में पैसे खर्च करने को आतुर हो जाते। पर एक ही पक्ष की तरफ़ उनका झुकाव न होने से उनकी उलझन बढ़ती जाती थी। अन्त में कौंसिल ने उनका ध्यान खींचा। सरकार की सेवा के साथ ही जनता की सेवा का स्वाँग साथ-साथ हो सके, वह इसी में रहकर हो सकता है। इसीलिए यह स्थापित की गई है। अँग्रेज़ी राज्य में देश-हितेच्छुओं की स्वदेश-भक्ति का प्रदर्शन

करने के लिए यह एक सुन्दर व्याख्यान देने का भवन बनाया गया है। लालजी सेठ धारा-सभा की तरफ ललचाये और अपनी उम्मीदवारी की तैयारी की। अब वोट प्राप्त करने का सवाल पैदा हुआ। वोट पाने के भी दो रास्ते होते हैं, एक तो वोट के खरीदने का और दूसरा झूठे वोट बनाने का। इसलिए राजनीति में चारों प्रकार के साम, दाम, भेद और दण्ड का वोट मिलने में उपयोग हो सकता है। वोट प्राप्त करने के लिए इस काम में चतुर जुगलकिशोर नाम के प्रख्यात आदमी की उन्होंने सहायता माँगी। कोकिला को लगातार देखते हुए पकड़ा गया लालजी सेठ जगदीश को आमन्त्रण देकर घर गया। वहाँ उसे पता चला कि जुगलकिशोर आया है। वह उत्साह से दीवानखाने में गया और जुगलकिशोर से मिला।

जुगलकिशोर चालीस वर्ष का, सुडौल, दृढ़, हँसमुख और सन्तुष्ट गृहस्थ मालूम होता था। लालजी सेठ को देखते ही उसने कहा—सेठ साहब, यह ठीक ही हुआ कि आपने आज ही मुझे बुलाया। शाम को एक मीटिंग है। कौंसिल में पहुँचकर आपको क्या-क्या करना है, इस विषय का भाषण आप सभा में दें।

'पर मुझे क्या पता कि कौंसिल में पहुँचकर मुझे क्या करना है?'

'अजी, इसमें क्या? जो हो, वह कहो! व्यापार की बढ़ती, कृषि की तरक्की, स्त्रियों की उन्नति और आन्दोलन इसमें से कोई विषय भी पसन्द हो, उस पर बोलकर जो काम करना हो, वह बतलाइये। यहाँ तक कि मलेरिया और मच्छरों के विषय में भी यदि आप बोलेंगे तो भी कोई हर्ज नहीं।'

'नहीं भाई, यह बोलना मुझे अच्छा नहीं लगता।' लालजी सेठ घबरा उठे।

'कोई बात नहीं, यह तो कौंसिल में पहुँचने के बाद आप ही आ जायगा। अभी हमें पचास के क़रीब अनुभवी आदमी काम में लगाने पड़ेंगे। पहले तो आपको वोट देना स्वीकार करवाना, फिर दूसरे उम्मीदवार की लाग-डाट अटकाना, बाद में स्वीकार करनेवाले उम्मीदवार बदल न जायँ, इसकी तजवीज, और अन्त में वोट देनेवाले आपको ही वोट देते हैं, यह देखना। इसलिए पचास तो खास आदमी, दूसरे और भी चाहियें। अच्छा, आप कितना खर्च करने को तैयार हैं?'

'हज़ार-पन्द्रह सौ तक कोई बात नहीं।'

'तब तो फिर आप धारा-सभा में आ चुके!'

'यह क्यों?'

'हज़ार-पन्द्रह सौ ही खर्च करना है तो आशा ही व्यर्थ है। फिर आपको किस बात पर लोग वोट देंगे?'

लालजी सेठ यों तो समझदार आदमी था। इतने से वोट नहीं मिल सकते। उसको जुगलकिशोर की बात ठीक जँची। उसे लोक-सेवा के भाव ने उत्तेजित किया। फिर यदि उसे अपनी पत्नी की वक्त पर सहायता न मिलती, तो वह दस-पन्द्रह हज़ार रुपए खर्च कर कौंसिल में आने को शायद ही तैयार होता।

ठीक समय पर उसकी पत्नी विजयालक्ष्मी की उसे सहायता मिली। बैठक की आलमारी से चाँदी की नयी मँगाई हुई रकाबी निकालने की उसे एकाएक ज़रूरत पड़ी थी। इसलिए वह वहाँ यह चर्चा होते समय आ पहुँची। लालजी सेठ के स्त्री-सम्बन्धी विचार बहुत दृढ़ और निश्चित थे। महिला-आन्दोलन, स्त्रियों की सभा, स्त्रियों की आज़ादी आदि नये ज़माने की इन हलचलों के प्रति उनका उपेक्षा-भाव था। वह स्त्री को पर-पुरुष की दृष्टि से बचाने योग्य प्राणी समझते थे। पहले छूट देकर बाद में रुकावट डालना यह इनके वसूल में शामिल नहीं था। वे पहले से ही होशियार और चौकन्ने रहने की नीति वरतते थे। उन्होंने अपनी पहले की दोनों पत्नियों पर इसी नीति का सख्ती से व्यवहार किया था, पर तीसरे विवाह के बाद उनके व्यवहार में नर्मी आ गई थी। इसका कारण उनकी वृद्धावस्था की तरफ़ जाती हुई उम्र अथवा उनकी पत्नी विजयालक्ष्मी का रूप और सौन्दर्य था, यह कोई नहीं कह सकता। इस नर्मी के परिणाम-स्वरूप विजयालक्ष्मी ने लाज करना छोड़ दिया। कभी-कभी बग्घी या मोटर में वह घूमने जाती थी, और मौका आने पर चार आदमियों में बैठकर बातचीत करने का भी साहस वह करने लगी थी। पति का अधिकार जिस प्रकार पत्नी भोग सकती है, वैसे ही पति की उम्र का हक भी पत्नी भोग सकती है। बहुतेरे पुरुषों में रूप-पिपासा और रस-भावना उम्र के प्रमाण से बढ़ती जाती है। कारण, लालजी सेठ अपनी युवती पत्नी को तरफ़ अत्यन्त प्रेम-भरी दृष्टि से बार-बार देखा करते और अपनी पहली पत्नियों के दोषों को उसमें पाकर भी वे उसे हँसने का ही पात्र समझते।

इसलिए जुगलकिशोर की माँग लालजी सेठ ने अपनी पत्नी के प्रोत्साहन देने पर स्वीकार कर ली। विजयालक्ष्मी ने बातचीत के बीच में पूछा—आदमी तो कुछ अच्छे ही रखने पड़ेंगे?

'जी हाँ, भला इसके बिना काम चल सकता है ?' जुगलकिशोर ने कहा।

'मैं आपको एक आदमी बताती हूँ।' विजयालक्ष्मी ने कहा। कुर्सी पर एक लटकते पैर पर दूसरा पैर रखे हुए बैठी अपनी पत्नी को लालजी सेठ देख रहा था।

'हाँ, बताइये, इसमें क्या ? काम आ जायगा।' जुगलकिशोर ने कहा।

'अपने पड़ोस में जो जगदीशकुमार है न ? वह एक पत्र का संपादन करता है। इस कारण उसकी जान-पहचान भी बहुत होगी। उसकी भी सहाहता लेनी चाहिये,' विजयालक्ष्मी ने कहा। पत्नी की सूझ के प्रति लालजी सेठ का विश्वास बढ़ गया। पत्रकार की जान-पहचान अधिकतर लोगों से होगी ही, और इसलिए पैसा भी कम खर्च करना पड़ेगा, यह भी स्वाभाविक था।

'हाँ, हाँ ! उन्हें बुलवाना चाहिये। मैंने उनसे मिलने को भी कहा था। अपना किरायेदार भी तो है।' कहकर लालजी सेठ ने नौकर को बुलाने की घण्टी बजाई, और उसे जगदीश को बुलाने भेजा।

'जगदीश ? वह आपके किस काम आयेगा ? मैं उसे बराबर जानता हूँ।' जुगलकिशोर ने कहा। उसे अपने कथन में पूरा विश्वास था, इसलिए उसने इस विषय में अधिक कहना अच्छा न समझा : 'आने दीजिये। मुझे कई दिनों से उससे मिलना भी था।'

जगदीश को आ पहुँचने में दस मिनट से कम खर्च न होते, इस बीच जुगलकिशोर ने वोट प्राप्त करने का भारी कार्य-क्रम बतलाया। कितनी सवारी-गाड़ियाँ, कितनी मोटरें इकट्ठी करनी पड़ेंगी, किसे चाय देनी पड़ेगी, किसे आईसक्रीम खिलानी पड़ेगी, किसे मिठाई, और किसके यहाँ बच्चों के लिए शक्कर की गोलियों का डब्बा भेजना पड़ेगा, इसकी सिलसिलेवार गिनती जुगलकिशोर ने कर डाली। और उसने लालजी सेठ पर यह विश्वास जमा दिया कि कौंसिल में आना कोई सहल बात नहीं होती। योग्यता, रोबदाब, तर्क और पैसा—इन सब गुणों की उसमें परीक्षा होती है।

जगदीश आया। उसके मुँह पर किसी असह्य वेदना की छाया पड़ रही थी। लालजी सेठ ने खड़े होने का भाव प्रगट कर उसका स्वागत किया। विजयालक्ष्मी हाथ पर गाल टिकाये बैठी रही। जुगलकिशोर ने हँसकर जगदीश के साथ अपना परिचय बतलाया और बात शुरू की।

'क्यों जगदीश, अब तो तुम्हें फुरसत होगी न ?'

'जी हां।'

'तो फिर सेठ साहब का एक काम करो न ?'

उत्तर सुनने के लिये विजयालक्ष्मी जगदीश की तरफ देखने लगी।

'क्यों नहीं ? मुझसे हो सकेगा तो ज़रूर करूँगा।' जगदीश ने कहा।

'सेठ साहब ने कौंसिल के लिए उम्मेदवारी की है। तुम्हारी मदद की आशा रखते हैं।'

'इस काम के योग्य मैं नहीं हूँ।'

'ऐसा तो कहोगे ही! संपादक जो चाहे, कर सकता है।' लालजी सेठ ने कहा।

'किन्तु मैं तो अब सम्पादक नहीं रहा हूँ।'

'इससे कुछ नहीं, इससे तुम्हारी जान-पहिचान कोई कम थोड़े ही हो गई होगी ?' लालजी सेठ ने कहा।

'इस जान-पहिचान पर कोई विश्वास नहीं किया जा सकता। आप जुगलकिशोर को यह काम सौंपिये, यह आपको सफलता दिलवायेंगे। फिर मेरी ज़रूरत ही न होगी।'

'भले आदमी! इस समय तुम कठिनाइयों में हो। इस काम में तुम्हींको फायदा है।' लालजी सेठ ने कहा।

'आपका उपकार मानता हूँ, किन्तु किसीकी कृपा से फायदा उठाने को मैं तैयार नहीं।'

जुगलकिशोर ज़ोर से हँस पड़ा और उसने कहा—सेठ साहब, इन्हें छोड़ो, यह तो पहले ही डगमगा गये।

जगदीश ने जुगलकिशोर की तरफ देखा और हँसा। विजयालक्ष्मी को ऐसा लगा कि जगदीश के मुख पर असमर्थता और मुस्कान दोनों झलक रहे हैं। उसने भी जगदीश से अनुरोध किया। पर जगदीश ने राष्ट्रीयता के क्षेत्र से अपने को अलग रखने का निश्चय प्रकट किया।

विजयालक्ष्मी और लालजी जगदीश-जैसे एकमार्गी युवक को अपने कार्य में किसलिए शामिल करना चाहते हैं। यह समझने का जुगलकिशोर प्रयत्न करता था। उसने हँसते मुँह से कल्पनाएँ कीं, और उसके अनुभवी हृदय को कई सत्य कारणों का पता चला। सिर्फ उसे एक यही बात समझ में नहीं आई कि 'जगदीश मना क्यों कर रहा है ?'

(८)

जुगलकिशोर और जगदीश दोनों साथ-ही-साथ उठे। विजयालक्ष्मी बोली—ठीक है, आपने तो हमें मदद करने से मना कर दिया, पर हम इतनी जल्दी अपना हक नहीं छोड़ देंगे।

जगदीश हँसा और इस अस्पष्ट हक को स्वीकार किया। स्त्रियों की आज़ादी के विरोधी लालजी को इससे अपनी पत्नी में कोई मर्यादा भंग का दोष दिखाई न पड़ा। बड़े आदमी छोटे आदमियों पर उपदेश के तरीके पर मेहरबानी प्रगट करते हैं, यह अक्सर देखने में आता है। उसकी पत्नी की ही तरह जगदीश की पत्नी कोकिला भी सुन्दर और आकर्षक थी, इस बात को लालजी का उदार हृदय अनेक बार मान चुका था। जहाँ सुन्दरता होगी, उस तरफ दृष्टि तो जायगी ही।

जुगलकिशोर ने नीचे उतरते हुए कहा—जगदीश, मैं समझता था कि तुम अब सुधर गये होगे, पर अब भी ऐसा मालूम नहीं होता।

'यह किस आधार पर कहते हो?'

'किसी पराई स्त्री को तुमने अपने यहाँ रखा है, इससे तुम्हें सन्तोष हुआ कि नहीं?' अब जगदीश ठिकाने आये। 'पर वह विजया जो तुम्हारे लिए मरती है, उसे भी कुछ समझ आई हो, ऐसा दिखलाई नहीं देता।'

'क्यों तुम खरा-खोटा कहते हो, क्या यही तुम्हें पसन्द है? संसार में एकाध विषय के प्रति तो ख़याल रखो।'

'मुझे तो हर एक विषय का ख़याल है। जितने अंश में जो फायदा पहुँच जाय, उतने ही अंश में उसका खयाल रखना चाहिये। इसमें मैं झूठ नहीं बोलता।'

'फिर झूठ।'

'मुझे भूख लगी है। कुछ खाने को दो तो मैं अपनी बात साबित करूँ।'

जगदीश अपने मित्रों में मेहमानगीरी के लिए प्रसिद्ध था। चाहे जिस समय कोई आ जाय, फिर वह कोकिला के हाथ की चीज़ खाये बिना वापस नहीं लौटता था।

दोनों घर गये। कोकिला ने रसोई तैयार कर रखी थी। कोकिला आज जगदीश के मुँह की तरफ ही देख रही थी। उसके मुख की गंभीरता क्या प्रकट करती थी, उसको शक तो नहीं हुआ, ऐसे ही विचार वह किया करती। कोकिला की आँखों में आँसू समा जाते, इसके पहले ही राधा ने उसे देख लिया।

'बहिन, मैं तो दो-चार दिनों में चली जाऊँगी, तब तक तो वे भी छूट जायँगे।'

'नहीं, नहीं! मैं यों जल्दी नहीं जाने दूँगी। तुम्हारे रहने से मुझे अच्छा लगता है, कोकिला ने कहा। अपने घर में ही किसी दूसरी अनजान स्त्री के आकर रहने का राधा खुद विचार कर सकती थी। राधा सोच में पड़ गई। इतने में कोकिला ने पूछा—छूटकर आयेंगे? मैं समझी नहीं तुम्हारे पति कहाँ हैं?

राधा के होंठ फड़के, पर उन्हें आँखों के आंसुओं ने रोक दिया। फिर कहा—वे तो जेल में हैं। इस महीने में उन्हें छूटना था। यह घर पर पहुँचने पर पता चला था; इसलिए मैं यहीं आ गई थी।

कोकिला ने उसके कैद में होने का कारण पूछकर बातचीत बढ़ाई नहीं।

जगदीश की राह देखती कोकिला ने अपने पति के पैरों की आवाज़ पहचान ली। वह तुरन्त अपनी आदत के अनुसार बाहर के हिस्से में आकर पति को देखने लगी। उसके मुँह पर विषाद था और साथ में जुगुलकिशोर था।

'ओहो, किशोर भाई! बहुत दिनों बाद दिखलाई दिये?' कोकिला ने पूछा।

'आज तो तुम्हारा मेहमान हुआ हूँ। तुम्हारे हाथ का भोजन मुँह से मांगकर खाने आया हूँ।' जुगलकिशोर ने कहा।

'तुम्हें यह घर कोई पराया है? मैं अभी खाने की तैयारी करतीं हूँ।' कहकर कोकिला ने जगदीश की तरफ़ छुपे तरीके से देखा और अन्दर चली गई।

जुगलकिशोर झूले पर बैठता-बैठता हँसा। कोकिला की जगदीश की तरफ़ फेंकी दृष्टि जुगलकिशोर ने न देखी हो, ऐसा नहीं था।

'जगदीश! पति और पत्नी में से एक ही नासमझ हो, वहाँ तक तो कुछ ठीक है; लेकिन जहाँ दोनों ही एक-से नासमझ हों तो फिर क्या हो?'

'गृहस्थी बहुत समय तक नहीं चलेगी।' जगदीश ने कहा।

जुगलकिशोर ज़रा विचार में पड़ा। संसार में ऐसी कोई वस्तु न थी, जो जुगलकिशोर के मुख पर हास्य या तिरस्कार का भाव न ला सके। लोगों में वह एक बड़ा चालाक माना जाता था। सभी मौकों से वह अपना कोई-न-कोई स्वार्थ निकाल लेने में एक ही था। उस पर शायद ही कोई विश्वास रखता था। इसलिए कई बातों में वह आगे होता हो। वह विश्वासपात्र नहीं था, यह बात तो थी ही, फिर भी उसकी सहायता की कीमत होती थी। जो काम वह हाथ में लेता, उसे कर सकने की शक्ति

उसमें थी, यह सब मानते थे। इसीलिए उसकी सहायता माँगनेवाले को भारी कीमत देनी पड़ती थी, और जब तक इस कीमत से अधिक कोई दूसरी कीमत देनेवाला न मिलता, तब तक वह उसे अपनी सहायता बराबर देता था। इसलिए उसे अपने पक्ष में रखनेवाले को एक खास निगरानी भी रखनी पड़ती थी कि कोई उसे अधिक कीमत देकर उसके पक्ष से अलग तो नहीं कर रहा है।

उसकी जानकारी बहुत अधिक और बहुमुखी थी। सभा करनी हो, चन्दा इकट्ठा करना हो, समाचार-पत्रों में लेख लिखना हो—ये सब काम वह अच्छी तरह कर सकता था। आर्यसमाजियों की सभा करने में उसे अधिक लाभ नज़र आता, तो वह मूर्ति-पूजक सनातनियों को छोड़ देता। यदि शिवजी का मन्दिर बनवाने का प्रसंग आता, तो वह धार्मिक पुरुषों के पास बेफ़िक्र होकर उनसे चन्दा इकट्ठा कर सकता था। विदेशी माल के बहिष्कार की मीटिंग का प्रबन्ध करके भी वह विदेशी माल की एजेन्सी रखता था। किसी प्रसिद्ध पुरुष पर नालिश करनी होती, तो उसकी इसमें पूरी दिलचस्पी होती। जो पुरुष उसके पक्ष में हो जाता, दूसरे दिन से ही उसकी प्रशंसा लेखों के रूप में दृष्टिगोचर होती थी।

सट्टेवाले, जुआरी और गुण्डों का वह कई बार अगुआ बन चुका था। लोगों का यह भी ख्याल था कि वह चोरी का माल भी रखता है। इसके अलावा अफ़सरों को रिश्वत के ज़रिये भी वह खोजता रहता था। इसलिए लोग उससे डरकर उसकी सहायता प्राप्त करने और उसका कृपापात्र होने को आतुर रहते थे। संक्षेप में, जुगलकिशोर संसार की वर्तमान काली अँधेरी में एक जगमगाता सितारा था।

उसका अंग्रेज़ी भाषा का ज्ञान और दूसरे अनुभव उसे और भी अधिक असाधारण बताते थे। कालेज में उसने आठ-नौ वर्ष बिताये थे और उसी समय से अनेकों लोगों से उसका परिचय था। दूसरे विद्यार्थियों की खुराक खा जाना, उन्हें डराकर परीक्षा के समय उनसे उत्तर लिखा लेना, मिट्टी का तेल चुक गया हो तो बिना डरे प्रोफेसर के बँगले से डब्बा उठा लाना, यदि स्टोव टूट गया हो तो लेबोरेटरी में से वहाँ का स्टोव ले आना आदि कई अटपटे काम वह सरलता से कर सकता था। जगदीश के साथ उसका कालेज से ही परिचय था। जगदीश से वह उम्र में बड़ा था, पर कालेज-जीवन की जान-पहचान में उम्र की बाधा नहीं होती। कालेज की वार्षिक फ़ीस में से वह पैसे खा जाता है, यह आरोप लगाकर कई विद्यार्थियों ने जगदीश से असह-

योग कर दिया था। उस समय जगदीश और दूसरे नये उत्साही विद्यार्थियों को उसने अपने पक्ष में कर लिया था। पुराने विद्यार्थियों को उसने एक तरफ छोड़कर अपना सङ्गठन बड़ी सफलता से पूरा किया था। जगदीश के प्रति तभीसे उसका स्वाभाविक पक्षपात हो गया था। जगदीश जब डिप्टी कलेक्टर था, उस समय जुगलकिशोर अपनी मैत्री का उपयोग कर कितने ही किसानों को ज़मीन दिलाकर पैसे खा गया। उसके सिवा कोई दूसरा मनुष्य किसानों से पैसा नहीं खा सकता था, फिर भी किसानों ने उसकी कोई रिपोर्ट नहीं की थी। पर इस विषय में पदाधिकारी के तौर पर जगदीश से कुछ न हो सकता, ऐसा न था।

जगदीश के नौकरी छोड़ देने के बाद जुगलकिशोर के साथ उसका साधारण सम्बन्ध चालू ही रहा। बुरे माने हुए मनुष्यों के साथ पहले का सम्बन्ध या मित्रता एकदम टूट नहीं सकती। जगदीश को जुगलकिशोर की शरारत से कोई बड़ा नुकसान न हुआ था; और उसके यहाँ इकट्ठी हुई मंडली में कभी-कभी जुगलकिशोर आता रहता था। कई मित्र जगदीश को चेतावनी देते कि जुगलकिशोर के साथ सम्बन्ध अच्छा साबित न होगा। इसके उत्तर में जगदीश कहता—वह शरारती है, इसका प्रमाण मेरे पास नहीं है। और हो भी तो उसकी शरारत मेरे विरुद्ध नहीं होती और फिर एक बुरा आदमी कहकर उसे किस तरह अपने घर आने से रोक दूँ?

आज दोनों इकट्ठे हो गये और घर पर आये। कोकिला से बातचीत करते जुगलकिशोर पूछ बैठा कि पति-पत्नी दोनों ही नासमझ हों तो क्या हो?

जगदीश ने पास पड़ी हुई एक पुरानी कुर्सी पर बैठते हुए कहा—गृहस्थी लम्बे समय तक नहीं चलेगी।

जुगलकिशोर यह उत्तर सुनकर कुछ विचार में पड़ गया और उसने कहा—दोनों नासमझ हों तो भी गृहस्थी तो चलेगी ही, पर तुम्हारी भूल है। दोनों में से एक थोड़ा भी चतुर हो तो गृहस्थी सफलता से चल सकती है।

'इतनी अधिक फिलासफी से तुम्हें क्या काम?' दोनों के बीच की अवस्था के अन्तर की सूचना जगदीश जुगलकिशोर के प्रति बहुवचन का प्रयोग करके देता था।

'तुम्हारा मुँह देखते हुए मुझे ऐसा मालूम हुआ था कि आज कोई नयी बात हुई है तथा तुम और कोकिला बहिन खूब लड़े हो, पर अब यह ख्याल ठीक नहीं लगता।

अब भी कोकिला बहिन तुम्हारी तरफ़ इस प्रकार देखती रहती हैं मानो अभी विवाह हुआ हो। बहुत अचरज की तरह। इसलिए मैंने तुम दोनों को नासमझ कहा है। तुम नासमझ हो, यह मैं बहुत पहले से जानता हूँ।' जुगलकिशोर ने उत्तर दिया।

'पर हम क्यों लड़ेंगे?' आश्चर्य के साथ जगदीश ने पूछा।

'सारा संसार जिस लिए लड़ता है उसके लिए।'

'ऐसा? मैं तो नहीं समझा।'

'पुरुष को स्त्री पर शक हो और स्त्री को पुरुष पर सन्देह हो जाय, तो फिर झगड़ा होने का ही ठहरा, और संसार में ७५ प्रतिशत झगड़े इसी आधार पर होते हैं।'

जगदीश को अब कुछ समझ पड़ा। उसने पूछा—तुम क्या कहना चाहते हो? हमें क्यों सन्देह होगा?

'इसलिए कि तुमने अपने घर में एक सन्देहजनक चरित्र की स्त्री को जगह दी है।'

जगदीश चौंका—तुम्हें कैसे मालूम?

'सारे शहर को मालूम है।'

'किस तरह।'

'लो, पढ़ो।' कहकर जुगलकिशोर ने 'गर्जना' पत्र का आज का अङ्क उसके हाथ में दे दिया। अग्रलेखवाले स्तम्भ में 'हमारा सहायक' शीर्षक लेख जगदीश ने पढ़ा।

'गर्जना' पत्र का एक ही उद्देश्य मुख्य है, उसे कोई भी व्यक्ति इतना प्रिय नहीं है कि जिसे वह सत्य के लिए अलग न कर सके। इस पत्र का सिद्धान्त है कि उसकी व्यवस्था में भाग लेनेवाले छोटे-बड़े सभी, सीज़र की पत्नी की तरह अपने चरित्र से निर्दोष होने चाहियें। हमारे सहायक श्रीयुत जगदीश का स्वार्थ-त्याग सबको मालूम है। पर देश-सेवा का व्रत असिधारा की तरह होता है। उसका पालन करना कितना मुश्किल है, इसका उदाहरण उनके चारित्र्य-भङ्ग से मिलता है। रास्ते में विचरती, पुरुषों की वासना को उत्तेजित करती एक अपरिचित, किन्तु रूपवती स्त्री को अपने घर में रखने का सच्चा कारण जब तक सन्तोष-जनक रीति से हमारे सहायक न बता देंगे, तब तक उनका इस पत्र से सम्बन्ध-विच्छेद रहेगा। यह सबको बतलानेवाला हमारा दुःखदायी-कर्तव्य हमें निभाना पड़ रहा है। सत्य के उद्घाटन में हम किसीका लिहाज़ नहीं रखते। उसमें पराये और अपने का हम कोई भेद नहीं रखते।

जगदीश विचार में पड़ गया। जुगलकिशोर खिल खिलाकर हँस पड़ा।

'क्यों ? क्या विचार करते हो ? अब तुम जब बाहर शहर में निकलोगे तब पता चलेगा कि तुम्हारी तरफ कितनी उँगलियाँ उठती हैं। अभी से तुम्हारे घर की तरफ से जानेवालों की दृष्टि खिंचने लगी होगी, यह तुम जान सकते हो।'

'शान्तिप्रिय का चरित्र कैसा है, यह अब समझा।' चिढ़कर जगदीश बोला।

'तुम तो बहुत समझते हो। पर तुम्हारी सुनेगा कौन ? इस प्रतिष्ठा के साथ तुम्हें खड़ा कौन रखेगा ?'

'सच बात कोई सुनेगा ही नहीं ?'

'सम्पादक के सिवा भी कोई सत्य बात कह सकता है ? तुम्हें चाहिये कि अब अपना बचाव करो। इसमें छपी बात झूठ कैसे कही जा सकती है ?'

जगदीश फिर वह लेख पढ़ गया। उसके मुँह पर होते हुए परिवर्तन को जुगलकिशोर ध्यान से देख रहा था। वह बोला—एक-एक वाक्य झूठा है।

'तुम्हें तो ऐसा ही लगेगा। अच्छा, वह स्त्री रास्ते में घूमती-फिरती थी या नहीं ?'

'इसमें उसका क्या दोष था ?'

'फिर वही बात। पर यह बात ठीक है या नहीं ?'

'अच्छा, यह बात ठीक है, माने लेता हूँ।'

'पुरुषों की वासना को वह उत्तेजित करती थी या नहीं ?'

जगदीश को खयाल हुआ कि लोगों की बुरी दृष्टि उसने एक बार बिना विरोध किये सही थी। भूख, दुःख और एकान्तवास से ऊबा हुआ उस स्त्री का जीवन, जीने के लिए उस समय आखिरी प्रयत्न कर रहा था। अपने स्त्रीत्व की—और उस प्रसंग में अपने स्त्रीत्व के बिक सकने की—समाज को वह अन्तिम सूचना दे रहा था। दोषी कौन ?—स्त्रीत्व बेचने को लाचार स्त्री ? या उसे लाचार कर बहकाकर खरीद करनेवाला समाज ?

'वह जानकर ऐसा करती थी ?' जगदीश ने पूछा।

'तुम्हारे पत्र में ऐसा कहाँ लिखा है कि वह जान-बूझकर वासना उत्तेजित करती थी। अच्छा, वह सुन्दर है कि नहीं ?'

जगदीश हँसा और उसकी सुन्दरता की बात स्वीकार की।

'अब बताओ? तुमने उसे अपने घर में रखा या नहीं?'

'मानता हूँ रखा है।'

'अब अपना सच्चा कारण सन्तोष-जनक रूप में बताओ?'

'सच्चा कारण सन्तोष-जनक नहीं मालूम होगा, इसलिए मैं उसे नहीं बताऊँगा।'

'बस, यही देखना है। अब पत्र सच्चा है और तुम झूठे!' जुगलकिशोर ने हँसते-हँसते कहा।

जगदीश कुछ नहीं बोला। पर उसका हृदय जल उठा। जो उस स्त्री का खुद नाम तक नहीं जानता था; जिसका पिछला इतिहास कैसा है, यह भी वह नहीं जानता था; उस स्त्री का केवल रोना सुनकर उसने उसे आश्रय दिया, इसमें समाज दोष देखता है, इसकी समाज सजा देना चाहता है।

'मैंने जब तक यह हाल नहीं पढ़ा था, तब तक मैं समझ रहा था कि तुम अब सुधर गये हो, पर जब तुम्हें देखा तो मुझे अपनी भूल मालूम हुई। तुम अब भी जैसे-के-तैसे ही हो! और कोकिला बहिन भी वैसी ही नासमझ हैं।' जुगलकिशोर ने कहा।

'मैं सुधरा होता तो क्या करता होता?'

'तुम लालजी सेठ और विजयालक्ष्मी से इनकार न करते। अपने पत्र में अपनी ही बुराइयाँ न आने देते।'

'मेरे प्रति ऐसा लिखने का उन्हें एक बड़ा कारण मिल गया है।'

'तुम्हें बचाने की ज़रूरत नहीं। शान्तिप्रिय को मैं तुमसे अधिक जानता हूँ। पर अब बताओ तुम आगे क्या करना चाहते हो?'

'मुझे कुछ भी समझ नहीं पड़ता।'

'तुम्हें खर्च की ज़रूरत है कि नहीं?'

'बहुत ही, मेरी बनिस्बत कोई भिखारी भी अधिक पैसेवाला होगा।'

'सचाई से पैसा कमाना आजकल दुनिया में कठिन है। तुम्हें यह अब विश्वास होता है?'

जगदीश को कोई उत्तर न सूझ पड़ा।

'तो तुम भी लूट फिर क्यों नहीं शुरू करते ? शक्तिमान् लूटते हैं और निर्बल ही महात्मा होते हैं, यह इस संसार का हाल है।'

'किसकी लूट करते हो और किसलिए महात्मा होते हो ? मैं कबकी राह देख रही हूँ।' पीछे से आकर कोकिला बोली।

'तुम्हारे घर आये तो तुम्हारी मूर्खता नज़र आती है। इसलिए खाना-पीना भी भूल जाते हैं।' व्यंग में प्रशंसा कैसे की जाती है, यह जुगलकिशोर अच्छी तरह जानता था। कोकिला दोनों को भोजन कराने ले गई। जुगलकिशोर ने पीयूष को अपने पास बैठाया और बालक को कई प्रकार से खिलाकर प्रसन्न किया। राधा भी वहीं थी। खाते-खाते दो-चार बार जुगलकिशोर ने उसकी तरफ देखा। उससे रहा नहीं गया और उसने धीरे से राधा के बारे में जगदीश से कहा—नाटक या फिल्म-कम्पनी में पहुँच जाय, तो तनख्वाह तो अच्छी मिले।

जगदीश उत्तर में सिर्फ़ हँस दिया।

'पर अपने लायक ठीक धंधा किसीको खोजना आवे तब तो ?' जुगलकिशोर ने कहा।

(९)

खा चुकने के बाद जुगलकिशोर ने उसकी ये बातें निकालीं, जगदीश की व्यवहार-शून्यता के लिए ताना दिया, उसकी निष्फलता के प्रति व्यंग किया; और उसके परिणाम की निरुपयोगिता बता डाली।

'देखो, अपना उद्देश्य तो तुमने तय कर लिया है न ?' उसने पूछा।

'हाँ, मुझे देश की सेवा करनी है, यही मेरा उद्देश्य है, जगदीश ने कहा।

'पहले तो यह कि तुम्हारी सेवा की देश को ज़रूरत है या नहीं ? पहला सवाल; और तुम्हारी सेवा की ज़रूरत देश को है तो क्यों, यह दूसरा सवाल; इन दोनों को एक तरफ़ रख दें तो भी एक बात निश्चित है कि तुम अभी अपने इन सवालों तक उद्देश्य में सफल नहीं हो सके।

'मैं मानता हूँ ?'

'इसके कारण का भी कभी विचार किया ?'

'मैं उसीको खोजता हूँ।'

'खोजने की ज़रूरत नहीं। उद्देश्य पवित्र हो या पापमय; पर उसे सफल करने के

लिए जो सामने आयें, वे ही साधन काम में लाने चाहियें। नये साधनों की कल्पना करने से कुछ नहीं बनता।'

'तुम इतने बड़े फिलासफर हो गये हो, इसकी मुझे खबर नहीं थी। पर तुम क्या कहते हो, यह मैं नहीं समझ सका।'

'एक उदाहरण देता हूँ। भारत से अफ्रीका जाना है। समुद्र पार करने के सिवा और कोई चारा नहीं। अब तुम कहो कि समुद्र खारा क्यों? तो क्या समुद्र को मीठा बनाने के लिए मैं उसमें पैर डालूँ? फिर तुम अफ्रीका किस तरह पहुँचोगे?'

'मेरा तो ऐसा कुछ कहना नहीं है।'

'तुम्हारे बारे में ऐसा ही कहा जा सकता है। ऐसा न होता तो तुम निष्फल न रहते। तुम्हें तुम्हारे साथी अविश्वसनीय लगते हैं; तुम्हें अफसर अभिमानी और यश के भूखे लगते हैं। तुम्हें तुम्हारे ही पक्ष के पत्र ज़हरीले लगते हैं—जब ये सभी सुधरें तब तुम्हारी देश-सेवा की शुरुआत होगी। पर भले आदमी, हर बात में तुम पीछे रह गये। साधनों को सुधारकर निर्मल करने के बाद जो देश-सेवा करनी हो, तो ब्रह्मा को दो-चार दिन नींद ले लेने दो।'

'तुमने मुझे ठीक तौर से पहचाना नहीं।'

'अरे, मैं तो क्या कोई भी ठीक तौर से तुम्हें नहीं पहचान सकेगा। जो साधन मिलें उनका उपयोग करना, यही सफलता का मार्ग है। अपने नेता, देश-सेवक और अपने पत्रकार—इन साधनों से झगड़ा करके तुम्हें क्या मिला?'

'पर अब मुझसे क्या हो सकता है, यही सोचता हूँ। मेरे पत्र ने ही मेरी प्रतिष्ठा को नष्ट किया है।'

'यह अच्छा ही हुआ। अब तक तुम्हें किसकी लाज-शर्म थी? अब मैं जो बताऊँ, वह मार्ग पकड़ो; फिर देखना कि कैसी देश-सेवा हो सकती है।'

जगदीश हँसा। देशोद्धार का मार्ग अब जुगलकिशोर जैसे प्रसिद्ध बदमाश के द्वारा जो चुना जाना है।

'अच्छी बात है, अब तुम मेरे गुरु बनो।'

'आज से ठीक एक हफ्ते में मुझसे मिलना। मैं बुला भेजूँगा। रात का समय हो तो घबड़ाना मत।'

'कोई प्रपंच तो नहीं रचना है?'

'इसके बिना भला बनता है। और हम रोज करते ही क्या हैं? अपना प्रत्येक कार्य जीने और सुख भोगने का षड्यन्त्र ही तो होता है, समझे?'

थोड़ी देर में जुगलकिशोर चला गया। जगदीश विचित्र स्थिति में चिन्तित हो व्याकुल होने लगा। उसके शरीर और हृदय को ज़रा भी आराम न था। उसके दिमाग का एक-एक अणु बिजली की तेज़ी से कार्य करता था। वह तेज़ी उसके मस्तिष्क में शूल की तरह चुभ रही थी। वह हिंडोले पर बैठा। झूला विचारों की समस्या को और भी बढ़ानेवाला नशा है। जगदीश अस्वस्थ हो गया। उसके सिर का दर्द इतना बढ़ गया कि हिंडोले पर रखे हुए मोटे तकिये पर उसने सिर टिका-कर आँखें मूँद लीं। वह जाग रहा था; आखिर आस-पास का ध्यान भूलकर वह निद्रा के स्वप्न की अपेक्षा अधिक ज्वलन्त स्वप्न देखने लगा। जुगलकिशोर के साथ वह अनेक प्रपंच रचता हुआ अपने को देख रहा था। कभी नौकरशाही को वह उखाड़ डालता, कभी ढोंगी देश-सेवकों को निर्वासित करता, कभी पत्रकारों को फाँसी की सजा देता और फिर कभी समाज के मूर्ख-वर्ग को वह नष्ट कर देता। वह कितनी देर तक इस जाग्रत् स्वप्न में रहा होगा, इसका उसे ख्याल न रहा। पर एकाएक दरवाज़े पर ज़ोर से खड़खड़ाहट होते ही उसने अपनी आँखें खोलीं। कोकिला उसके पास ही खड़ी धीरे-धीरे पंखा झलती दिखाई दी। मृदुता के महासागर में मानो जगदीश ने डुबकी लगाई हो, ऐसा भाव उसे मालूम हुआ।

तत्काल दरवाज़े पर ज़ोर से धक्का लगा, और उसके खुलते ही एक सिपाही का चढ़ा हुआ चेहरा दरवाज़े के बीच से दिखलाई दिया। जगदीश के गुस्से की कोई सीमा न रही। सिपाही में सभ्यता शायद ही होती है। उसने आवेश में पूछा— जगदीश किसका नाम है?

'मेरा नाम जगदीश है; क्यों क्या है?' क्रोध से जगदीश ने कहा।

गृहस्थी के सामान आदि की विशिष्टता को परखकर गृहस्थ की हैसियत की नसीहत सिपाहियों को नहीं दी जाती। वह असभ्यता का अवतार था। उसने कहा— तुम कैसे आदमी हो? कबसे जंजीर खड़खड़ा रहा हूँ, फिर भी तुम बोलते नहीं और थानेदार साहब दरवाज़े पर खड़े हैं।

इतना कहकर वह अन्दर आया। पीछे से थानेदार साहब भी आये और आकर इस तरह निश्चिन्त हो कुर्सी पर बैठ गये, मानो वह उन्हीं की हो। थानेदार साहब

ऊँचे और तगड़े थे। ऊँचाई और उद्दण्डता थानेदारों की टेक रखने की योग्यता मानी जाती है। खाकी ब्रिचिज़ और चाँदी के गोल बटनवाला खाकी कोट उसके रोब को बढ़ाता था, छाती ताने अकड़े रहने की आदत मालूम हो रही थी, अधिकार होने का ऐश पेट की ऊँचाई से साबित हो रहा था। रुपहली बिल्लेवाली टोपी किसी छैल-छबीले को शरमा सके, इस सफ़ाई से लगी हुई थी। उसकी भरावदार मूँछों के दोनों छोर नोकदार और तने हुए थे। आँखें चढ़ी हुई थीं।

'जगदीश तुम्हारा ही नाम है?' थानेदार साहब ने हाथ की चाँदी की मूठवाली छड़ी घुमाते हुए पूछा।

'हाँ, मैंने एक बार कहा न?'

'एक बार नहीं, जितनी बार पूछेंगे, उतनी बार बताना पड़ेगा। तुम्हारे घर में कितने आदमी हैं?'

'क्या मर्दुमशुमारी करनी है!'

'मर्दुमशुमारी तो क्या, पर सबको यहाँ हाज़िर करना पड़ेगा। समझे?'

कोकिला खड़ी-खड़ी सुन रही थी। स्त्रियों की हाजिरी में अधिकारियों का रोब कुछ बढ़ जाता है। थानेदार साहब बार-बार कोकिला की तरफ़ देखकर जगदीश को अधिक-से-अधिक दबाने लगा। अपने चमचमाते बूट से, चमचमाती आँखों से, चम-चमाते बिल्ले से, कोकिला का उसकी तरफ आकर्षण होता है या नहीं, इसका भी थानेदार को खयाल था।

'अपने घर में एक मैं, दूसरी मेरी पत्नी और तीसरा मेरा पुत्र—तीन आदमी हैं।' जगदीश ने कहा। उसका गुस्सा कम हो गया था।

'यह तुम्हारी पत्नी है, इसका क्या सबूत है?' थानेदार ने बड़ी गम्भीरता से पूछा। यह सवाल भी पूछा जा सकेगा, इसकी जगदीश को स्वप्न में भी आशा नहीं हुई थी। उसने कोकिला के सामने देखा, और दोनों को हँसी आ गई।

'यह मेरी पत्नी है। इसका यही सबूत है। हाँ, यह इनकार कर दे तो फिर मेरे पास कोई सबूत नहीं रह जाता।' जगदीश ने कहा।

तिरस्कारपूर्ण दृष्टि से कोकिला ने थानेदार की तरफ़ देखा। थानेदार साहब ने मूँछ की नोक को एक और बल दिया।

'इनके सिवा तुम्हारे घर में और कोई दूसरा मनुष्य नहीं। यह तुम कसम खाकर कह सकते हो?'

'थानेदार साहब, तुम अब बहुत आगे बढ़ते जा रहे हो? तुम्हें इस तरह पूछने का कोई हक नहीं, अब अगर आगे बढ़ोगे तो मैं तुम्हें घर से बाहर निकाल दूँगा।'

यह उत्तर सुनकर थानेदार नर्म पड़ गया। 'देखो, तुमने कसूर किया है या कसूर होनेवाला है, और इसलिए हमें जाँच करके उसका पता लगाना है और होनेवाला हो तो उसे होने से रोकना है।'

'मैंने क्या कसूर किया है? यह तो बताओ?'

'तुमने एक औरत को घर में भगाकर रख लिया है और उसे लेकर भागने-वाले हो।'

'मैंने तो एक असहाय स्त्री को आश्रय दिया है, और यदि उसे ले भागने की मेरी इच्छा हो तो क्या यह मेरी पत्नी वैसा करने देगी?'

'हाँ यह मानता हूँ, भाई! पर तुम्हें आश्रय देने की क्या वजह?'

'यह निराश्रय भूखी-प्यासी भटकती फिरती थी, मुझे दया आ गई।'

'ओ हो दया आ गई! खूबसूरत औरत पर ज़रूर दया आती है। हँसते-हँसते थानेदार बोला। हिंडोले पर कोई चीज़ नहीं थी, नहीं तो जगदीश उसी से थानेदार को ठोकता।'

थानेदार ने शिक्षा दी—यों दया-माया नहीं चलती। इस तरह की बहुतेरी स्त्रियाँ माँगती-खाती फिरती हैं, उन्हें आश्रय नहीं देना चाहिए? दोष बतलाने और दोष-प्रकाशन के लिए पुलिस की नियमावली में भारी वेदान्त जैसा ज्ञान भरा होता है। संसार झूठा है और संसार के सब मनुष्य झूठे हैं, यह उसका पहला विश्वास है। यह विश्वास झूठा है; यह किस तरह कहा जा सकता है?

'थानेदार साहब, कल ही आप यह कहेंगे कि जब तक दुनिया के भिखारियों को पैसा नहीं दिया जा सकता तब तक एक भी भिखारी को पैसा देना गुनाह है, यह कैसे हो सकता है?'

'यह ऐसे ही जनाब! उनकी बात जुदी है।'

'पर इस काम में पुलिस को क्या दखल हो सकता है, यह मेरी समझ में नहीं आता। जिस स्त्री को मैंने आश्रय दिया वह स्त्री समझदार और योग्य उम्र की है।'

'इसका सबूत क्या ? तुम्हारे पास क्या उसके जन्म की तारीख लिखी है ?' जगदीश ने अब निश्चित तौर पर समझा कि दुनिया में सच्चाई केवल कानून का पञ्जा और सबूत के लिए एक प्रपंच है।

'तो फिर आपका क्या विचार है ? मुझे क्या करना है। मेरे पास ऐसा सबूत तो है नहीं।'

'अब फिजूल की बातें रहने दो उस बाई को अपने रास्ते जाने दो। अपनी जांच से मैं तुम्हें बचा लूँगा।'

'उसे रास्ता बता दूँ, पर उसे जीने के लिए पूरी खुराक मिलेगी, इसका विश्वास दिलाते हो।'

'पुलिस-डिपार्टमेण्ट में सदाव्रत नहीं चलता। तुम्हें इस पंचायत में पड़ने की क्या वजह ? तुम्हें इससे छूटना हो तो···तो···मैं तजवीज करूँ।' लोभ और उलझन का युद्ध थानेदार के मुँह पर प्रगट होता दिखाई दिया।

'मुझे फिर इनाम मिलना चाहिये।' ज़रा दूर खड़े हुए सिपाही ने कहा और थानेदार के वाक्य का मतलब बताया।

कैसा इनाम और कैसी तजवीज यह जगदीश समझ गया। अधिकार प्रत्येक क्षण और प्रत्येक परिस्थिति में भ्रष्ट होता रहता है। सत्ताधारी जब तक दूसरे की गरीबी स्वीकार नहीं कर लेता तब तक उसकी सत्ता प्रत्येक क्षण बिकती ही रहती है।

'थानेदार साहब, मालूम होता है आप तो मुझे भूल गये मालूम होते हैं; पर मैं आपको नहीं भूला।' जगदीश ने कहा—थोड़े वर्ष पहले रिश्वत लेने के कारण, तुम्हारी जांच हुई थी, याद है ?'

जगदीश जब नौकरी में था तब इस थानेदार के विरुद्ध जांच करने का उसे मौका आया था। उस समय उसकी सिफारिशों की चिट्ठियों की जगदीश पर मानो वर्षा हुई थी; संगी साथी और मित्रों की याद ताज़ी हुई। कोकिला से कई परिचय हुए और छोटी-मोटी भेंट उसके सामने हाज़िर की गईं। पुलिस का डर, सबूत देने का इन्तज़ाम हुआ और फल-स्वरूप थानेदार निर्दोष ठहरा और बच गया। फिर जगदीश ने भी उसका ख्याल कर उस पर रिश्वत लेने का विश्वास होने पर भी उसे कोई सज़ा नहीं दी। इससे एक हल्की ठोकर खाकर थानेदार बच गया; और निडरता का एक खास सीख गया।

'ऐसी तो कई जांचें हो चुकी।' घमंड से थानेदार ने बताया। उसकी याददास्त इतनी खराब न थी कि वह जगदीश को न पहचान सके। पर जगदीश कोई अब पदाधिकारी के रूप में तो था नहीं, इसी वजह से अब थानेदार को जगदीश की परवा न थी।

'अब तुम मुझसे रिश्वत मांगने की हिम्मत करते हो? जाओ, यहां से निकल जाओ!'

'पर उस बाई का क्या करोगे?' उठते-उठते थानेदार ने पूछा।

'वह बाई मेरे घर में है और यहीं पर रहेगी?'

"तो तुम अपना कसूर मानते हो?' थानेदार ने पूछा।

'इसमें कसूर होता हो तो वह मैं मानता हूँ। जितना चाहो उतनी सजा कराना।'

'अफसरी गई पर उसका नशा अभी तक नहीं गया। अब तो यह मामला बनाना ही पड़ेगा। तब पता चलेगा।' सत्ता के प्रतिनिधि ने कहा। इसके बाद वह तेजी से घर के बाहर हो गया।

'क्या?' फिजूल और असह्य बातें अधिक बर्दाश्त न कर सकने के कारण जगदीश गुस्सा हो उठा; फिर थानेदार और सिपाही के पीछे दरवाज़े की तरफ़ दौड़ा। वे दोनों आधी सीढ़ियां उतरे होंगे। जगदीश ने ज़ोर से दरवाज़ा बन्द किया और दरवाज़े पर एक लात जमाकर वह हिंडोले पर आ बैठा और फिर तकिये पर सिर रख लिया। उसका चेहरा लाल हो गया था। थोड़ी देर में आंखों के पलक झँपने लगे और उसके दांत एक-दो बार रगड़ने से बज उठे। पास ही कमरे के दरवाज़े के पीछे खड़ी-खड़ी राधा यह सब सुन रही थी। अब वह सिसकने लगी। जगदीश का मुँह तमतमा रहा था। उसने कोकिला से कहा—देखो, राधा क्यों रोती है? उसे चुप कर दो और कह दो जब तक जगदीश का घर है तब तक उसे कोई अलग न कर सकेगा?

'और कोकिला के घर से वह अलग होगी?' अपने पत्नी के तौर पर घर में रहने का हक याद आया। अपने पति की इच्छा के अनुकूल अपने को भी समझ कोकिला राधा के पास गई।

पर पत्नी के इस वाक्य का असर जगदीश पर दूसरा ही हुआ। घर उसका नहीं, कोकिला का ही है, और यह ठीक है, उसने ऐसा समझा।

'घर में मेरा क्या है? सब तो कोकिला चलाती है। राधा को कोकिला के घर

'इसका सबूत क्या ? तुम्हारे पास क्या उसके जन्म की तारीख लिखी है ?' जगदीश ने अब निश्चित तौर पर समझा कि दुनिया में सच्चाई केवल कानून का पञ्जा और सबूत के लिए एक प्रपंच है।

'तो फिर आपका क्या विचार है ? मुझे क्या करना है। मेरे पास ऐसा सबूत तो है नहीं।'

'अब फिज़ूल की बातें रहने दो उस बाई को अपने रास्ते जाने दो। अपनी जांच से मैं तुम्हें बचा लूँगा।'

'उसे रास्ता बता दूँ, पर उसे जीने के लिए पूरी खुराक मिलेगी, इसका विश्वास दिलाते हो।'

'पुलिस-डिपार्टमेण्ट में सदाव्रत नहीं चलता। तुम्हें इस पंचायत में पड़ने की क्या वजह ? तुम्हें इससे छूटना हो तो···तो···मैं तजवीज करूँ।' लोभ और उलझन का युद्ध थानेदार के मुँह पर प्रगट होता दिखाई दिया।

'मुझे फिर इनाम मिलना चाहिये।' ज़रा दूर खड़े हुए सिपाही ने कहा और थानेदार के वाक्य का मतलब बताया।

कैसा इनाम और कैसी तजवीज यह जगदीश समझ गया। अधिकार प्रत्येक क्षण और प्रत्येक परिस्थिति में भ्रष्ट होता रहता है। सत्ताधारी जब तक दूसरे की गरीबी स्वीकार नहीं कर लेता तब तक उसकी सत्ता प्रत्येक क्षण बिकती ही रहती है।

'थानेदार साहब, मालूम होता है आप तो मुझे भूल गये मालूम होते हैं ; पर मैं आपको नहीं भूला।' जगदीश ने कहा—थोड़े वर्ष पहले रिश्वत लेने के कारण, तुम्हारी जांच हुई थी, याद है ?'

जगदीश जब नौकरी में था तब इस थानेदार के विरुद्ध जांच करने का उसे मौका आया था। उस समय उसकी सिफारिशों की चिट्ठियों की जगदीश पर मानो वर्षा हुई थी ; संगी साथी और मित्रों की याद ताज़ी हुई। कोकिला से कई परिचय हुए और छोटी-मोटी भेंट उसके सामने हाज़िर की गईं। पुलिस का डर, सबूत देने का इन्तज़ाम हुआ और फल-स्वरूप थानेदार निर्दोष ठहरा और बच गया। फिर जगदीश ने भी उसका ख्याल कर उस पर रिश्वत लेने का विश्वास होने पर भी उसे कोई सज़ा नहीं दी। इससे एक हल्की ठोकर खाकर थानेदार बच गया ; और निडरता का एक खास पाठ सीख गया।

'ऐसी तो कई जांचें हो चुकी ।' घमंड से थानेदार ने बताया। उसकी याददास्त इतनी खराब न थी कि वह जगदीश को न पहचान सके। पर जगदीश कोई अब पदाधिकारी के रूप में तो था नहीं, इसी वजह से अब थानेदार को जगदीश की परवा न थी।

'अब तुम मुझसे रिश्वत मांगने की हिम्मत करते हो? जाओ, यहाँ से निकल जाओ!'

'पर उस बाई का क्या करोगे?' उठते-उठते थानेदार ने पूछा।

'वह बाई मेरे घर में है और यहीं पर रहेगी?'

'तो तुम अपना कसूर मानते हो?' थानेदार ने पूछा।

'इसमें कसूर होता हो तो वह मैं मानता हूँ। जितना चाहो उतनी सजा कराना।'

'अफसरी गई पर उसका नशा अभी तक नहीं गया। अब तो यह मामला बनाना ही पड़ेगा। तब पता चलेगा।' सत्ता के प्रतिनिधि ने कहा। इसके बाद वह तेजी से घर के बाहर हो गया।

'क्या?' फिजूल और असह्य बातें अधिक बर्दाश्त न कर सकने के कारण जगदीश गुस्सा हो उठा; फिर थानेदार और सिपाही के पीछे दरवाज़े की तरफ़ दौड़ा। वे दोनों आधी सीढ़ियां उतरे होंगे। जगदीश ने ज़ोर से दरवाज़ा बन्द किया और दरवाज़े पर एक लात जमाकर वह हिंडोले पर आ बैठा और फिर तकिये पर सिर रख लिया। उसका चेहरा लाल हो गया था। थोड़ी देर में आंखों के पलक झँपने लगे और उसके दांत एक-दो बार रगड़ने से बज उठे। पास ही कमरे के दरवाज़े के पीछे खड़ी-खड़ी राधा यह सब सुन रही थी। अब वह सिसकने लगी। जगदीश का मुँह तमतमा रहा था। उसने कोकिला से कहा—देखो, राधा क्यों रोती है? उसे चुप कर दो और कह दो जब तक जगदीश का घर है तब तक उसे कोई अलग न कर सकेगा?

'और कोकिला के घर से वह अलग होगी?' अपने पत्नी के तौर पर घर में रहने का हक याद आया। अपने पति की इच्छा के अनुकूल अपने को भी समझ कोकिला राधा के पास गई।

पर पत्नी के इस वाक्य का असर जगदीश पर दूसरा ही हुआ। घर उसका नहीं, कोकिला का ही है, और यह ठीक है, उसने ऐसा समझा।

'घर में मेरा क्या है? सब तो कोकिला चलाती है। राधा को कोकिला के घर

में रखने का मुझे क्या अधिकार है ? हम और राधा दोनों कोकिला की कृपा से ही इस घर में रह सकेंगे ?' यह विचार बढ़ने लगा जगदीश के हृदय में बड़ी हलचल मची। तूफान में चलते जहाज की गति अत्यन्त तेज़ हो जाती है, पर वह तेज़ी थोड़ी देर की होती है। जहाज इस चाल को न सह सके तो ख़राब हो जाय या डूब जाय। हृदय का भी यही हाल है। थोड़ी देर में मानों कोकिला आकर यह कहती है कि 'मेरे घर में तुम दोनों मत रहो।' तो फिर उसके न मानने के लिए पुरुष के पशु-बल के सिवा दूसरी कोई दलील रहती है तो क्यों इसका जगदीश को ख़याल आया। इतने में कोकिला आई। विचारों के पागलपन में पड़े जगदीश को ऐसा लगा कि अपनी कल्पना की बातें कहने को ही कोकिला इतनी जल्दी से आई थी। वह झट उठ बैठा, और मानो कोकिला ने उसकी कल्पना के अनुसार ही कहा हो ऐसा समझकर वह उससे पूछने लगा—तो फिर यह घर मेरा नहीं, ठीक है न ?

कोकिला ने इस सवाल का जवाब नहीं दिया ; पर जगदीश के सिर पर उतावली से हाथ रखा। उसका सिर बहुत गर्म था। राधा को समझाकर कोकिला झपटकर अस्वस्थ पति के पास आई। और पूछा—इतना ज्यादा गुस्सा होना चाहिये ? सिर कितना गर्म हो गया है ?

'मैं क्या तुम्हारे ऊपर गुस्सा हूँ ?'

'पर इसमें थानेदार क्या करता ? किसी ने लिखा होगा, इसीलिए यों उसने तलाश किया। कानून के अनुसार काम तो करना ही पड़ता है ?'

'कानून ! जिस कानून में अनाथ की रक्षा नहीं, उसे जला डालना चाहिये।'

'कानून खराब होगा तो सुधरेगा।'

'सुधरेगा ! तुम किससे कानून सुधरने की आशा रखती हो ? सत्ता के प्रतिनिधि थानेदार को तुमने देखा ही। अब सत्ता के दूसरे प्रतिनिधि मजिस्ट्रेट को देखना बाकी रहा। मैंने भी कुछ फैसले किये थे, इसलिए न्याय क्या होता है, यह मैं भी जानता हूँ।'

'लोग सुधरेंगे।'

'लोग ? जो समाज राधा को भीख माँगने के लिए लाचार करे, जो भीख भी पूरी न देकर भरे बाज़ार में उसके स्त्रीत्व का अपमान करता है। अगर उसे मैं दो घड़ी अपने झोपड़े में आश्रय देता हूँ, इसमें मुझे दोषी समझकर वह मेरा बहिष्कार

करता है। यही समाज कानून बदलवायगा? सत्ता और समाज दोनों ज्वालामुखी में होम देने के लायक हैं।'

'ऐसी ही सत्ता और समाज में तुम हो, आखिर तुमने जो आश्रय दिया, वह कोई कम नहीं। अब जो होगा, वह ठीक ही होगा।' कोकिला ने कहा।

'मैंने आश्रय दिया कि तुमनें?' जगदीश का मन फिर दूसरे रास्ते पर झपट कर आया।

'ऐसी फूट डालने की क्या ज़रूरत है?'

'खास ज़रूरत है। बताओ! यह घर किसका है?'

'देखो, यह एक मेरे नाम का पत्र आया है, पर वह तुम्हारे केअर आफ (मार-फत) है। केअर आफ का अर्थ तो तुमने ही मुझे समझाया था। अब कहो, घर किसका?,

'इस घर में मेरा क्या है?'

'इस घर में एक चीज़ ऐसी है कि जो तुम्हारी ही है।' कोकिला ने हँसकर कहा।

'वह चीज़ क्या है?'

'तुम्हारे ही पास है—तुम्हारे ही पास है।' कोकिला ने जगदीश का हाथ धीरे से अपने पास सरकाया।

'मेरे सामने तो तुम बैठी हो!'

'बस तो फिर समझ जाओ। दूसरा भले ही चाहे तुम्हारा न हो, पर कोकिला तो तुम्हारी ही है न?'

एक क्षण तक जगदीश कोकिला के सामने देखता रहा। कोकिला की आँखों से निकलते हुए प्रफुल्ल प्रकाश में वह डूब गया। उसके तूफ़ानी हृदय को शान्त होने का आधार मिला। अपना हृदय शान्त होने पर वह समझा कि उसका सिर बहुत दुख रहा है। कोकिला जगदीश का हाथ अपनी गोद में रख रही थी, उसने उसे रखने दिया और फिर जगदीश बोला—कोकिला! मेरे सिर में इतना दर्द क्यों है?

'हाय-हाय! इतना ज़ोर का बुखार है? मैं कैसी हूँ जो तुमसे बातें कर रही हूँ? सो जाओ, मैं सिर दबाती हूँ।' कहकर कोकिला ने जगदीश की आँखें चूमीं। अन्दर से राधा और विजयालक्ष्मी आ रही थीं। उन्होंने यह चेष्टा देख ली थी।

कोकिला शरमाई। उनकी तरफ देखने पर उसने दोनोंको बुलाया—आओ!

(१०)

कोकिला ने जगदीश का सिर दबाना चालू रखा। मामूली तौर पर वह शरमाती थी। इतना ही नहीं, वह कुछ पुराने ढंग की भी थी। उसने किसी अंग्रेजी स्कूल में नहीं पढ़ा था। बाद में उसे साधारण अखबार और तार आदि पढ़ने लायक ज्ञान अंग्रेज़ी का मिला था। इसलिए अंग्रेजी स्कूल में मिली हुई निस्संकोचता का भाव उसमें दिखाई नहीं देता था। पति को हाथ के इशारे से बुलाना, उनके बैठ जाने के बाद बैठना; पति के नाम के बदले उन्हें 'डीयर' कहकर एक वचन में संबोधन करना, अधिक-से-अधिक पति से थोड़ी सुरुचि भरी रीति से गुस्सा होना और फिर लड़ते-लड़ते मनाना इत्यादि, आजकल के ज़माने की बातें उसे नहीं आती थीं। आखिर वह आज पति को चूमती हुई पकड़ी गई। इसलिए वह लज्जा से सिर नीचा किये अपना काम करती रही।

'भाई को क्या हो गया है?' धीरे से राधा ने पूछा, राधा ने अपना व्यावहारिक सम्बन्ध तय कर लिया था। संसार में बन्धुभाव फैलानेवाले सुधारकों को, भारत की और खासकर गुजरात की एक इस अनोखी सम्बन्ध-भावना की आदत डालने की ज़रूरत है। हमारे यहाँ 'भाई' कहने के बाद भाई ही हो जाना पड़ता है। चित्तौड़ की राजमाता की भेजी राखी को स्वीकार कर, अपनी सेना के साथ उसकी सहायता करने गये हुए बादशाह हुमायूँ का नाम इतिहास में आता है। गाँव की एक लड़की सारे गाँव की लड़की मानी जाती है। उसके पिता की उम्र के सभी लोग उसे पुत्री मानते हैं; उसके भाई की उम्र के सभी लोग उसे बहिन मानते हैं; इतना ही नहीं, उस बहिन के बच्चों से भानजे के रूप में व्यवहार किया जाता है। यह बहिन जिस गाँव में ब्याही होगी, उस गाँव में उसके पिता के गाँव का चाहे जो आदमी जाय वह उसे लड़की और बहिन समझकर उसे कुछ देने का रिवाज पूरा करेगा। गाँव में रही हुई राधा अपने रक्षा करनेवाले की यदि बहिन बन जाती है तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं।

'बुखार आ गया और सिर में दर्द है।' कोकिला ने राधा से कहा।

'अरे!' विजयालक्ष्मी बोल उठी—मुझे यों ही कुछ काम था। कबसे बुखार आया है? सुबह तो तबियत ठीक थी न?

'...र तो पहले से ही आया होगा, पर पता अभी तेज़ होने पर चला है।'

'डाक्टर को बुलवाओ न !' विजया ने सलाह दी। धनी लोग यह सलाह बड़ी जल्दी दे सकते हैं।

'मैं यही सोचती थी। पर किसे बुलाने भेजूँ, यही नहीं समझ में आ रहा है।' कोकिला ने कहा।

'ओ हो ! इसमें क्या ? हम क्या दूर रहते हैं ? वक्त पर हमसे न कहोगे तो और किससे कहोगे ?' विजया ने समझदारी बतलाई और फौरन उठकर छज्जे पर गई। उसके एक-दो नौकर पास के ही बरामदे में बैठे थे, उन्हें उसने ऊपर बुलाया और एक से कहा — एकदम गाड़ी ले जाकर अपने डाक्टर को बुला लाओ। यह सुनकर वह आदमी चला गया। फिर विजया ने दूसरे से कहा—देखो, मेरे खुले हुए छोटे बक्स से थर्मामीटर और गुलाबजल की शीशी जल्दी लाओ। यह देखकर कोकिला मानो अहसान के नीचे दब गई। अमीर द्वारा जब ग़रीबों को मदद मिलती है तब यह मौका ग़रीबों को अपनी ग़रीबी में और भी ग़र्क कर देता है।

'विजया बहिन, तुम इतना कष्ट क्यों करती हो ?' कोकिला ने कहा।

'इसमें कष्ट क्या है ?' विजया ने कहा। इस समय विजया की बोली में धनवान् का गर्व नहीं सुनाई दे रहा था। धनवान् की कृपा मालूम नहीं होती थी। जगदीश की आँखें चूमते पकड़ी गई कोकिला की लज्जा, और इस लज्जा भरे समय में सिर दबाने को शुरू की गई क्रिया—ये दोनों दृश्य विजया को अलौकिक सौन्दर्यमय मालूम हुए। उसके पास बढ़िया से बढ़िया गहने और कपड़े थे। पर इस दृश्य के सामने उसे अपनी सारी सजावटें फीकी मालूम हुईं। विजया सुन्दर थी, शौकीन थी, विलासिनी थी और सभ्य थी। उसे गुजराती पढ़ने के बाद दूसरी पुस्तकें पढ़ने का शौक़ बहुत बढ़ गया था। अंग्रेजी शिक्षा का असर होने पर भी प्रेमानन्द और दयाराम से संस्कार पाया हुआ मध्यवर्ग कलापी और न्हानालाल को अपना हो सकता है, और पुराने संस्कारों के संयोग से गुजरात को मिले सुन्दर स्त्रीत्व के नमूने की तरह ही विजया को शौक और विलास भोगने के लिए पूरे-पूरे साधन मिले थे। इसलिए उसके संस्कार अतृप्त रह गये थे, और इस अतृप्ति के परिणाम-स्वरूप उसके अस्पष्ट संस्कार विद्रोही बनते जा रहे थे।

उसने पति का स्वप्न रचा था। यौवन की मस्ती से भरा हुआ कोई पुरुषार्थी जिसे देखते ही रहने का मन हो, ऐसा मोहक, उसके सौन्दर्य की कद्र करनेवाला रसिक और

विलास को नीरस बनानेवाली अतिशयता से निकाल लेनेवाला सुसंस्कृत पति उसने अपने स्वप्न में रचा था, किन्तु संसार में किसका सपना पूरा हुआ है ? लालजी सेठ के बड़े भाई गिरधर सेठ का गाँवों में लेन-देन का कारोबार था। किसानों और साहूकारों में व्याज के रूप में पैसा वसूल करते-करते उनके पास बहुत धन हो गया था। लालजी सेठ ने अपने बड़े भाई की देख-रेख में व्यापार सीखा था। पर गिरधर सेठ के लड़ाई-झगड़े से परेशान होकर लालजी सेठ जवानी में गाँव छोड़कर शहर में बस गया था। लालजी सेठ का शहर में बसना गिरधर सेठ को बड़ा अनुकूल साबित हुआ। किसानों से मिले अनाज को लालजी के मारफत विदेश के व्यापारियों को बेच देने की इससे अच्छी व्यवस्था हो गई थी। गिरधर सेठ को अपने भाई की आढ़त के प्रति बड़ा मान बढ़ गया था।

दोनों भाइयों के बीच अच्छा सम्बन्ध था। गिरधर सेठ के कोई सन्तान न थी। अपनी पत्नी की मृत्यु के बाद, उसने विधुर पुरुष की नकल करने के लिए दूसरा विवाह करने की उम्मेदवारी की। उन दिनों विजया अपनी शिक्षा पूरी कर अपने सपनों में मग्न रहती थी। उसकी तरफ गिरधर सेठ की दृष्टि दौड़ी। बिना मा-बाप की विजया अपने काका-काकी के पास रहती थी। विजया की तरफ़ उसकी काकी का पक्षपात था, काका भी कोई बुरा न था, पर व्यापार में बार-बार होनेवाले घाटे से वह परेशान था। और उसे पालना उसके लिए मुश्किल होता जा रहा था। अर्थात् मुसीबत के मारे विजया के काका ने उसका विवाह गिरधर सेठ के साथ करना मंजूर कर लिया। पर लालजी सेठ इस शादी के खिलाफ़ हो गया। गिरधर सेठ को यह दलील बिना आधार की मालूम हुई। वह अपने को 'वृद्ध' एक क्षण के लिए भी नहीं मान सकता था। कौटुम्बिक जीवन में ये शब्द बिल्कुल माननेवाले न थे। पैंतीस या चालीस वर्ष के बाद प्रत्येक पुरुष को इन शब्दों के साथ टकरा पड़ने का डर रहता ही है।

दूसरे के लिए जहाँ तक ये शब्द व्यवहार किये जाते हों, वहाँ तक इन शब्दों में बड़ी मसखरी मालूम होती है, पर अपने लिए इनका उपयोग होने पर इन शब्दों की भयंकरता सामने आ जाती है। खुद कसूर न करने पर भी अपने को दोषी ठहराया जाकर सजा दी जाती हो, तो उस समय जैसा असह्य अन्याय मालूम होता है, वैसा ही अपने लिए इन शब्दों का उपयोग सुनते देखकर हर एक को होता है। किसी के भी विरोध की परवा किये बिना समाज अपनी अनुकूलता और

प्रसंग के अनुसार बेधड़क इन शब्दों का उपयोग करता ही है। अलबत्ता, न्याय के लिए इतना कहना होगा कि इन शब्दों के प्रयोग के लिए प्रसंग की पसंदगी में समाज कितनी चतुरता दिखलाता है। विवाह करते समय वृद्ध ठहराये गये पुरुष को उसके धन्धे-रोज़गार में बुड्ढे के तौर पर मानकर कोई छुटकारा देने तैयार नहीं होता। इसलिए शब्दों की व्याख्या प्रसंगानुसार दब जाती है।

लालजी के इस विरोध में गिरधर सेठ को भाई की ईर्ष्या और जायदाद की बाँट का स्वार्थ दिखलाई दिया। इसमें कितना तथ्य होगा, यह नहीं कहा जा सकता। पर इतना तो सच ही है कि विजया के काका को व्यापार में किसी की सहायता मिलने लगी थी और गिरधर सेठ के विवाह की अवधि लम्बी हो गई थी। इसमें उसका कोई दोष नहीं, इसका विश्वास दिलाने लालजी अपने भाई के घर आया। उसी दिन शाम को दोनों भाई बैठे थे। उनके देनदार एक आदमी ने बात ही बात में गिरधर सेठ पर लाठी का एक वार किया। यह वार खाली गया। पर इस वार के डर से गिरधर सेठ सुधबुध खो बैठे।

आधे पागल आदमी को पूरा मूर्ख बनाना सहल बात है। लालजी ने भाई की देख-भाल में इस तरह हिस्सा लिया मानो गिरधर सेठ का पागलपन प्रकट हो गया। इतने में लालजी की दूसरी पत्नी मर गई। इसलिए बिना किसी अड़चन के उन्होंने विजया से विवाह किया। और उसे वृद्ध-विवाह की मुसीबत से बचाया। दोनों भाइयों की उम्र में पांच-सात साल का ही फ़र्क था, इस तरह थोड़ा-बहुत ही जवान पति मिलने पर विजया भाग्यशाली हुई।

अपनी पहली स्त्रियों के प्रति अधिक कड़ा बर्ताव रखने पर भी स्त्रियों के प्रति लालजी के एकान्त विचार नर्म और मधुर थे; इतना ही नहीं, दूसरों के भेद में तो वह बहुत स्वार्थ-त्याग बता सकता था। वह अपनी स्त्रियों को संयम में रखता, पर दूसरे की पत्नी के लिए इतने बड़े संयम की ज़रूरत वह नहीं मानता था। अपनी पत्नी ही पर नज़र रखते हुए, दूसरों की स्त्रियों को अच्छी तरह रखने का कर्त्तव्य उससे जितना बनता उतना निभाता। नौकरों की स्त्रियों की वह खबर और ख्याल खूब रखता; धोबी के बजाय धोबिन कपड़े लेने आती तो उसके रोज़गार के विषय में वह बड़ी दिलचस्पी से गहरी जानकारी मालूम करता था। पड़ोस के पुरुष मौजूद हैं या नहीं इसका ध्यान रख, पड़ोस की स्त्रियों का हाल-चाल पूछकर वह अपना आनन्दी

स्वभाव प्रकट करता था। फिर भी सबको इतना तो मानना ही पड़ता कि विजयालक्ष्मी के प्रति वह गहरा प्रेम-भाव रखता था। उसे कपड़े-लत्तों और गहनों से भरपूर रखता, उसकी इच्छा के अनुसार घर के प्रबन्ध और घर की सजावट में फेरफार होने देता था। यदि थोड़े में कहें तो विजयालक्ष्मी के वश में होकर वह अपने पुराने सिद्धान्त के विरुद्ध विजयालक्ष्मी को बड़ी छूट देता था।

विजयालक्ष्मी की स्थिति ईर्ष्या की पात्र मानी जाती थी। वह अपने सुख-साधनों का पूरा उपयोग करती थी। उसका स्वभाव मिलनसार और आनन्दी था। इसलिए वह अक्सर सगे-सम्बन्धियों और पड़ोस की स्त्रियों को अपने यहाँ बुलाकर उनका आदर-सत्कार करती थी। उसके आने से घर की शोभा बढ़ गई थी, और उसकी गृहस्थी व्यवस्थित और उज्ज्वल बन गई थी, अब कपड़ों की 'ट्रेडमार्क' की तस्वीरों के बदले रविवर्मा के चित्र घर में लगने लगे थे। बिना पुस्तकों के घर में अब तीन अलमारियाँ पुस्तकों से भरी हो गई थीं। बग्घी के बजाय अब मोटर भी रखी गई थी। लालजी मालदार तो था ही। पर अब उसे कीर्ति पाने की इच्छा भी हो गई थी। इस सारे फेरफार का कारण विजयालक्ष्मी ही थी।

सब प्रकार के तृप्ति के साधन होते हुए भी विजया का हृदय अतृप्त रहता था। घर में मिले अधिकार भोगने से उसे अब खीझ होने लगी थी। उसका पति उसके वश में था, किन्तु यह अधीनता ही उसे सब कुछ नहीं थी। अत्यधिक सुख के होने पर भी उसे अपना हृदय सूना-सा लगता था। पहले उसे मालूम हुआ कि उसकी और उसके पति की उम्र के बीच आधी ज़िन्दगी का अन्तर था, इसलिए भी वह दुखी थी। इस उम्र का ख्याल भी सहते-सहते छूट जाता है, इसका बाद में उसे विश्वास हुआ। फिर उसे लगा कि उसका पति अत्यन्त पार्थिव वृत्तियों से भरा है। उसने समझा कि यह सभ्यता का चमकता परदा इतना पतला है कि अटने से ही फट सकता है और इसके पीछे पार्थिव वृत्तियों का ताण्डव सदा चलता रहता है। एक मनुष्य और दूसरे मनुष्य के बीच इस सम्बन्ध में भेद पैदा करना बड़ा मुश्किल है। विजया का ऐसा विश्वास हो गया था कि मनुष्य की पशुता सहने योग्य और क्षमा करने योग्य गुण है, फिर उसको अपनी स्थिति में क्या खटकता रहता था?

कोकिला और जगदीश के उसके मकान में किराये से रहने पर उसका शान्त... उठा था। कोकिला में कोई असाधारण सौन्दर्य नहीं था।

विजया की सुन्दरता कम थी, ऐसा भी नहीं था ; किन्तु कोकिला के शरीर में कोई ऐसी स्फूर्ति भरी रहती थी कि उसके सारे अङ्गों से अलौकिक आकर्षण उमड़ा पड़ता था। चन्द्रोदय सुन्दर है, मेघों से भरे आकाश में होता चन्द्रोदय वर्षा के सौन्दर्य का एक मामूली नमूना है ; किन्तु किसी शुभ क्षण में मेघ और चन्द्रमा का ऐसा आकर्षक संयोग हो जाता है कि समस्त सृष्टि इस सौन्दर्य के संयोग को देखती ही रह जाती है। अकेला चन्द्रमा या अकेला मेघ इतना मनोहर नहीं लगता। कोकिला को देखते हुए चन्द्रमा और मेघ का ऐसा सुन्दर संयोग ध्यान में आ जाता है। उसकी देह में ऐसा प्रकाश खिल उठता था कि उसके पीछे छिपकर, इस शरीर को सौन्दर्य अर्पित करता आत्म-चन्द्र बहुत स्पष्ट हो जाता था। देह और आत्मा के परस्पर इस सौन्दर्य-संयोग की छाप कोकिला में देखकर विजया उसकी तरफ आकर्षित हुई और ऐसी आकर्षक युवती के पति को देखने का और उससे परिचय करने का उसका मन प्रबल हुआ।

दिन का अधिक भाग तो जगदीश अपने पत्र के कार्य में खर्च करता ; किन्तु जितने समय वह घर में रहता, उतने समय कोकिला जगदीश के आस-पास ही रहती। जगदीश कोकिला की शुश्रूषा के विना मानो रह ही नहीं सकता था, ऐसा मालूम होता था। विजया कोकिला को कई बार बुलाती और खुद कोकिला के यहाँ जाती। कोकिला की बातचीत का विषय जगदीश ही होता। फिर-फिरकर बात जगदीश पर ही पहुँचती। अपने गरीब पति के प्रति पत्नी को इतना अधिक प्रेम क्यों है, यह विजया नहीं समझ सकी। उपन्यास में गरीब प्रति के प्रति प्रेम का होना स्वीकार भी किया जा सकता है ; शायद कल्पना में वह सम्भव मालूम हो, किन्तु जब पत्नी अपने पति की गरीबी, परेशानी और दुःखों से बहुत त्रस्त हो जाती है, तब पति के प्रति उसकी श्रद्धा रहनी असम्भव है। विजया का पति गरीब नहीं था ; उसकी प्रत्यक्ष इच्छा पूरी करने वह सदा तैयार रहता था। इसलिए विजया का कोकिला जैसा पति प्रेम नहीं था।

एक दिन कोकिला विजया के पास पहुँची। उस समय लालजी और विजया दोनों थे, कोकिला के मुख पर स्वाभाविक घबराहट आ गई। उसने धीरे-धीरे बात करते पूछा—विजया बहिन, मेरा एक काम न करोगी ?

'क्यों नहीं ? खुशी से कहो।'

कोकिला ने धीरे से एक सोने का हार निकाला और विजया के पास रखकर

कहा—यह हार अपने पास रखो और इस पर तुम्हारी मर्ज़ी में आये उतने रुपये दे दो।

विजया कुछ चौंकी। 'ये इतने गरीब है?' उसने सोचा। 'हार रखने की ज़रूरत नहीं, तुम्हें जितनी ज़रूरत हो उतना रुपया मैं दे दूँगी।' विजया ने कहा।

'नहीं-नहीं! मैं ऐसे नहीं लूँगी। हार रखने पर ही रुपये ले सकूँगी।'

बड़ी अनाकानी के साथ विजया ने हार रख लिया और कोकिला को उसने उचित रुपये दे दिये। किन्तु यह बात यहीं तक नहीं रुकी। महीने डेढ़ महीने में कोई न कोई जेवर वह विजया के पास लाती और उसे गिरवो रखकर रुपये ले जाती रही। विजया को कोकिला पर इससे दया आई। ऐसी सुशील पत्नी के पति की आलोचना करने को उसका मन हुआ। एक दिन गहना लेकर आई कोकिला से उसने पूछा—ये कई गहने तुम ला रही हो, क्या इसका तुम्हारे पति को भी पता है?

शीघ्र सोचकर कोकिला ने कहा—हाँ, उनके जाने बिना कैसे बन सकता है?

विजया को उसके कहने पर विश्वास नहीं हुआ। इसलिए उसके पति की आलोचना करने का उसे आधार मिला। उसने कहा—वे जानते हैं तो फिर तुम्हें ऐसा क्यों करने देते हैं? उन्हें शरमाना चाहिए।

कोकिला पति के विरुद्ध टीका सहन नहीं कर सकती थी। उसने कहा—क्यों शरमाना चाहिए? उनके गहने हैं, फिर वे क्यों न बेचें?

'गहने तो तुम देती हो न?'

'पर मैं किसकी हूँ?' शरमाते-शरमाते हँसकर कोकिला ने कहा।

विजया कोकिला को देख रही थी। कोकिला के मुख पर रमने पतिप्रेम के भाव लज्जा की आड़ में ऐसे मनोहर लगे कि उससे गले मिलने विजया का मन हुआ। वह कुछ न बोली। कोई न समझ सके ऐसी छिपी साँस उसने ली। उसके हृदय में ऐसा भाव कभी उत्पन्न नहीं हुआ था? उसके हृदय में प्रश्न उठा।

विजया ने अपने पति का चित्र देखा। अपने पति की सम्पत्ति सँभाली। अपने को मिलता सुख याद किया। पति की अधीनता और उनकी अच्छी-अच्छी बातें देखीं, पति के लिए श्रद्धा उत्पन्न होने के आवेश में उसने कोकिला की गुप्त बातें पति से कह दीं। कोकिला अत्यन्त गरीब है और जेवर रखकर अपना खर्च चलाती है। यह सुनकर लालजी की आँखें चमक उठीं। गरीबी अमीरों के मौज-शौक के खेल

खेलने का मैदान जो है। अमीर ग़रीबों को खरीदकर रख सकता है; ग़रीबों को किराये पर रख सकता है। ग़रीबी अमीरों के लिए कई प्रकार की आवश्यकताओं से भरा हुआ प्रदेश है। लालजी को सौन्दर्य का शौक था। उसकी पत्नी सुन्दर थी; किन्तु उसकी पत्नी के सिवा भी तो दूसरी स्त्रियाँ सुन्दर थीं, यह बात उसके ध्यान से अलग न थी। एक सुन्दर स्त्री अच्छी तो होती ही है, पर दो सुन्दर स्त्रियाँ हों तो और भी अच्छा। ऐसा उसका स्पष्ट, सरल और सहज गणित से साबित किया जा सकनेवाला मत था। उसने विजया के कार्य की प्रशंसा की; उसकी उदारता को उत्तेजित किया। इससे कोकिला तथा उसके घर की तरफ अधिक नज़र रखने का विजया का अपना कार्य सरल बन गया। कोकिला के बालक को वह कई बार बुलाती, कभी वह उसे खिलौने और मिठाई देती और इस बहाने खिड़की में खड़ी हो जाती; चौके में काम करती कोकिला को देखती तो वह उसके साथ बातचीत का प्रसंग जारी कर देती।

किन्तु विजया के हृदय में प्रेम उत्पन्न नहीं हुआ। वह लालजी,दीश उसे अपने
तब उसे उसका दिखावा याद आता। उस दिखावे में होते हुए भी उसके मुख
उसकी संस्कार-शून्यता सामने खड़ी हो जाती। इससे विनम्र बर्ताव उसे आकर्षित
प्रति बहुत असन्तोष पैदा हुआ। टीका करने को हुआ। पति में
एक दिन कोकिला फिर अपना एक गहद्र में ग्रामीणता उसकी दृष्टि में अधिक
यों कब तक चलेगा? तुम्हारे पति कुछ कमाते है, किन्तु संस्कार खरीदने में पैसे को
'कमाते तो हैं, किन्तु खर्च बहुत हो जालदार को कैसा बना देती है, विजया
'तुम कुछ कहती नहीं? कमाने से
चाहिये।' । किन्तु वह अपने पति के संकुचित
'नहीं ही चले तो फिर कम नहीं हो से प्रेम भी वह समझती थी। उसे जग-
'पर इस तरह तुम्हारा क्या होगा? यमिलेगा? जगदीश अधिकतर काम-काज
'यह विचार तो मेरे मन में ही नहीं क वह अकेली किस तरह पड़ी रहे, अकेली
'यह तो बिलकुल ठीक है, पर ऐसे जगदीश घर में कहाँ से हो? जगदीश के
बाप ने कोई विचार नही किया?' विजया ने जे की खिड़की में बैठकर उसके शिष्ट मुख
हँस-मुखी और शर्मीली कोकिला क
विजया बहिन! यह ग़रीबी हमने अपने ला पर दृष्टि रखता। दूसरी तरफ विजया

जगदीश पर नज़र रखती। पति-पत्नी को इसका पता ही नहीं था। दोनों अपने-अपने कार्य को ऐसी सफाई से छिपाते कि दोनों एक दूसरे को छलते रहते थे।

(११)

लालजी सेठ को धारा-सभा की उम्मेदवारी के लिए प्रेरित करने में विजया को जगदीश से परिचय बढ़ाने का एक रास्ता मिल गया था; ऐसा अनुदार अनुमान किया जा सकता है। लालजी धारा-सभा में हो जाय तो उसकी पत्नी के तौर पर अनेक कुशलताओं के साथ अंग्रेज़ी भाषा की जानकारी का भी विजया को स्वाभाविक झुकाव हो सके, इसमें कोई आश्चर्य न था। जगदीश लालजी सेठ का कौंसिल का काम करेगा तो साथ ही वह अंग्रेज़ी भी सीख सकेगी।

किन्तु जगदीश ने तो कौंसिल के काम में सहायता करना मना कर दिया। जगदीश की सहायता की लालजी सेठ को कोई आशा न थी, इसलिए लालजी जुगलकिशोर की कुशलता पर निर्भर हो गया। किन्तु विजया को अप्रसन्नता हुई। ग़रीबी में फँसे पति-पत्नी को सहायता करने का अपना स्तुत्य निश्चय उसने न छोड़ा। और··· और···अब जगदीश के साथ परिचय बढ़ाने का ज़रा भी मौका न रहा।

जुगलकिशोर की इच्छा के अनुसार लालजी सेठ शाम के समय तीन-चार परिचित से मिलने गये। विजया को अकेले अच्छा नहीं लगा। उसने बेचैनी में दो-तीन बार कपड़े बदले, पर उसे एक भी कपड़ा पसन्द नहीं आया। इसलिए उसने एक सादी से सादी सफेद साड़ी पहनी और दरवाज़े के पास आयने में अपना मुख देखा। उसे सफेद वस्त्रों में अपनी सूरत बहुत पसन्द आई। पर इस धवल वातावरण में ही झिलमिलाते एरिङ्ग बड़े बुरे मालूम हुए। उसने एरिङ्ग निकाल डाले। इससे एरिङ्गों के सतत सहवास में रहे कान उसे अखरने लगे; परन्तु इससे मुख के आकर्षण में विचित्र वृद्धि मालूम होने लगी।

उसे सादा, संकोची जगदीश याद आया। कोकिला से मिलने की इच्छा होने पर उसने वस्त्र बदलने की कोशिश बन्द की और गली में होकर वह कोकिला के मकान पर आई। पिछले कमरे में राधा दोनों बालकों को लेकर खिलाने बैठी थी। विजया के आने पर वह खड़ी हो गई और दोनों बाहर आईं।

जगदीश को बुखार आया जानकर विजया ने डाक्टर को बुलाने तथा गुलाबजल

इत्यादि शीतोपचार के साधन प्राप्त करने नौकरों को भेजा। गुलाबजल और थर्मामीटर लेकर वे फौरन आये।

'कोकिला बहिन, थोड़ा पानी लाओ न?' विजया ने गुलाबजल की शीशी हाथ में लेकर कहा।

कोकिला तेज़ी से उठकर अन्दर गई। किसी तरह बुखार उतर जाय, यही विचार उसके दिमाग में चक्कर लगा रहा था। कोकिला अन्दर गई कि इधर जगदीश की आँख खुल गई। उसने नज़र डाली तो विजया और राधा उसके सामने थीं। विजया ने समझकर कहा—कोकिला बहिन अभी आती हैं।

जगदीश ने फिर आँखें मीच लीं, किन्तु उसके मुख पर सिर दुखने के अस्पष्ट चिह्न दिखाई दिये। विजया पास गई और उसने केवल सहानुभूतिपूर्वक अपना हाथ जगदीश के सिर पर रखा। सिर बहुत गर्म था। विजया डरी। उसका हृदय धड़क उठा। उसका मुख भी ज़रा उदास हुआ। आँखें स्थिर हो गईं और साँस तेज़ हो गई।

उसने हाथ हटा लिया। जगदीश की आँखें बन्द थीं। उसने विजया के हाथ को पकड़ अपने सिर पर दबाया। विजया अर्द्ध-विक्षिप्त बन गई। जगदीश उसे कोकिला समझकर ऐसा कर रहा था। यह जानते हुए भी मानो कोई अकथनीय आनन्द उसके हृदय के बाँध तोड़ रहा हो। अब तक जगदीश के प्रति विजया को केवल आकर्षण, कुतूहल और रसपूर्ण जिज्ञासा मात्र ही थी। पर स्पर्श होते ही उसका हृदय कौतूहल की सीमा लाँघकर किसी स्पष्ट, स्फुट और अनिवार्य भाव-प्रवाह में तैरने लगा। मरुभूमि में जीवन बर्बाद कर शुष्कता से ऊबा हुआ कोई रसिक, यदि जल से भरा सरोवर देखे, तो भला उसका मिलनातुर हृदय रह सकता है? वह बिना परिणाम की फिक्र किये सरोवर में कूद ही पड़ेगा। विजया को भी ऐसा ही हुआ। जगदीश के मस्तक का स्पर्श होने पर और जगदीश के हाथ से अपने हाथ का स्पर्श होते ही वह रस-सागर में डूब गई।

सरोवर में हिलोरें लेते रसिक की दृष्टि अकस्मात् किनारे पर जाती है और किनारे पर साइनबोर्ड पर लिखे अक्षरों को वह देखता है कि 'इस सरोवर में बिना छुट्टी के दिन किसी को स्नान नहीं करना चाहिये।' इतना ही नहीं, पर आज्ञा का पालन कराने इस सरोवर का स्वामी वहाँ खड़ा भी दिखाई देता है। ऐसा ही यहाँ भी हुआ। विजया ने कोकिला को देखा। उसने उस रसिक जैसा ही अपना कसूर समझा।

'हाय, हाय, विजया बहिन ! तुम इतनी मेहनत क्यों करती हो ?' कोकिला ने पानी का प्याला लाकर रस-तन्मय विजया से सचेत होने को कहा। कोकिला ने तो केवल निर्दोष आभार-सूचन ही किया था, परन्तु विजया को इससे अपना परायापन और अधिकार-हीनता मालूम हुई। उसने जगदीश के मस्तक से हाथ हटा लिया। हाथ हटाते ही विजया को ऐसा लगा मानो जीवन में से सारा रस सूख गया हो। उसने हृदय को काबू में रखा, और कहा—अच्छा बहिन, अपना पति सँभालो। दूसरा कोई नहीं छुयेगा।

कोकिला ने दीनता से जवाब दिया—अरे, अरे ! ऐसा क्यों कहती हो ? तुम सगी-सम्बन्धी न होने पर भी इतना अधिक काम करती हो, इसलिए मैं सोचती हूँ कि मैं किस तरह यह ऋण चुकाऊँगी ?

'बहुत अच्छा, मानो मैं तुम्हें जानती नहीं। पति के लिए पगली जो हो ! अच्छा, चलो रूमाल को इस पानी में भिगोकर सिर पर रखो।' विजया ने गुलाबजल पानी के प्याले में डालकर अपनी कमर में से एक उजला रूमाल निकालकर पानी में डुबाकर कोकिला को दे दिया। कोकिला से विजया बड़ी थी, इसलिए उसे मज़ाक करने का अधिकार था।

कोकिला ने ऐसे अपूर्व भाव से रूमाल जगदीश के सिर पर रखा मानो उसका सर्वस्व इस रूमाल रखने की क्रिया में ही समाया हो। इस भाव में स्नेह था या वात्सल्य, यह विजया न समझ सकी। उसे केवल इतना ही मालूम हुआ कि सार-सम्हाल करनेवाली प्रेमिका पत्नी की तरह सुन्दर, संसार में और कोई नहीं दिखाई देता। उसे कोकिला के प्रति छोटी बहिन जैसी उमंग उठी। इस आवेश में विजया बोली—जगदीश भाई अच्छे हो जायँ इसके बाद तुम्हें मैं एक सज़ा देनेवाली हूँ ! क्योंकि मैंने तुम्हारी गल्ती देख ली है।

कोकिला ने पूछा—क्या सज़ा दोगी ?

'बताऊँ ? तुम्हारे पति को दिन-दहाड़े चोर ले जाऊँगी। फिर देखना तुम्हें क्या होगा !'

कोकिला हँसी। विजया कहने को तो कह गई, किन्तु इस वाक्य का उसके लिए अर्थ स्पष्ट हो गया था। उसने अभी से ही जगदीश को चोरने की प्रवृत्ति प्रकट कर दी थी। युवतियाँ आपस में जैसी बातें करती हैं, इसका जिसे पता होगा उसे

ऐसी बातचीत में नवीनता नहीं मालूम होगी। किन्तु विजया को तो अपने कहने में बिल्कुल नवीनता ही लगी। 'मैंने क्या कहा ? कितना अधिक ठीक बोली ? इस पुरुष को चोरने की इच्छा मुझे क्यों होती है ?' यह सोच उसने कोकिला के सामने देखा। निर्दोष पत्नी, पति के विचार में ही निमग्न बैठी थी। उसने भीगा रूमाल जगदीश के सिर पर रखा था। वह उँगलियों से रूमाल को इस तरह रखे हुए थी, मानो हृदय की समस्त मृदुता वह उँगलियों द्वारा जगदीश पर डाल रही थी।

'इस बेचारी के पति को कोई चोर ले तो कितना पाप लगेगा ?' विजया ने दया का अनुभव किया।

दरवाजे में खड़खड़ाहट हुई। डाक्टर को लेकर आदमी आ पहुँचा था। डाक्टर ने मरीज़ को देखा। बुखार बहुत अधिक था, और बुखार की तेजी में जगदीश अचेत था। मरीज़ को गर्मी न लगे, पर ठण्ड भी न लगे, शरीर थक न जाय, जिससे हृदय पर भार पड़े। इस प्रकार के निषेध डाक्टर ने बतलाकर दवा लिखकर दे दी। और आदमी को फिर दवा देने अपने साथ लिया। लालजी के यहाँ प्रति मास डाक्टर अपना बिल भेजकर दाम मँगवा लेता था, इसलिए फीस का कोई सवाल ही न था। फिर भी कोकिला ने डाक्टर को कुछ रुपए दे दिए, जो डाक्टर ने बिना देखे अपनी जेब में रख लिये। रुपए मिलते ही उसके मुख पर परोपकार का भाव प्रकट हो गया और उसने कोकिला से कहा—चिन्ता की कोई बात नहीं। बुखार जल्द ही उतर जायगा और जब ज़रूरत पड़े तब मुझे बुला लेना।

विजया से लालजी सेठ को खबर पूछकर डाक्टर ने विदा ली। संध्या हुई और शीघ्र रात के रूप में बदल गई। राधा को यह इलाज कुछ समझ नहीं आया। बुखार आ गया तो इतनी परेशानी और हलचल क्यों होनी चाहिए। वह ऐसा ही समझती थी, पर जब विजया ऐसी धनी स्त्री और कोकिला जैसी शिक्षित पत्नी इतना प्रयास कर रही हैं तो हालत गम्भीर ही होगी। इसलिए वह भी गम्भीर बन गई और जो वह समझती, वह काम करने लगती। अँधेरा बढ़ गया था, इसलिए राधा ने उठकर रोशनी जलाई।

विजया को एक आदमी ने आकर खबर दी—साहब आये हैं, और आपको बुला रहे हैं।

'आती हूँ, जाओ।' विजया ने लापरवाही से कहा। सेठ शब्द विजया

को अच्छा नहीं लगता था। इसलिए अपने पति को साहब सम्बोधन करना उसने सबको सिखा दिया था। इस समय यहाँ से जाना उसे अच्छा नहीं लगा। अगर उसे इस समय यहीं बैठा रहने दिया जाता तो वह अपने पति का आभार मानती, किन्तु समाज कई सम्बन्ध स्थापित कर उन सम्बन्धों की रूढ़ि द्वारा रक्षा करता है। रात में अपना घर छोड़ पराये घर में बैठने की पत्नी की इच्छा को पति कभी नहीं चाहता। पर वह तो पड़ोसिन का कर्त्तव्य निभा रही थी। तबियत खराब होने पर उसने जगदीश को सहायता दी, पर सारी रात बैठे रहने की उसे ज़रूरत न थी। विजया अनमनी-सी उठी। उसने कोकिला को कई बातें बतलाकर होशियार रहने को कहा और जाते-जाते बुखार जानने के बहाने जगदीश के हाथ को फिर छुआ।

'बुखार तो अभी है।' उसने हाथ पर हाथ रखकर कहा।

जगदीश ने आँखें खोलकर विजया के सामने देखा; और धीरे से पूछा—तुम अभी तक बैठी हो! मेरे लिए कितनी फिक्र करती हो?

विजया ने फिर कम्पन का अनुभव किया। उसके हृदय में चन्द्र, कोकिला और पुष्प एक साथ ही प्रकट हो गये। उसे रोमांच हुआ। और अपनी वाणी बन्द मालूम हुई। बड़ी कठिनाई से उसने उत्तर दिया—इसमें क्या?

जगदीश फिर सो गया। अपने रुके पैरों को विजया ने ज़ोर देकर उठाया, और जिस पिछले रास्ते से वह आई थी, उसी से वह वापस जाने लगी। कोकिला ने विजया की उँगलियों में अपनी उँगलियाँ डालकर कहा—बहिन, फिर हो जाना।

राधा लालटेन लेकर रास्ता बतलाने गई। वापस आकर नाराज़ी प्रकट कर वह बोली—यह कैसी है, जो बार-बार भाई को छेड़कर जगाती थी?

कोकिला उत्तर में हँसी। अज्ञान लोगों को ऐसे स्पर्शास्पर्श का बहुत ज़्यादा ख़याल रहता है, यह कोकिला जानती थी। उसे अपने में और अपने पति में इतना दृढ़ विश्वास था कि उसे विजया का बर्ताव ज़रा भी अयुक्त न लगा।

सारी रात वह जागती बैठी रही। रात के तीन बजे जगदीश को उसने दवा पिलाई। जगदीश का बुखार उतरने पर था। उसने कहा—अभी तुम सोईं नहीं, क्यों?

'नींद आयगी तब सो जाऊँगी।'

'रात के तीन बजे हैं और नींद नहीं आई?'

'नहीं आवे तो मैं क्या करूँ?'

'भले ही नींद न आवे, पर लेट तो जाओ। इस तरह न बैठो।'

'ऐसा जुल्म न करो।'

'तुम नहीं सोतीं तो मैं भी नहीं सोता। देखो यह बैठ गया।'

'ना, ना, तुम बैठो मत, मैं लेटी जाती हूँ।' कहकर कोकिला पास ही लेट गई।

जीवन के प्रत्येक क्षण का कोई इतिहास नहीं लिखता। किन्तु यह प्रत्येक क्षण प्रेमियों के जीवन में कितना माधुर्य ढालता है? ऐसे माधुर्य-सिंचन के भूल जानेवाले क्षण यदि न हों तो जीवन किसके लिए जीने को होगा?

(१२)

'क्यों? बहुत व्यर्थ घूमने लगी हो?' लालजी सेठ ने विजया से उसके आते ही पूछा—वह थककर एक गद्देदार कुर्सी पर पड़ा था। थकावट होने पर भी उसके मुख पर आज खुशी थी।

'क्या? क्या कहते हो! मैं व्यर्थ घूमने लगी हूँ! पड़ोस में कोई बीमार हो जाय तो उसे १० मिनट के लिए देखने जाना भी व्यर्थ घूमना-फिरना माना जायगा, यह मुझे मालूम न था?' झल्लाकर विजया बोली। लालजी सेठ को ऐसे उत्तर की आशा न थी। उसका प्रश्न केवल स्वाभाविक था। विजया का दोष निकालने की बजाय उसकी उपस्थिति के प्रति अपनी तीव्रता बताने के लिए ही यह प्रश्न था।'

'लो, इतने में ही बुरा लग गया। फिर मुझे क्या कहना?'

'बोलना न आवे तो न बोलिये!' विजया ने उत्तर दिया। यह उत्तर असह्य था। किसी भी तेजस्वी पुरुष का स्त्री को मान देने के विचार को दूर कर देनेवाला यह उत्तर था। फिर भी लालजी सेठ ने उत्तर सह लिया।

'क्यों, आज तुम्हें क्या हो गया है? क्या मुझ पर गुस्सा आ रहा है?' लालजी सेठ विजया के पास जाकर खड़ा हो गया। उसके मोहक मुख की तरफ़ देखकर उसने पूछा—आज एरिंग क्यों निकाल डाले हैं?

विजया को डर लगा कि पास खड़ा लालजी सेठ उसे छुयेगा। रोने की तैयार की हुई विजया रो पड़ी, किन्तु इस रोने से उसका डर और भी पक्का हो गया। पति के सम्पूर्ण अधिकार के साथ उसने विजया को पीठ पर हाथ फेरा और फिर वह विजया के हाथ को उसकी आँखों पर से हटाने का प्रेमपूर्ण प्रयत्न करने लगा।

'एरिंग अच्छे नहीं लगते ? दूसरे चाहियें ? तो फिर कहतीं क्यों नहीं ?' लालजी सेठ ने सोचा कि पुराने गहने बदलने की इच्छा होगी।

लालजी सेठ के स्पर्श के साथ विजया का रुदन बन्द हो गया। इसके सिवा लालजी सेठ के छूने को रोकने की और दूसरी कोई युक्ति थी ही नहीं। विजया ने आंसू पोंछे और फिर कुछ हँसी।

'तुम यह क्या लड़कपन करते हो ? एरिंग का मोह यहाँ तक होगा ?' विजया ने कहा। विजया झूठ बोली। लड़कपन में माने जाने पर भी जीवन को किसी निश्चित मार्ग पर ले जानेवाला तीव्र भाव आज विजया अनुभव कर रही थी।

लालजी सेठ खुश होकर सामने की कुर्सी पर बैठ गया।

'तो तुम किसलिए रोने लगीं ?'

'मुझसे 'व्यर्थ फिरती हो।' ऐसा क्यों कहा ?'

'ओ हो ! यह देखो, इन्होंने तो मानो कुछ कहा ही नहीं ! मुझे तुम जैसी मीठी और चतुरता भरी बातें करनी तो आतीं नहीं। मुझे तो ऐसा ही बोलना आता है।'

विजया को फिर भय लगा कि जैसा चाहें वैसा बोलने का अधिकार समझ लालजी सेठ फिर आ जायगा। उसने बात बदलकर कहा—आप बहुत देर से गये थे, क्या हुआ ?

दो-तीन माननीय अफसर और दो-तीन ही जनता के मान्य व्यक्तियों से मिलने के लिए लालजी शाम को निकला था। जुगलकिशोर का काम जल्दी का था। उसने उनको लालजी के आकर मिलने की सूचना कर दी थी। सब जगह जाकर लालजी सेठ ने कौंसिल के लिए अपनी उम्मेदवारी प्रकट की। उसके पैसे की तरफ सबकी आँख थी। इसलिए सबने थोड़ी आनाकानी बताकर उसकी उम्मेदवारी को सहारा देना स्वीकार कर लिया था।

लालजी के मुख पर विजय झलकी और बोले—वह तो हो ही गया समझ लो ! आगे से अपने फोटो समाचार-पत्रों में छपेंगे।

'अपने' शब्द में अकेले सेठ का समावेश होता था, तथापि अपने बृहद् भविष्य के खयाल से उसने अपने व्यक्तित्व को एकवचन से बहुवचन के रूप में प्रयुक्त किया। अपना फोटो पत्रों में प्रकाशित होगा, इस विचार में वह इतना मग्न हो गया कि अपनी [illegible] दोनों हाथों से घुटनों तक चढ़ा लिया।

अर्ध नग्न पैर देखकर विजया को कँपकँपी आई। उसने आँखें फेर लीं, किन्तु उसको आँखों को अभी छुटकारा नहीं मिलना था। सामने एक मोटा दर्पण रखा था। रोशनी में उसे अपना और लालजी का प्रतिबिम्ब दिखलाई दिया। यह लालजी सेठ की अपनी पत्नी थी? पत्नी शब्द का अर्थ उसे अब पूरा-पूरा समझ में आया। पत्नी क्या एक खिलौना है? नौकर, जीता-जागता फर्नीचर—गृहश्रृङ्गार? सदा स्वादों के साधन, घूमने-फिरने को मोटर-बग्घी, पति की पसंदगी में पत्नी का क्या भाग है? पति के जीवन में क्या भाग है? प्रतिच्छाया से अधिक उसका महत्त्व क्या है? और…विजया विचार करते ज़रा डरी; किन्तु उससे बिना विचार किये रहा नहीं गया और पति उसके योग्य नहीं जँचता, पति के प्रति उसे खीझ आती, फिर भी इस सम्बन्ध-बन्धन में से छुटकारा तो हो नहीं सकता न?

जितनी शीघ्रता से मानव-जाति राज्य-परिवर्तन के अनुकूल हो जाती है, उतनी तेज़ी से विवाह-परिवर्तन के अनुकूल उससे होते नहीं बनता। राजद्रोह के लिए कानून में रखी सज़ा, भले ही लग्न-द्रोह की अपेक्षा अधिक हो, किन्तु समाज का अलिखित नियम लग्न-द्रोह को अधिक भयंकर मानता है। राजद्रोही हर हालत में देश-सेवक माना जाता है, किन्तु लग्न-द्रोही सदा तिरस्करणीय व्यक्ति समझा जायगा। उसकी तरफ अधिक से अधिक उदारता केवल दया के रूप में ही हो सकती है। राज-नियम की अपेक्षा विवाह-नियम अधिक क्रूर होना चाहिये।

परन्तु हिन्दू-स्त्री के लिए विवाह-प्रणाली जितनी क्रूर है, उतनी दूसरे किसी और के लिए नहीं, विजया यह समझ गई थी। पचास वर्ष की एक यूरोपियन स्त्री का पचीस वर्ष के युवक के साथ विवाह करने की बात पढ़कर विजया खिलखिलाकर हँसी थी। पति द्वारा उसे पूरे परिमाण में प्रेम प्राप्त नहीं था, इसलिए एक अमेरिकन पत्नी के तलाक दे देने का हाल पढ़कर विजया मुस्करा उठी थी। विवाह मानो एक प्रयोगशाला हो, यह सोचकर एक आस्ट्रेलियन विधवा ने एक के बाद एक आठ पति बनाये थे, यह पढ़कर विजया का मुँह तिरस्कारपूर्ण हो गया था। क्योंकि वह हिन्दू-पत्नी थी; पर हिन्दू-पत्नी को अपने जीवन से यदि असन्तोष उत्पन्न हो तब? संस्काराभिमानी हिन्दू-पुरुष पुकार उठेगा कि ऐसा असन्तोष जिसे हो, उसको हिन्दू-पत्नी कहा ही नहीं जा सकता। हिन्दू-पत्नी तो पति के मरने के बाद सती होती है। अपने पीछे पत्नी जल मरे इतना उसमें प्रेम उत्पन्न करने की पति में योग्यता हो या न हो, पर समस्त

जीवन पत्नी को सुलगती चिता में ही जलाने की पति की कुशलता को दृष्टि में रख उसके साथ सहगमन की क्रिया करने की शक्ति से रहित मुर्दा समान पत्नियों का विचार भी यदि एक तरफ़ छोड़ दें, तो भी किसी पुरुष के साथ भागी बाल-विधवा, भरण-पोषण के लिए माता-पिता का घर तलाशती या अदालत का आश्रय लेती सधवा, और पुत्र-हीन होने के कारण उपेक्षित बनी पत्नी—ये अभी हिन्दू-समाज के दया-पात्र नहीं, किन्तु तिरस्कार-पात्र ही माने जाते हैं। विजया ने आज तक ऐसे प्रसंगों के प्रति तिरस्कार प्रकट किया था। वह सुद्गुणी थी। फिर यह क्या हुआ? विवाह-सम्बन्ध बन्धन-रूप लगता है, ऐसी पाप-पूर्ण प्रवृत्ति उसमें क्यों आ गई? उसे क्या दुःख था? क्या कमी थी?

उसने पति के प्रति अपने हृदय में विचार किया। उसमें ऐसी क्या बात है? धन कमाने का काम जिसने इतनी योग्यता से किया, वह मूर्ख नहीं कहा जा सकता। उसको वह कितना सुख पहुँचाता था? संसार में कितने पति पत्नी को मुँह-माँगी वस्तु लाकर देते हैं? लोगों में उनकी अच्छी इज्ज़त है। कौंसिल में जाने पर यह इज्ज़त कितनी बढ़ जायगी। 'मुझ पर कितना अधिक प्रेम रखते हैं?' ये विचार जितने ही विजया के हृदय में आये, उतना ही उन्होंने उसे बदल डाला। और अपने सुख-साधनों की तरफ़ उसने ध्यान दिया। अपने यहाँ बग्घी और मोटर है। कितने पति अपनी पत्नी को ऐसी सम्पत्ति में भाग लेने देने की योग्यता रखते हैं? कोकिला को ही देखो न? जगदीश की पूर्ति वही बेचारी करती है।

किन्तु कोकिला और जगदीश का विचार आते ही विजया रुकी। जगदीश की कमी वह पूरी करती है, इसका विचार कोकिला को कभी आया ही नहीं। शायद ऐसा विचार आया होता तो जगदीश में ऐसा क्या है, जिससे कोकिला खुशी से सारा दुःख सहन करती है।

यन्त्र की तरह उसने रात का काम निवटाया। पति के साथ बातचीत में कुछ उत्तर देकर बातें खतम कीं। लालजी सो गया। वह सपने में धारा-सभा का भव्य कमरा देखा करता था, किन्तु विजया नहीं सोई, एक आराम-कुर्सी पर लेट गई। उसके मन में पहले विचार आने लगे, जगदीश में ऐसा क्या है कि जिससे कोकिला खुशी में सारा दुःख सहन कर लेती है।

की मुखाकृति सुन्दर थी। वैसे तो अधिकतर पुरुष अपनी पत्नी के लिए

स्वरूपवान् ही मालूम होते हैं, पर जगदीश सचमुच अधिक स्वरूपवान् है। इतने पर भी उसे संघर्ष में रहना पड़ा। देश के लिए उसने स्वार्थ-त्याग किया था। यह कोकिला को अच्छा नहीं लगता था। यों तो कई मूर्ख रोज़गार छोड़ बैठते हैं। फिर कोकिला किस लिए जगदीश को दुःख अनुभव नहीं होने देती ?

'विजया !' 'विजो !' नींद में लालजी सेठ पुकार उठे।

जगदीश के रूप-गुण का विचार करती विजया कुर्सी पर बैठ गई। उसे ऐसा लगा कि पति के सोने के कमरे में किसी दूसरे का विचार करना पाप है।

'मुझे उससे क्या मतलब ? दोनों अच्छे हैं तो हों, अपने घर रहेंगे !' इस प्रकार कोकिला तथा जगदीश के प्रति विचारों को छोड़ वह लालजी सेठ के पास गई।

'क्यों ? क्या है ?' पत्नी के रूप में जिस प्रकार पूछना चाहिये, उस भाव से उसने पूछा।

लालजी सेठ नींद में था। विजया ने उसका हाथ पकड़ा और फिर छोड़ दिया। शिथिल हाथ फिर बिस्तर पर पड़ रहा। लालजी सेठ बड़ी गहरी साँस लेते जाते थे। उसने लालजी सेठ को झकझोरा। शायद उसने कुछ देखा हो, इसलिए बुलाया हो। यह सोचकर विजया ने पूछा—जी ! मुझे क्यों बुलाया ?

लालजी ने एक आँख आधी खोलने का प्रयत्न किया और उसके ज़रा होंठ हिले, फिर भरी नींद में लालजी बोला—'हें ?'

आधी खुली हुई आँख मींच गई, किन्तु खुला हुआ होंठ बन्द नहीं हुआ। मुख द्वारा लालजी सेठ श्वासोच्छ्वास लेने लगा। विजया ने इस तरह मुँह फेर लिया मानो उसे चोट लगी हो। लालजी सेठ के बिस्तर पर पड़ा अपना तकिया उसने उठा लिया और फिर कुर्सी पर आकर बैठ गई।

अँधेरी रात में तारे झिलमिल हँस रहे थे। विजया को ऐसा लगा मानो वे उस पर ही हँस रहे हों। आकाश की ऊँचाई पर उसने दृष्टिपात किया। इस ऊँचाई की कोई सीमा न थी। अपने सँकरे शयन-गृह की दीवार टूटने पर और छत उड़ जाने पर वह इस सीमा-रहित आकाश में मिल सकती है कि नहीं, इसका वह विचार करने लगी। निर्मल आकाश के साथ एकता होने पर वह क्या तारों की तरह नहीं हँस सकती ? तारों के हास्य की चमक देखते-देखते उसकी आँखें मुँद गईं और उसे मीठी नींद आ गई।

फिर महीन और मधुर स्वर के बीच वह उठी। उसे ऐसा भ्रम हुआ कि कहं आकाश की कोई तारिका तो नहीं गा रही है। वह अधिक सचेत हो गई। खिड़की के नीचे दालान में कोकिला प्रभाती स्वर में गा रही थी :

चिरियाँ चचान लागीं
सुनी चकवे की बानी
कहत जसोदा रानी,
जागो मेरे लाला।...चिरियाँ०

सारी रात रास रमकर थकी हुई नक्षत्र-माला फीकी पड़कर प्रभात के आगमन की सूचना दे रही थी। विजया ने ऊपर से पूछा—जगदीश भाई अब कैसे हैं?

कोकिला ने आश्चर्य से ऊपर देखा और उत्तर दिया—विजया बहन, तुम कहीं हो? अब बुखार तो उतर गया है।

'इसीलिए तो गा रही हो, ठीक है न?' विजया ने हँसकर कहा। रात की घटना प्रभात की शीतलता में मिल गई। उसे संकोच हुआ कि वह खुद इस निर्दोष पत्नी के मार्ग में तो कहीं नहीं आती!

'मुझे ऐसा क्यों करना चाहिये?' यह मन में विचार कर उसने जगदीश की अधिक खबर पूछना ठीक न समझा।

(१३

नदी किनारे के एकान्त बँगले में आज कुछ चहल-पहल थी। नगर के अग्रगण्य कार्यकर्ता गुप्त मन्त्रणा के लिए यहीं एकत्र होते थे। देश-सेवा के कार्य-क्रम यहीं बनाये जाते थे। शाम का समय था। एक मोटर बँगले के बगीचे में दाखिल हुई। मोटर की आवाज़ सुनकर बँगले के बरामदे में बैठे एक युवक ने उस तरफ देखा। एक प्रौढ़ उम्र की स्त्री उसके पास बैठी हुई पढ़ रही थी। उसने ज़रा भी ध्यान दिये बिना अपना पढ़ना जारी रखा।

मोटर से वकील सुखपाल, सम्पादक शान्तिप्रिय उतरे। कुसुम को देखकर बरामदे में बैठा युवक खड़ा हो गया और उसे सीढ़ी तक लेने आया। स्त्रियों का सम्मान करने में युवकों की उत्सुकता सर्वमान्य है।

'मनोहर!' वकील सुखपाल ने सीढ़ी पर चढ़ते हुए उस युवक से कहा—आज

एक सरस परिचय तुम्हारे साथ कराता हूँ। यह हैं कुसुम वहिन, सर विहारीलाल की पुत्री हैं।

मनोहर ने शिष्टतापूर्वक नमस्कार किया। सुखपाल का अन्तिम वाक्य सुनकर उस स्त्री ने पुस्तक से दृष्टि हटाकर कुसुम की तरफ देखा और फिर पढ़ना आरम्भ कर दिया। मनोहर ने परिचय होने पर शिष्टतापूर्वक तीनों को बिठलाया।

'मांजी, क्या कर रही हो?' शान्तिप्रिय ने उस प्रौढ़ उम्र की स्त्री से पूछा।

'योगवासिष्ठ पढ़ रही हूँ। आओ वहिन, यहाँ बैठ जाओ! तुम तो विहारीलाल की लड़की हो न?' उस स्त्री ने कुसुम को अपने पास की कुर्सी पर बैठाया और उसे ठहर-ठहरकर देखने लगी।

'यह मेरी माँ हैं।' मनोहर ने कुसुम को परिचय कराया।

मनोहर को माँ की उम्र पचास के लगभग होगी। उसका मुख उज्ज्वल और भरावदार था। उसके मस्तक पर भस्म की रेखा मालूम होती थी। पास में रुद्राक्ष की माला पड़ी थी। उसने उस समय सफेद वस्त्र पहने हुए थे। वह उसके शरीर के गौरवर्ण के साथ मिले जाते थे। उसका चेहरा तेजस्वी था।

'कुसुम वहिन घूमने जा रही थीं और हमें इस तरफ़ आना ही था। इसलिए उन्होंने हमें मोटर में बैठा लिया। यहाँ आने पर मैंने सोचा कि तुम्हारा और माताजी का परिचय कराये विना इन्हें जाने देना ठीक नहीं, इसलिए यहाँ तक लिवा लाया।' सुखपाल ने यह कहते हुए कुसुम को यहाँ लाने का कारण बताया।

सर विहारीलाल अपने सेक्रेटरी रमेश को साथ लेकर दूर के एक गांव में ज़मीन देखने गये थे। शहरी जीवन से ऊबे हुए उनके हृदय को ज़मीन से मित्रता करने की तबियत बहुत पहले से ही थी। ज़िला कलेक्टर ने भारी तादाद में पड़ी बेकार ज़मीन आबाद करने की गरज़ से उनके लिए सरकार द्वारा शावाशी मिलने का रास्ता ढूँढ़ निकाला था; और उसने इस ज़मीन को ले लेने का बिहारीलाल से आग्रह किया। इस धनी गृहस्थी को ज़मीन की भूख जग गई, क्योंकि इसमें कलेक्टर ने काफ़ी लाभ बताये। इस प्रसंग में विहारीलाल को पाँच-दस हज़ार रुपए खर्च कर डालना कोई मुश्किल न था। कलेक्टर ने उन्हें खास आमन्त्रण भेजा था, इसलिए उन्हें दो-तीन दिन के लिए उक्त गांव में जाना पड़ा। ज़मीन बड़ी अच्छी थी। ज़मीन का विशाल क्षेत्र कल्पना को उत्तेजित करता था और मन में मोह पैदा करता था। सर विहारीलाल

को ज़मीन देखकर स्वप्न आया। ज़मीन अलबत्ता ऊबड़-खाबड़ थी, इसलिए इतने दिनों तक पड़ी रही थी, किन्तु सर बिहारीलाल की कल्पना ने इस ऊबड़-खाबड़ में सर्वथा गुण ही देखा। 'इस जगह लोगों के लिए पुरा (चक) बसाऊँगा, इस टीले पर बँगला बनवाऊँगा। इस सपाट हिस्से में बगीचा होगा, और इस जगह आमों की बाड़ी तैयार होगी।' उनके इन स्वप्नों के साथ कलेक्टर सहमत हो गया। पास के गाँव के किसान और पटेलों ने भी अपनी अनुकूलता बतलाई। आखिर सर बिहारीलाल ने ज़मीन रख ली, और कलेक्टर को अपने प्रति प्रशंसात्मक शब्द कहलाने का मौक़ा दिया। अनेक वर्षों से पड़ी हुई ज़मीन आबाद होने शहर के धनवानों को आकर्षित कर रही थी। सरकार के महसूल में वृद्धि करने के लिए कलेक्टर द्वारा की गई सेवा के लिए, बिहारीलाल की प्रशंसा हुई और ऐसी महत्त्व की जगह के लिए उनकी योग्यता पर सरकार द्वारा भी टिप्पणी हुई।

ज़मीन रखते वक्त सर बिहारीलाल ने रमेश से पूछा—रमेश, यह ज़मीन तुम्हें रखनी है ?

'जी नहीं, मेरे पास इतना पैसा नहीं।'

'इसका प्रबन्ध मैं कर दूँगा।'

'नहीं साहब, मैंने आपकी अभी इतनी सेवा नहीं की है कि जिससे आपकी कृपा पर इतना अधिकार कर सकूँ।'

'रमेश, मैं तुमसे एक काम करवाना चाहता हूँ। इस समय तुम्हारे लिए मेरे पास पूरा काम नहीं है, इसलिए इस ज़मीन को ठीक करवाने के लिए तुम रुक जाओ। इसकी उपज में से मैं चौथा हिस्सा तुम्हें दूँगा। उपज बढ़ाना तुम्हारे ज़िम्मे रहेगा। सारा खर्च मैं करूँगा। इसलिए कुछ अच्छे किसानों से मिलकर मुझे खर्च का अन्दाज़ बताओ।'

सर बिहारीलाल की, अपने पास काम करनेवालों के भविष्य सुधारने की सदिच्छा प्रसिद्ध थी। अब तक उनके हाथ में व्यापार था। अब खेती करवाने का काम भी उनके हाथ में आ गया। रमेश की सहायता करने का भी उन्हें यह एक मौका मिल गया था।

रमेश के लिए ज़मीन की व्यवस्था करना नया काम था। आधुनिक शिक्षा भी को इस कार्य से विमुख बना देती है। भूमि का सौन्दर्य उनके लिए कल्पना

की वस्तु होता है। कृषि की सफलता उनके हृदय की दन्तकथा है। खेती के औज़ारों से परिचय करने की उसे कभी इच्छा नहीं हो सकती थी। गाय, भैंस और बैल आदि को वह केवल चित्रों में और सबक ही में पहचानने योग्य मानकर उनके पास जाने की हिम्मत नहीं करता था। चार वृक्षों को देखते ही उसे कविता करने की सूझती, और शहर के बाहर की सड़क पर दो मील फिर आने पर ही वह ग्राम्य-जीवन का सम्पूर्ण रहस्य समझता।

किन्तु रमेश को सौंपा जानेवाला काम उससे हो न सकेगा, यह कहकर उसको अपनी अयोग्यता बतलाने की हिम्मत न हुई। 'भरसक प्रयत्न करूँगा।' कहकर ज़मीन की व्यवस्था करने का काम उसने अपने सिर पर लिया, और दोनों फिर वापस आ गये।

इन तीन दिनों की अनुपस्थिति में कुसुम अकेली रह गई थी। घर में वृद्ध नौकर-दम्पत्ति रहते थे, इसलिए कभी ऐसे आये मौके पर उनकी सार-सम्हाल विश्वासपूर्ण मानी जाती थी। वकील सुखपाल और शान्तिप्रिय को इस बात का पता था। आजकल के ज़माने में बड़े आदमियों का हाल-चाल जानने योग्य बातें मानी जाती हैं। शान्तिप्रिय ने तो अपने पत्र में यह बात प्रकाशित भी कर दी थी—'मिल-मालिकों का ज़मीन पर भी अधिकार।'

'गरीब किसान की खानाखराबी।'

'व्यापार तो धनवानों के कब्ज़े में था ही, अब ज़मीन भी उनके कब्ज़े में जायगी। अब तो गरीब किसान भी गुलाम बन जायेंगे!'

इस प्रकार अलग-अलग शीर्षकों के नीचे उन्होंने सर बिहारीलाल की प्रवृत्ति की प्रकट रूप में चर्चा की और मानो कोई भारी सनसनीपूर्ण रहस्य खोला हो, इस तरह की उसने लोगों को और सरकार को खुली चेतावनी दी।

किन्तु आज के प्रतिपक्षी तर्कवादी, सतयुग के तर्कवादियों का अनुकरण करते हैं, यह बड़ी प्रसन्नता की बात है। मतभेद के विषय में वह एक दूसरे का छिद्रान्वेषण करते हैं—समाचार-पत्र, सार्वजनिक सभाएँ, और व्यक्तिगत बातचीत इस सुन्दर क्रिया के लिए सारे साधनों की पूर्ति करते हैं—तथापि प्रतिपक्षियों के रूबरू मिलते समय मतभेद एक तरफ़ रख मुँह और वाणी में मिठास आ सकती है। इतना ही नहीं, मौका आने पर वे एक दूसरे से हाथ भी मिला सकते हैं। और प्रतिपक्षी की कन्याओं के साथ मित्रता करने की भलमनसाहत की उपेक्षा नहीं करते। आलोचना

के लिए भले ही इसे स्वार्थ कहा जाय, पर इसमें भला-बुरा विचार करने की शक्ति, व्यवहार और परमार्थ परखने का ज्ञान और महत्त्व के तथा बिना महत्त्व के विषयों को खोज निकालकर वैसा ही बर्ताव रखने की न्याय-बुद्धि है और यह प्रसन्नता का ही विषय है।

इस प्रकार इन दोनों का सर बिहारीलाल की पुत्री से मिलने का कार्य सरल था। गार्डन-पार्टी के बाद वे एक-दो बार सर बिहारीलाल के यहाँ आये-गये थे। इसलिए ऐसा नहीं लगता था कि किसी के लिए वे अनजान हों। उनका पहनाव और दिखाव सभ्यतापूर्ण था। एक दिन कुसुम शाम को घूमने जा रही थी। बगीचे से मोटर रवाना होते ही ये दोनों सामने मिले। उन्हें देखकर शिष्टता की दृष्टि से कुसुम ने मोटर रुकवाई।

सुखपाल ने पूछा—कहिये, सर साहब आये कि नहीं ?

'जी नहीं, कल आयेंगे।' कुसुम ने उत्तर दिया।

'अच्छा, अब हम वापस चलें। हमें उनसे ही काम था।'

'अफ़सोस है। आप कल आयेंगे तो वे ज़रूर मिलेंगे। मैं कह रखूँगी।' कुसुम ने कहा।

'आप किस तरफ़ जा रही हैं ?' सुखपाल ने परिचय का लाभ प्राप्त करने के लिए कहा।

'मैं नदी की तरफ घूमने जा रही हूँ।'

'आपको यदि आपत्ति न हो तो हम भी साथ चलें। हमें शान्तिकुटीर जाना है। वहाँ उतार दीजियेगा।' इतना कहकर सुखपाल ने मोटर की खिड़की खोली। अपने ही शहर के प्रतिष्ठित व्यक्ति तथा अपने परिचित यदि ऐसी माँग करें तो मना नहीं किया जाता। कुसुम को उनकी इच्छा में विचित्रता लगने पर भी उसने 'हाँ' कर दी। दोनों ही उसके साथ शान्तिकुटीर पहुँचे। मनोहर और उसकी माँ शान्तागौरी का नाम उसका जाना हुआ था। इसलिए उनसे परिचय कराने के लिए उन्होंने कुसुम से आग्रह किया। मना करने का कोई खास कारण न मिलने पर कुसुम स्वीकार कर अन्दर चली आई।

योगवासिष्ठ पढ़ती हुई मनोहर की माँ का ध्यान कुसुम की तरफ और कुसुम का शान्तागौरी की तरफ खिंचा। सुखपाल ने कुसुम को यहाँ लाने का आकस्मिक

कारण बताया। यह सुन शान्तागौरी बोली—बहुत अच्छा हुआ, इसे ले आये। यह तो मुझे क्या पहचानती होगी? किन्तु इसके पिता मुझे अच्छी तरह जानते हैं बेचारी ने अपनी माँ का केवल नाम ही संसार में आकर जाना।

कुसुम को माता का कुछ-कुछ स्मरण हुआ। वह बीमारी की हालत में चारपाई पर पड़ी थी और वह इसके सिर पर बार-बार हाथ रखती मानो प्रत्यक्ष स्नेह-मूर्ति हो, इतना ही कुसुम को माता का खयाल था। किन्तु माता के कई तरह के फोटो उसके सम्बन्ध में नौकर-चाकरों द्वारा सुनी बातें और चोहारीलाल के मुख से कभी-कभी प्रकट होनेवाले उद्गार, उसके हृदय में माता की मूर्ति और उसका स्मरण जाग्रत रखते थे। स्वर्गीय माता का स्मरण हृदय के कोमल भावों को स्पर्श करता है। इन जैसा आंसू-प्रेरक भाव दूसरा नहीं हो सकता! साधारण बातचीत होने के बाद देर हो जाने के डर से कुसुम उठ बैठी। शान्तागौरी ने उससे कहा—देखा, कुसुम! अब आती रहना! अपने पिता से कहना कि शान्ता याद करती थी। इतना कहकर कुसुम जाती है या नहीं; यह देखने की इच्छा किये बिना शान्ता ने फिर पुस्तक की तरफ़ अपना मुख फेर लिया।

कुसुम के जाने के बाद थोड़ी देर में लोग बगीचे में आने लगे। इसलिए शान्ता उठकर जाने लगी। स्थूलता बढ़ने पर भी उसके शरीर पर सौन्दर्य और तेज की रेखाएं स्पष्ट मालूम होती थीं। उसके मुख पर तिरस्कार और कठोरता की स्वाभाविक छाप थी।

आनेवाले पुरुषों में जुगलकिशोर भी था। उसने दूर से शान्ता को पास के एक दूसरे छोटे बँगले की तरफ जाते देखा, और उसने साथ चलते हुए एक युवक से कहा—यह बहुत मोटी स्त्री है!

उसके साथ चलनेवाला भावनाशील युवक था। उसे यह कथन रुचा नहीं और उसने कहा – ज़रा शिष्टता के साथ बोलो!

'देखो भाई, तुम कवि रहे हो, इसलिए तुम्हें मिश्री पीसना आता है। मुझे तो जैसा लगा वैसा ही कहा है! इतना अच्छा समझ लो कि मैंने कोई गाली नहीं दी

'गाली? तुम क्या कहते हो? इस देवी को गाली?'

'मैं तो कोई देवी-वेवी मानता नहीं। ये भी मेरे-तुम्हारे जैसे मनुष्य हैं।'

'भूल करते हो! कहाँ इनका पवित्र और तपस्वी जीवन और कहाँ हम?'

'बहुत अन्तर न होगा। समझे!' जुगलकिशोर ने कवि को और अधिक चिढ़ाया। जो मनुष्य जल्दी नहीं चिढ़ता वह कवि नहीं हो सकता। बाह्य-संस्कार जिस हृदय में तुरन्त उत्तर पा सके, वह हृदय कवि का होता है। उसने जुगलकिशोर को आह्वान किया।

'यदि तुम यह साबित कर दो कि अधिक अन्तर नहीं है तो जो कहो वह हार जाऊँ!'

'ठीक है। किसी दिन बतलाऊँगा।' कहकर जुगलकिशोर ने बात वहीं छोड़ दी। कारण, दोनों बँगले के बिलकुल पास पहुँच गये थे।

(१४)

सारी इकट्ठी हुई मण्डली रात को शान्तिकुटीर में जमी। देश की सुप्त स्वदेश-भक्ति की भावना को जाग्रत करने के लिए यह मण्डली बार-बार आपस में इसी तरह मिलती-जुलती रहती है। इसी प्रकार आज भी कोई महत्त्वपूर्ण चर्चा करने को वह इकट्ठी हुई थी। मनोहर धनवान पिता का पुत्र था। उसका पिता उसकी बाल्यावस्था से ही लापता था, किन्तु अपनी माता शान्तागौरी की निगरानी और सँभाल में वह पला-पोसा था। उसकी योग्य माता ने उसे उच्च शिक्षा दी थी, इतना ही नहीं, किन्तु स्वदेश-भक्ति की भावना भी उसमें उत्पन्न और पोषित की गई थी। अपनी माँ के प्रति उसका सद्भाव ही नहीं, किन्तु पूज्य-भाव था। वह यहाँ तक था कि मानो वह बिना उसकी आज्ञा के कोई बातचीत भी नहीं करता।

वह भले और धनी घर का होने के कारण अपनी छोटी अवस्था होने पर भी देश-भक्तों के साथ स्वतंत्रतापूर्वक मिल-जुल सकता था। उसका शरीर नाज़ुक था। पहनाव में बहुत सादगी रखता था ; पर यह सादगी उसके कपड़ों की उज्ज्वलता, शरीर की सफाई और पहनने के ढंग को ढँक नहीं सकती थी। उसकी आँखों पर चश्मा भी ज़रा भड़कीला लगता था। अलबत्ता, चश्मे में कोई विशेषता नहीं थी। उसका रंग गोरा था, किन्तु खून की कमी से या साबुन के अधिक व्यवहार के कारण गोरा रंग देखने-वाले की आँख में कुछ खटका करता। उसके स्वर में ऐसा भारीपन था जिसे यदि कई बार सुना जाय तो सिर दुखने का आभास मालूम होने लगता था। जिसने अभी सच्चा दुःख न देखा हो, ऐसा मनुष्य दुःख दूर करने तैयार हो जाय, फिर दुखी जन-समूह से जुदा पड़ जावे, ऐसा ही मनोहर का दिखाव था।

वहाँ कई लोग तो इस तरह बैठे हुए थे मानो खाना खाने बैठे हों। उस समय मीटिंग नहीं हो रही थी, इसलिए बैठने और बोलने के लिए किसी खास ढंग की आवश्यकता न थी। एकत्रित मित्रों में से तीन-चार व्यक्ति सिगरेट पी रहे थे। यह एक देश-भक्त से सहन नहीं हुआ और उसने कहा—हम दूसरों का सुधार चाहते हैं पर अपने को देखो न। सिगरेट का व्यसन कई लोगों से नहीं छूटता ?

'मुझे व्यसनियों में न गिनिये। मैं जब चाहूँ, तब सिगरेट छोड़ सकता हूँ।' दूसरे व्यक्ति ने कहा। हर एक व्यसन का उपयोग करनेवाला अपने को व्यसन से अलग और स्वतन्त्र ही मानता है। मानो बेचारा व्यसन के अस्तित्व को बनाये रखने की कृपा ही न करता हो।

'तुम अधिकतर ऐसी ही मोटी भूल करते हो। लोक-सेवा का नाम लेकर, आदमी मानो महात्मा बन जाता है। ऐसी बहुत-से लोगों की धारणा होती है। आज फिर कहोगे : 'तुम चाय क्यों पीते हो ?' 'दूध क्यों पीते हो ?' 'पदल न चलकर गाड़ी में क्यों बैठे ?' कल फिर पूछोगे : 'तुम खाते क्यों हो ?' 'सोते क्यों हो ?' 'हँसे क्यों ?' यह भी कोई बात है ? निर्दोष आनन्द या निर्दोष सुख मिलता हो तो वह क्यों न भोगा जाय ? शरीर में खून जो बहता है, उस बेचारे को कुछ-कुछ स्वतन्त्रतापूर्वक तो बहने दो।' वकील सुखपाल ने कहा।

'वकील साहब, यह सब ठीक है, किन्तु आप वकालत छोड़कर इस काम में पड़े थे, उसका क्या हुआ ? आपने प्रकट तो बहुत पहले से किया था।'

'यह मैं कहाँ मना करता हूँ ?' वकील ने कहा—किन्तु तुम्हारे ऊपर भार होना मैं तो हूँ नहीं। मैं वकालत छोड़ दूँ और फिर तुम्हें मेरे पालन-पोषण का विचार करना पड़े, यह मैं पहले ही नहीं चाहता। दस-एक हज़ार की रकम एकत्र करने पर ही मैं स्वतन्त्र हो सकता हूँ।'

'दस हज़ार का ही सवाल है न ?' मनोहर ने आतुरता से पूछा। 'मैं आपको अभी यह रकम दिये देता हूँ, पर बाद में आप क्या करेंगे ?'

सुखपाल जैसे वक्ता और बुद्धिमान् नेता को लगे हुए रोज़गार करने से रोककर उसका लाभ देश को दिलवाने के लिए आतुर बने मनोहर ने उत्साह-पूर्ण आवाज़ में कहा।

सुखपाल ज़रा सोच में पड़ा। दूसरे लोग मनोहर की तरफ देख रहे थे। फि

अनिच्छा-पूर्वक हँसकर सुखपाल ने कहा—अरे, ज़रा पूरा तो सुनिये ? फिर भी वकील का धन्धा स्वतन्त्र है। स्वतन्त्र रहकर लोगों की सेवा हो सकती है। लोगों में देश-हित की भावना जाग्रत होती है ; सरकार को भी वह दबा सकती है। इस तरह कई लाभ होते हैं। इसी का ख़्याल करता हूँ। बाक़ी मैं तो दस हज़ार की ज़रूरत समझूँ, ऐसा नहीं।

'नहीं-नहीं, यह सभी बहाने हैं।' एक ने कहा।

'ठीक, तो फिर मेरे लिए क्या काम रहेगा ? मान लो, मैंने वकालत छोड़ दी, फिर बाद में ?'

'गाँवों में जाओ और लोगों को जाग्रत करो !'

'नहीं, यों बिना पैसे गाँवों में जाने से कोई लाभ नहीं। देश-भक्ति के भजनों के साथ गाँवों में पहुँचना चाहिये। पहले ऐसी भजन-मण्डलियाँ तैयार करनी पड़ेंगी।'

'ठीक है, कविता द्वारा ही जनता के हृदय में प्रवेश किया जा सकता है। हमारा कबीर-पन्थ भी तो इसी को अपनाये हुए है। मेरे पास ऐसी कविताएँ और भजन तैयार हैं।' कवि ने कहा।

'ये सब प्रयत्न व्यर्थ हैं। दुनिया ऐरोप्लेन पर चढ़ती जाती है। और तुम मँजीरा और करताल लेकर भजन गाने बैठोगे। बहुत काल तक भक्ति की गई, पर परिणाम तो पराधीनता के रूप में ही सामने आया। अब यह छोड़ दो और विज्ञान का आश्रय लो। जिस तरह और रास्तों से पैसा फिजूल बर्बाद करते हो, इसके बजाय नई प्रयोगशालाओं की स्थापना करो जिससे वैज्ञानिक तैयार हों। यह योजना मैं बना भी सकता हूँ।' एक वैज्ञानिक ने कहा।

'विज्ञान से आपको बहुत दिलचस्पी मालूम होती है, यह ठीक है। किन्तु विज्ञान ने ही दुनिया का सत्यानाश कर डाला ! धर्म तक खोया, खैर, यह बात छोड़ो भी, किन्तु तुम्हारा ऐरोप्लेनवाला देश हमारी अपेक्षा अधिक सुखी है ; यह तुम मानते हो ?' विज्ञान-विरोधी ने पूछा।

'यदि ऐरोप्लेनवाले देश आपकी अपेक्षा अधिक सुखी न भी हों तो यह सारी मगजपच्ची तो छोड़ दो ! जैसे चल रहा है वैसे चलने दो !'

'हमारा ऐसा उद्देश्य न होना चाहिये। विज्ञान में आगे बढ़ो, किन्तु अपना ध... भूलो। जहाँ धर्म वहाँ जय।'

'ठीक है। जबसे हम सनातन-धर्म से भ्रष्ट होने लगे तभी से ही हमारा पतन होने लगा।'

'तुम सभी भद्र-भद्र ही एकत्र हुए हो। सनातन-धर्म है क्या? जोगिनी की पूजा? बकरे का बलिदान? ठाकुरजी का छप्पन-भोग या महादेवजी की भाँग? धर्म को जब तक राजनीति से जुदा न कर दोगे तब तक तुम्हारे झगड़े कभी मिटने के नहीं।'

'इसका अर्थ यही है कि तुम सनातन-धर्म का रहस्य नहीं समझते।'

'रहस्य समझकर आपने क्या किया? जब तक आपके शरीर में ताकत नहीं आती तब तक सभी व्यर्थ है। अब तो सब छोड़कर गांव-गांव और शहर-शहर में अखाड़े क़ायम कीजिये।' छाती ताने एक पहलवान बोला।

'यह कुछ ठीक भी है और कुछ व्यर्थ भी है। हाथी का आकार ढूँढ़नेवाले अन्धे जैसे लड़ते थे ऐसा ही क्या हमें करना चाहिये?' एक समाधान करनेवाला बोला।

एक मनुष्य ने आकर मनोहर को बाहर आने के लिए कहा।

'कौन? माँ बुलाती है?' मनोहर ने पूछा।

'जी हाँ।' उस मनुष्य ने उत्तर दिया।

'मैं ज़रा माँ के पास हो आऊँ। फिर ये व्यर्थ बातें छोड़ हम आज का काम करेंगे।' मनोहर ने कहा। उसकी आवाज़ प्रत्येक के कानों तक पहुँच गई थी। वह बाहर निकला। साथ ही जुगलकिशोर और सुखपाल वकील हँस पड़े।

'माँ!' शब्द की ओर सबका ध्यान खींचते हुए जुगलकिशोर ने नकल की। 'किसी दूसरे को तो 'माँ' के पास जाना नहीं है?'

कुछ व्यक्ति हँसे। 'माँ' के आधार पर भव-सागर तैरते इस बालक के लिए हँसी उत्पन्न होना स्वाभाविक था। जुगलकिशोर भी कुछ ठहरकर इधर-उधर घूमने के बहाने बाहर निकल गया।

बगीचे के छोटे बँगले के पास की एक बेल की ओट में शान्ता बैठी थी। पास ही मनोहर एक दूसरी कुर्सी पर बैठा था। मनोहर ने बातचीत चालू रखी—माँ! तुम जो कहती हो, वह ठीक है। ये लोग सब केवल बातें करनेवाले ही हैं।

'तुम किसी धनी मनुष्य को अपने मार्ग पर नहीं ला सकते? यदि तुम उसे अपने मार्ग से अलग नहीं कर सकते, तो फिर तुम करोगे क्या?' शान्ता ने पूछा।

'मैं आज ही यह तय करनेवाला हूँ। जब तक धनी लोग हमारे मार्ग में नहीं

आयेंगे और उन्हें शामिल नहीं कर सकेंगे, तब तक देश का भला नहीं हो सकता।'

'देशोद्धार में जो कोई बाधक बने वह धनी ही है।' शान्ता ने ज़रा ज़ोर देकर कहा।

आज्ञाकारी पुत्र ने कहा—ठीक है माँ!

'तुमसे यदि कुछ न हो सके तो किसी एक धनवान् को हाथ में लो।'

'यह तो हम करेंगे ही। बिहारीलाल के विरुद्ध कभी से आन्दोलन शुरू कर दिया है। शान्तिप्रिय अपने पत्र में उनके विषय में लिखते ही रहते हैं और सुखपाल सभाओं में उनके विरुद्ध बोलने में कोई कसर नहीं रखते।'

'इससे क्या बना? उनकी मिल बन्द हो गई? उनका व्यवसाय नष्ट हो गया? या वह तुम्हारे पक्ष में डरकर आ गये?'

'उनकी लड़की के साथ इन दोनों ने परिचय करना शुरू कर दिया है। फिर उन्हें अपने पक्ष में लाने में बहुत देर न लगेगी।'

'तुममें समझ कहाँ है? बाप के आश्रय में रहनेवाली लड़की इस तरह तुम्हारे पक्ष में आ जायगी? माँ-बाप को वश में करने के लिए उनकी लड़की के साथ तो विवाह होना चाहिए।' योगवासिष्ठ की अभ्यासिनी माता अनुभवी दिखाई दी।

'हाँ, यह ठीक कहती हो माँ! शान्तिप्रिय की ऐसी इच्छा भी है। एक बार उसने मुझसे इस विषय में कहा भी था।'

माता की आँखों से तिरस्कार का भाव प्रकट हुआ।

'शान्तिप्रिय की इच्छा से तुम्हें क्या करना है? तुम्हारी खुद की क्या इच्छा है?'

ऐसा प्रश्न सुनकर प्रत्येक मातृ-भक्त पुत्र को शरमाना चाहिये। यह सोच मनोहर भी शरमाकर मुस्कराया।

झाड़ी के पीछे खड़खड़ाहट होने पर शान्ता ने उस तरफ़ बैठे-बैठे ही नज़र डाली, किन्तु वहाँ कोई मालूम नहीं हुआ। फिर कुछ देर बाद मन्द प्रकाश में जुगलकिशोर बड़े बँगले में प्रवेश करता हुआ मनोहर को दिखलाई दिया। शान्ता को अधिक जानने का इच्छुक जुगलकिशोर झाड़ी के पीछे से माँ-बेटे की बातचीत सुनकर वापस चला गया था।

बँगले का वातावरण शान्त, किन्तु उग्र मालूम होता था। दो-दो, तीन-तीन [illegible] की टोलियाँ अलग-अलग बैठकर धीरे-धीरे बातें कर रही थीं। ऐसा मालूम

होता था मानो किसी को समझाने की पैरवी हो रही हो। जुगलकिशोर को पता चला कि मांसाहार के विषय पर सनातनी और पहल्वान दोनों को लड़ने से रोकने में कवि और वैज्ञानिक लड़ पड़े हैं। अगर दूसरे लोग बीच में न पड़ते तो मारपीट तक नौबत आ जाती।

शान्तिप्रिय दूर पर एक खिड़की के पास कुर्सी पर बैठा था। वहाँ जुगलकिशोर ने पहुँचकर पीछे से उसके कन्धे पर हाथ रखकर बातचीत करने के लिए प्रेरित किया।

'क्यों, क्या सोच रहे हो?'

'आप हैं, आपमें एकमत कहाँ है? और एक नेता कहाँ है?' शान्तिप्रिय ने उत्तर दिया।

'खिड़की के पास बैठकर ऐसे विचार हो ही नहीं सकते। तुम किसी अधिक रसिक विचार में पड़े हो, यह तुम्हारा चेहरा देखने से ही मालूम होता है।'

'अजी जाओ भी, तुम जैसे आवारे को भला दूसरी भी कोई बात सूझती है?'

'भले आदमी, मुझसे कोई बात छिप सकती है?' जुगलकिशोर ने कहा। यह ठीक था कि जुगलकिशोर से कोई बात छिपकर रहना मुश्किल थी। यह सब जानते थे। उसका सबको डर रहता था। वह देश भक्तों के दल में अग्रगण्य व्यक्ति था। उसने दो-एक बहुत अच्छे कार्य किये थे; इसलिए उसने इस पार्टी में ज़बर्दस्ती प्रवेश कर लिया था। प्रवेश करने के बाद 'गर्जना' पत्र को उसने कितनी ही आर्थिक सहायता दी थी; इसलिए उसे अपना प्रवेश फलीभूत हो गया था और उसका सबको डर रहता था। शान्तिप्रिय उसका विशेष आभारी था; क्योंकि उसने लालजी सेठ के द्वारा उसके पत्र को अच्छी आर्थिक सहायता दिलवाई थी।

'मैं कहता हूँ, इसमें छिपाने की कोई बात नहीं।' शान्तिप्रिय ने बताया।

'ऐसा! अच्छा। सर बिहारीलाल की लड़की के विषय में तुम्हारा क्या मत है?'

शान्तिप्रिय ज़रा चौंका। इस प्रश्न की इस समय आवश्यकता ही नहीं थी। वह केवल अपना कुसुम के प्रति पक्षपात समझता था, इतना जानने के लिए ही उससे पूछा जा रहा था।

'उसके विषय में जैसा अच्छा लगे वैसा मत हो सकता है, परन्तु उसके पिता के विषय में मेरा मत प्रकट है।'

'अपने लेख से तुम उसके पिता को डराने के बदले अपना विरोधी बनाते हो।'

जुगलकिशोर से अब यह बात छुपाना कोई कठिन न था और ऐसा करने की आवश्यकता भी क्या थी ? उसने हँसते-हँसते उत्तर दिया—मनोधर्म-विद्या का एक नियम है कि विरोध का प्रदर्शन आकर्षण का एक मार्ग है।

'यह ठीक है, इसीलिए अपने पुराणों में बतलाया गया है कि शत्रुता में मुक्ति जल्दी मिलती है। पर तुम्हारे आकर्षण का कोई भाग नष्ट हो गया तो ?'

'वह कोई मेरी जानकारी के बाहर है ? सुखपाल का मन अच्छी तरह से वहीं पहुँचता है।'

जुगलकिशोर ने एक नई बात मालूम की; किन्तु उसके पास अभी नई बात कहने को शेष थी।

'इसके सिवा दूसरा कुछ हो तो ?'

'इसमें कोई बहुत ध्यान देने की आवश्यकता नहीं। रमेश कोई...'

'अरे मूर्ख, रमेश की क्या बात करते हो ? उसकी अपेक्षा अधिक भयंकर तुम्हारे पास ही एक मनुष्य है। ज़रा ख्याल रखना।'

इतने में मनोहर उनके पास से होकर गुज़रा। जुगलकिशोर ने उसकी तरफ़ आँख से इशारा किया। इसे शान्तिप्रिय ठीक-ठीक न समझ सका।

मनोहर ने आकर सबको एकत्र कर अपना कार्य-क्रम समझाया। उसके मत में मज़दूरों का प्रश्न इस समय अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रश्न बन गया था। उनका वेतन बढ़वाना, उनके बालकों को शिक्षा दिलवाना, उनके लिए डाक्टरी सहायता का प्रबन्ध करवाना और उनको कारखाने के नफे में से हिस्सा दिलवाना आदि कार्यों के लिए सबको तैयार होना है। यह उसने बतलाया।

मनोहर भला था, होशियार था, कम पहुँचवाला था, उसके साथी उसकी ऐसी ही कुछ आलोचना कर रहे थे। परन्तु उसका सबके प्रति व्यवहार ऐसा था, जो सबको चकित करता था। एक बार जहाँ उसने कोई इरादा किया, फिर उसे पूरा किये बिना वह नहीं रहता था। उसमें वह किसी का लिहाज़ नहीं करता था, पैसे का लोभ नहीं करता था और मेहनत करने में भी पीछे नहीं हटता था।

सबने उसके कार्यक्रम को मान लिया। प्रत्येक कार्यकर्त्ता इसमें भाग ले सकता था, भजनमण्डली को भी गुंजाइश थी, भाषण करनेवाले को भाषण करने का भी मौका था, पहलवान लाठी चलाने के दाव और कुश्ती लड़ना सिखा सकते थे

और सनातनी सबको धर्म की मर्यादा बता सकते थे, कवि मज़दूरों की महत्ता पर कविता लिख सकते थे और वैज्ञानिक यदि चाहें तो मज़दूरों को इञ्जीनियर जितना ज्ञान दे सकते थे, यानी इस क्षेत्र में किसी को भी कार्य करने के लिए कोई बाधा नहीं थी।

मज़दूर इस सन्देश को ग्रहण करेंगे, इसकी ज़िम्मेदारी जुगलकिशोर ने ली और दो-एक मनुष्य सुन सकें इस तरह धीमी आवाज़ में कहा—और यदि लड़ाई-फसाद हुआ तो इससे वकील साहब को भी काम मिल सकेगा।

(१५)

'फिर साहब, आपने अखबार निकालने के सम्बन्ध में कोई निश्चय किया या नहीं?' रमेश ने सर बिहारीलाल से पूछा। 'गर्जना' पत्र में बिहारीलाल के विरुद्ध झूठी आलोचनाएँ निकलने लगी थीं। उसमें मिल-मजदूरों के प्रति उनके क्रूर बर्ताव के कई काल्पनिक उदाहरण उद्धृत किये जाते थे। बिहारीलाल ने जो अच्छी बातें कर्त्तव्य के तौर पर चालू करनी चाही थीं, उन प्रवृत्तियों के प्रति अक्षम्य उदासीनता दिखलाकर उन्हें देशभक्त किस प्रकार विकृत रूप में प्रकट करते थे, इसकी उस पत्र में चर्चा रहती थी। मज़दूरों में फैलाये गये असन्तोष ने कई बार तो उग्र रूप धारण कर लिया था, और ऐसा मालूम होता था कि हड़ताल हो जायगी। इस हड़ताल के परिणाम-स्वरूप फैलनेवाली बेकारी, गुनाह और झगड़े आदि सारे दोष भी सर बिहारीलाल के सिर पर ही थोपे जाते। पत्र में प्रकाशित लेख पढ़ने के बाद पढ़नेवाले को ऐसा मालूम होता था मानो षड्यन्त्र शहर के ऊपर मँडरा रहे हों, और सर बिहारीलाल के प्रति सभी पाठकों के मन में भारी असन्तोष उत्पन्न होता था।

ज़मीन खरीद चुकने के बाद कई दिनों तक 'गर्जना' पत्र में हुई आलोचनाएँ सहन न हो सकने पर रमेश ने ऊपर का प्रश्न किया।

'पत्र निकालकर क्या करूँगा?' सर बिहारीलाल ने पूछा।

'आपकी वास्तविक स्थिति प्रकट करूँगा, और ऐसी विषैली टीकाओं का उसके द्वारा उत्तर दूँगा।' रमेश ने आवेश-पूर्वक कहा।

कुसुम वहीं बैठी थी। उसने भी अपनी सहमति प्रकट की।

'ये टीकाएँ उत्तर देने के योग्य हैं?'

'साहब, आपसे इस विषय में अधिक बताने की आवश्यकता तो है नहीं। आप जानते ही हैं कि पत्र ही लोगों के हृदय बदलते हैं।' रमेश ने बताया।

'विषैली टीकाओं का प्रत्युत्तर देने में हमें विषैला नहीं बनना पड़ेगा?' सर ने पूछा। 'मुझे तो इस भांड़-कला में विश्वास नहीं।'

'यह ठीक है, किन्तु इस पत्र में प्रकाशित टीकाओं के आधार पर सरकार के कई अफ़सर अब तक आकर अपनी संस्था की जाँच कर गये हैं। हमीं पर वज़न ज्यादा बढ़ता जायगा तो ठीक न होगा। टीका का उत्तर देकर हमें सच्ची हक़ीकत प्रकट करनी ही चाहिये।'

'भाई, यह ठीक है। इसमें खर्चा ही कितना होगा? यों लाखों रुपए खर्च होते ही हैं; फिर दस हज़ार कोई अधिक नहीं!' कुसुम ने कहा।

'खर्च का सवाल नहीं; परन्तु यह खर्च करके भी हम वैर-भाव में वृद्धि ही करेंगे। अच्छा पत्र चलाने के लिए भी कोई योग्य मनुष्य चाहिये।'

'वह मैं ला दूँगा। मेरा एक मित्र है, वह इस काम में अनुभवी है।' रमेश ने जगदीश का विचार करके कहा।

इतने में मिल का व्यवस्थापक आ पहुँचा। उसका नाम प्राणलाल था। सारी ज़िन्दगी उसने बिहारीलाल की नौकरी में बिताई थी। छोटी जगह से विश्वासपात्र होते-होते, उसे मिल के व्यवस्थापक का महत्त्वपूर्ण काम सौंपा गया था। और यह कर्तव्य उसने लम्बे समय तक बहुत सन्तोषपूर्वक निभाया था। अध्ययन के शौकीन बिहारीलाल ने व्यापार की सारी ज़िम्मेदारी उसी को सौंप दी थी। प्राणलाल ने आते ही शिकायत की—साहब, अब तो इन लोगों का कोई प्रबन्ध होना चाहिये, तभी ठीक होगा।

'किसकी बात कहते हो?'

'यही आपके अखबारवाले, आपसे भरपूर पैसा पानेवाले और आपकी ही बुराई करनेवाले लोगों की ही बात कहता हूँ।'

'इनका क्या किया जाय?'

'मैंने तो वकील की सलाह ली है। यह क्या, रोज़ के भाषण और रोज़ के ही झगड़े-फ़िसाद? लोगों से यह तो नहीं कहते कि तुम ठीक काम करो। वे तो कहते तुम काम कर-करके क्यों मरते हो? तुम अधिक वेतन क्यों नहीं माँगते?

तुम्हारे मासूम बच्चे भूखों मरते हैं और तुम्हारे मालिक को मोटर चाहिये। करो काम बन्द! भला उनसे इन लोगों को क्या करना?'

'वकील ने क्या कहा?'

'कहा कि उन्हें अपनी जगह में मत बैठने दो, किन्तु वे लोग बाहर के चौगान में इकट्ठे हो जाते हैं। तमाशा करने की कोई टोटा है? लोगों को तो जैसा नचाना चाहो वैसा नाचने लगते हैं।' प्राणलाल ने कहा।

'वहाँ कौन-कौन आता है?' बिहारीलाल ने पूछा।

'कई खिलाड़ी इकट्ठे होते हैं। नये आदमियों को तो मानो एक रोज़गार मिल गया है। उनमें वह मनोहर! भक्तानी का लड़का! उसकी तो बात ही न कीजिये। ऐसा मालूम होता है, मानो उसे पागलपन सवार हुआ हो!'

प्राणलाल का मिज़ाज बिगड़ गया। वह एक खरे स्वभाव का वफ़ादार नौकर था, अगर वह लिहाज़ छोड़ देता तो गालियाँ दिये बिना न रहता।

'कौन भक्तानी?'

'भाई, आप तो पहचानते हैं। वही शान्तागौरी, जो नदी के पास रहती है। वही न प्राणलाल काका?' कुसुम ने कहा।

'हाँ, वही।' प्राणलाल ने उत्तर दिया।

सर बिहारीलाल ने एक क्षण कुसुम की तरफ़ देखा और उससे पूछा—तू उसे कैसे पहचानती है!

'मैं कहना भूल गई थी। एक दिन सुखपाल और शान्तिप्रिय आपसे मिलने आये थे। उस समय मैं मोटर में घूमने जा रही थी और आप घर पर नहीं थे, अतएव उन्होंने मोटर का लाभ उठाना चाहा, इसलिए मैंने उन्हें साथ ले लिया। उन्हें शान्तागौरी के घर जाना था। वहाँ अकस्मात् मैं उनसे मिली थी, वह आपको याद भी करती थीं।'

'अच्छा!' केवल इतना ही कहकर बिहारीलाल खड़े हुए और अपने एकान्त अध्ययन के कमरे में चले गये।

प्राणलाल, कुसुम और रमेश तीनों को कुछ आश्चर्य हुआ।

बिहारीलाल अकस्मात् ही एकाएक उठ गये थे। इससे तीनों एक दूसरे की तरफ़ देखने लगे।

'साहब, आपसे इस विषय में अधिक बताने की आवश्यकता तो है नहीं। आप जानते ही हैं कि पत्र ही लोगों के हृदय बदलते हैं।' रमेश ने बताया।

'विषैली टीकाओं का प्रत्युत्तर देने में हमें विषैला नहीं बनना पड़ेगा?' सर ने पूछा। 'मुझे तो इस भाँड़-कला में विश्वास नहीं।'

'यह ठीक है, किन्तु इस पत्र में प्रकाशित टीकाओं के आधार पर सरकार के कई अफ़सर अब तक आकर अपनी संस्था की जाँच कर गये हैं। हमीं पर वज़न ज्यादा बढ़ता जायगा तो ठीक न होगा। टीका का उत्तर देकर हमें सच्ची हक़ीकत प्रकट करनी ही चाहिये।'

'भाई, यह ठीक है। इसमें खर्चा ही कितना होगा? यों लाखों रुपए खर्च होते ही हैं; फिर दस हज़ार कोई अधिक नहीं।' कुसुम ने कहा।

'खर्च का सवाल नहीं; परन्तु यह खर्च करके भी हम वैर-भाव में वृद्धि ही करेंगे। अच्छा पत्र चलाने के लिए भी कोई योग्य मनुष्य चाहिये।'

'वह मैं ला दूँगा। मेरा एक मित्र है, वह इस काम में अनुभवी है।' रमेश ने जगदीश का विचार करके कहा।

इतने में मिल का व्यवस्थापक आ पहुँचा। उसका नाम प्राणलाल था। सारी ज़िन्दगी उसने बिहारीलाल की नौकरी में बिताई थी। छोटी जगह से विश्वासपात्र होते-होते, उसे मिल के व्यवस्थापक का महत्त्वपूर्ण काम सौंपा गया था। और यह कर्तव्य उसने लम्बे समय तक बहुत सन्तोषपूर्वक निभाया था। अध्ययन के शौकीन बिहारीलाल ने व्यापार की सारी ज़िम्मेदारी उसी को सौंप दी थी। प्राणलाल ने आते ही शिकायत की—साहब, अब तो इन लोगों का कोई प्रबन्ध होना चाहिये, तभी ठीक होगा।

'किसकी बात कहते हो?'

'यही आपके अखबारवाले, आपसे भरपूर पैसा पानेवाले और आपकी ही बुराई करनेवाले लोगों की ही बात कहता हूँ।'

'इनका क्या किया जाय?'

'मैंने तो वकील की सलाह ली है। यह क्या, रोज़ के भाषण और रोज़ के ही झगड़े-फ़िसाद? लोगों से यह तो नहीं कहते कि तुम ठीक काम करो। वे तो कहते हैं कि तुम काम कर-करके क्यों मरते हो? तुम अधिक वेतन क्यों नहीं माँगते?

तुम्हारे मासूम बच्चे भूखों मरते हैं और तुम्हारे मालिक को मोटर चाहिये। करो काम बन्द ! भला उनसे इन लोगों को क्या करना ?'

'वकील ने क्या कहा ?'

'कहा कि उन्हें अपनी जगह में मत बैठने दो, किन्तु वे लोग बाहर के चौगान में इकट्ठे हो जाते हैं। तमाशा करने को कोई टोटा है ? लोगों को तो जैसा नचाना चाहो वैसा नाचने लगते हैं।' प्राणलाल ने कहा।

'वहाँ कौन-कौन आता है ?' बिहारीलाल ने पूछा।

'कई खिलाड़ी इकट्ठे होते हैं। नये आदमियों को तो मानो एक रोज़गार मिल गया है। उनमें वह मनोहर ! भक्तानी का लड़का ! उसकी तो बात ही न कीजिये। ऐसा मालूम होता है, मानो उसे पागलपन सवार हुआ हो !'

प्राणलाल का मिज़ाज बिगड़ गया। वह एक खरे स्वभाव का वफ़ादार नौकर था, अगर वह लिहाज़ छोड़ देता तो गालियाँ दिये बिना न रहता।

'कौन भक्तानी ?'

'भाई, आप तो पहचानते हैं। वही शान्तागौरी, जो नदी के पास रहती है वही न प्राणलाल काका ?' कुसुम ने कहा।

'हाँ, वही।' प्राणलाल ने उत्तर दिया।

सर बिहारीलाल ने एक क्षण कुसुम की तरफ़ देखा और उससे पूछा—तू उसे कैसे पहचानती है ?

'मैं कहना भूल गई थी। एक दिन सुखपाल और शान्तिप्रिय आपसे मिलने आये थे। उस समय मैं मोटर में घूमने जा रही थी और आप घर पर नहीं थे, अतएव उन्होंने मोटर का लाभ उठाना चाहा, इसलिए मैंने उन्हें साथ ले लिया। उन्हें शान्ता-गौरी के घर जाना था। वहाँ अकस्मात् मैं उनसे मिली थी, वह आपको याद भी करती थीं।'

'अच्छा !' केवल इतना ही कहकर बिहारीलाल खड़े हुए और अपने एकान्त अध्ययन के कमरे में चले गये।

प्राणलाल, कुसुम और रमेश तीनों को कुछ आश्चर्य हुआ।

बिहारीलाल अकस्मात् ही एकाएक उठ गये थे। इससे तीनों एक दूसरे की तरफ़ देखने लगे।

इतने में मिल से एक आदमी हाँफता-हाँफता अन्दर आया और प्राणलाल से बोला—मज़दूर काम करने से इन्कार कर रहे हैं और शरारत पर उतर आये हैं।

'मैं यह सोचता ही था। साहब को खबर कर देना। मैं जाता हूँ।' यह कहकर प्राणलाल खड़ा हुआ और चला गया।

कुसुम और रमेश दोनों अकेले रह गये। भाग्य से ही उन्हें इस समय अकेले होने का मौक़ा आया था। दोनों ही, यदि ऐसा कोई मौका आता था तो उसे टालने के लिए प्रयत्नशील रहते थे।

'तो साहब को आप खबर कर देंगी?' रमेश ने कुसुम से पूछा।

'मुझे तो कुछ डर लगता है। यों तो कुछ नहीं, किन्तु जब किसी समय वे एका-एक उठ जाते हैं तब दो-तीन घण्टे तक किसी से नहीं मिलते।'

'फिर भी आप ही कह देखें। आज का प्रसङ्ग दूसरा है।'

'आप भी साथ ही रहें न?' कुसुम ने कहा।

दोनों साथ ही साथ अन्दर जाकर बिहारीलाल के पुस्तकालय के सामने पहुँचे। कुसुम ने धीरे से दरवाज़े को थपथपाया। बिहारीलाल ने अन्दर से पूछा—कौन है?

'मैं हूँ।' कुसुम ने कहा।

'क्यों कुसुम?' बिहारीलाल की आवाज़ स्थिर नहीं थी।

'मिल के मज़दूर काम नहीं करते और शरारत पर उतर आये हैं। प्राणलाल काका वहाँ गये हैं, और उन्होंने मुझसे आपको खबर कर देने के लिए कहा है।'

'परवा नहीं; इसे तुम कोई बड़ी बात न समझो।'

'मैं अन्दर आऊँ?' कुसुम ने पूछा।

'वाह, तुझे रोका किसने है?' बिहारीलाल ने कहा।

दरवाज़ा खोलकर कुसुम ने अन्दर प्रवेश किया। कुसुम ने कोई छाया कमरे के वातावरण में लोप होती हुई देखी। वह चौंकी। कौन आया और चला गया? चले जाने का और दूसरा रास्ता तो है नहीं। हाँ, एक छोटा दरवाज़ा दूसरे कमरे में था, पर वह तो इस तरफ़ से ही बन्द था। उसने बिहारीलाल के सामने देखा। उनकी आँखें लाल और स्थिर हो गई थीं। उनके सदा शान्त दिखलाई देनेवाले मुख पर व्यग्रता के चिह्न थे। कल्पनातीत चमत्कार आँखों से देखकर मनुष्य जैसा विह्वल हो जाता है, इसी प्रकार वे दिखाई दे रहे थे। इस जगह का वातावरण भी उसे ऐसा ही अपार्थिव लगा।

'भाई, यहाँ कोई आया था क्या ?' कुसुम ने पूछा।

'नहीं, यहाँ कौन आयेगा ?' बिहारीलाल ने कहा, किन्तु कुसुम की तरफ देखते हुए उन्हें डर लगा हो, ऐसा मालूम हुआ।

कुसुम ने अपने पीछे आये रमेश के सामने देखा। रमेश के मुख पर किसी अगम्य वस्तु के देखने का भास नहीं मालूम होता था।

'रमेश भाई, तुम्हें कुछ मालूम हुआ ?'

'नहीं।' रमेश ने कहा। बिहारीलाल जहाँ बैठते थे वहाँ का वातावरण शान्त, स्थिर और गम्भीर रहता था। वाद-विवाद या अट्टहास का उनकी उपस्थिति में अभाव ही रहता था। स्वाभाविक आवाज से ऊँचे स्वर में बोलना भी वहाँ शक्य न था। इसलिए रमेश को इस घर के गम्भीर वातावरण की एक प्रकार की आदत हो गई थी।

'मेरा विश्वास है कि मुझे यहाँ कुछ दिखाई दिया। भाई, आप इस कमरे में अधिक न बैठा करें।' कुसुम ने कहा।

रमेश को आश्चर्य हुआ। ऐसी सुशिक्षित युवती को भी भ्रम ? उसके मुख पर आश्चर्य का भाव व्यक्त हुआ।

'ठीक, मैं यहाँ ज्यादा नहीं बैठूँगा, पर मैं जब यहाँ बैठा होऊँ तब तुम यहाँ ज्यादा आना ही मत।' बिहारीलाल ने कहा। वे हँसे; परन्तु उनकी हँसी बनावटी थी। यह प्रत्येक देखनेवाला समझ सकता था।

'ऐसा क्यों ?' कुसुम को बड़ा आश्चर्य हुआ, और अधिक भयभीत होकर उसने पूछा।

'क्यों ? इससे तुझे डर लगता है ? चलो हम लोग बाग में बैठेंगे।' कहकर बिहारीलाल कुर्सी पर से उठे और अपने सिर पर हाथ फेरने लगे मानो कमरे के अगम्य वातावरण का भार एकदम अपने ऊपर से दूर कर रहे हों। तीनों बाहर आये। बाहर के कमरे में जुगलकिशोर धीरे-धीरे चहलक़दमी कर रहा था। बिहारीलाल उसे पहचानते थे। कोई मित्र न था। इसलिए उन्हें रोज़ मिलने आनेवाले पहचानते भी न थे। उनका सबके साथ मीठा व्यवहार था। शिष्टता में वह कभी चूकते नहीं थे। तथापि वह एकान्तसेवी ही थे। अफसर, धनवान, अतिथि और आश्रित अपनी ज़रूरत के लिए सर बिहारीलाल से मिलते रहते थे, पर वह शायद ही किसी से मिलने जाते। धनी और सभ्य पुरुष की हैसियत से उन्हें आगे आने के कई मौक़े मिलते, पर वे

ऐसे मौकों पर हमेशा लापरवाही दिखलाते थे। ऐसा मालूम होता था, मानो उन्हें मिली 'सर' की पदवी उनकी इच्छा के बिना मिली हो। इसका उन्हें न हर्ष था और न शोक।

व्यापार से उन्होंने अपना मन हटा ही लिया था। धीरे-धीरे अपने विश्वासपात्र प्राणलाल को सारा भार सौंपकर वे लगभग निवृत्त ही हो गये थे। अलवत्ता, वे कभी-कभी हिसाब-किताब देखते थे, मनुष्यों की नियुक्ति करते, व्यापारिक सूचनाएँ देते; किन्तु यह सारी खानापूरी प्राणलाल के द्वारा होती थी। एक वार ठीक-ठीक व्यवस्थित हो चुका धन्धा व्यवस्था के वल पर ही इस प्रकार चल रहा था। प्राणलाल पर अविश्वास रखने का कोई कारण न था। कठिन कसौटियों पर से उसकी परख हो चुकी थी। प्राणलाल को केवल अपने एक स्वच्छन्दी पुत्र का अधिक खयाल रहता था। इसके सिवा वह अपना सारा ध्यान विहारीलाल की मिल पर ही रखता था। इसलिए विहारीलाल अपनी पुस्तकों के अध्ययन में ही व्यस्त रहते थे। अपनी पुत्री कुसुम को उन्होंने सारी व्यवस्था सौंप दी थी; और वह उसी में ही लगी रहती थी।

इस प्रकार विहारीलाल किसी से मित्रता न होने पर भी अपने मीठे स्वभाव और अपनी सामाजिक स्थिति के कारण वहुत लोगों से परिचित थे। जुगलकिशोर के साथ उनका अधिक परिचय नहीं था। किन्तु नाम से और देखकर वे उसे जानते थे। मज़दूरों को वहकानेवालों में उसका भी नाम आता था। इसके पहले भी अनिवार्य और अगम्य भय-मूर्ति के रूप में जुगलकिशोर को अफ़वाहों द्वारा भी पहचाना था।

जुगलकिशोर ने विहारीलाल से नमस्कार किया। विहारीलाल ने उसे अपने पास विठलाया और कुसुम तथा रमेश को कला-सम्बन्धी नई आई हुई पुस्तक में से कुछ चुनने के लिए कमरे के वाहर भेजा।

'साहव, आप तो मुझे नहीं पहचानते होंगे!' जुगलकिशोर ने वात शुरू की।

'क्यों नहीं? मैंने आपको देखा है और आपके विषय में कई वातें भी सुन चुका हूँ।' विहारीलाल ने कहा।

जुगलकिशोर कुछ हँसा। 'अपने विषय में सुनी हुई वातों के आधार पर तो मैं आपकी मुलाकात करने के योग्य मालूम न होता होऊँगा। यह मैं खूव जानता हूँ। ... वाध्य होकर ही मुझे आना पड़ा है।'

'लोगों की बातों के आधार पर मैं कोई धारणा नहीं बनाता। आपको क्यों आना पड़ा है?'

'आपकी मिल के मज़दूरों के विषय में कुछ बातें करनी हैं।'

'तो फिर आप प्राणलाल से मिलें। वह कोई इन्तज़ाम करेंगे। इस विषय में आपको जो कहना है, वह उन्हीं से कहिये।'

'नहीं साहब, वे प्राणलाल से कहने की बातें नहीं हैं। वह तो पुराने ख्यालात का रूढ़िवादी बुड्ढा है।'

'तो रमेश को बुलाऊँ—आपको बुड्ढे लोग तो पसन्द नहीं हैं।'

'ऐसा कुछ नहीं। ये बातें तो आपसे ही करनी हैं। शान्तागौरी ने मुझे आपके पास भेजा है।' बिहारीलाल के मुख पर क्या असर होता है, यह मालूम करने के लिए जुगलकिशोर ने उनकी तरफ़ देखा। उसे ऐसा लगा कि शान्तागौरी के विषय का उल्लेख उन्हें अच्छा नहीं लगा।

'उसका नाम लेना आपको अच्छा नहीं लगा। कुछ ऐसा भाव आप दर्शा रहे हैं।' जुगलकिशोर ने बिहारीलाल के मुख का भाव समझकर ज़्यादा गप मारी। बिहारीलाल के मुख पर ज़रा व्यग्रता दिखलाई दी।

'चाहे जिसका नाम लें; मुझे डराकर पैसे ठगने आये हो, ठीक है न?' बिहारीलाल ने पूछा। पर उनके मुख पर गुस्सा न था।

'मुझे यह काम नहीं आता, ऐसा तो नहीं है; पर आप जैसों से दूसरी तरह से भी पैसा मिल सकता है। पर मुझे अभी उसकी ज़रूरत नहीं। मैं तो एक बात कहने आया हूँ। मज़दूरों के असन्तोष का मुख्य कारण आप जानते हैं?'

'मज़दूरों में असन्तोष फैलाया गया है।'

'असन्तोष तो एक ऐसी स्थिति है कि जितना उसे फैलना होता है, उतना फैलता ही है। भला असन्तोष बनावटी भी हो सकता है?'

'ठीक है, पर इसके लिए कोई कारण होना चाहिये न? वेतन थोड़ा मिलता हो, काम अधिक लिया जाता हो या कोई और असह्य बात हुई हो। मुझे सदा मज़दूरों के प्रति सहानुभूति ही रहती है।'

'साहब, यह मैं जानता हूँ। फिर भी आपकी मिल में असन्तोष क्यों है? निचला वर्ग तो मिट्टी के पुतले की तरह है। उसे जो भी आकार दिया जाय, उसी को वह

स्वीकार कर लेता है। खास कारण दूसरा ही है और उसी के लिए मुझे शान्तागौरी ने भेजा है।'

'तो कह डालिये।'

'शान्तागौरी के लड़के को आप जानते हैं न ?'

'उनका एक लड़का है, इतना ही जानता हूँ। मज़दूरों को वह खूब भड़काता है, यह भी मैं जानता हूँ।'

'इतना ही बस है। आपके लड़की है, यह शान्तागौरी भी जानती हैं। दोनों अविवाहित हैं। मनोहर तीव्र बुद्धिशाली है। केवल उसमें अभी संयम का अभाव है। इन दोनों का विवाह…'

'शान्तागौरी से जाकर कहिये कि लड़के का मुख उसके पिता जैसा है या माँ की तरह; यह मुझे कहलवाये, तब मैं कुछ विचार करूँगा। अब आप जा सकते हैं। मुझे ज़रूरी काम है।' कहकर बिहारीलाल उठ गये।

जुगलकिशोर मकान के बाहर आया। धारणा किये बिना उसे कई बातों का पता चल गया। वह हँसा। अभी उसे पूरी समझ नहीं पड़ी थी। तथापि उसे अपनी सम्भावना की पुष्टि करती एक विशेष बात मिली कि अच्छी-से-अच्छी मूर्तियाँ भी मिट्टी और पत्थर की ही होती हैं। एक कवि के शान्तागौरी के प्रति उद्‌गार उसके ध्यान में आये, इसलिए फिर मुस्कराकर वह आगे बढ़ा।

बगीचे में एक तरफ़ रमेश और कुसुम कुछ लिखने बैठे थे। सारी सृष्टि-क्रम की रूप-रेखा उनकी आँखों के सामने खड़ी हो गई थी।

'इन्हीं का जोड़ा और इन्हीं का संसर्ग! स्त्री और पुरुष—महल में भी यही, घर में भी यही, और झोंपड़ी में भी यही! इनके ऊपर स्तर-पर-स्तर रचे गये; विवाह, गृह, कुटुम्ब, भवन और जनता की बड़ी इमारतें रची गईं; साहित्य, संगीत और कला के अलंकारों से जगमगाहट बढ़ी, किन्तु इस सारी इमारत के नीचे पुरुष और स्त्री का ही सम्बन्ध है। इसे लग्न कहो, विवाह कहो, व्यभिचार कहो या दुराचार कहो! पर सबकी नींव में पशुता है। यह तो ठीक ही है। पाप और पुण्य की कल्पनाएँ भी इन्हीं में हैं। मानव को जो अनुकूल लगा वह पुण्य, प्रतिकूल लगा वह पाप! विवाह …य, व्यभिचार पापमय; किन्तु क्या विवाह में व्यभिचार नहीं होता? पशुता के

लिए अधिक से अधिक स्वतन्त्रता और अधिकार जिस सम्बन्ध में मिलता है, उस सम्बन्ध का नाम ही विवाह है ?' इन विचारों के बीच वह आगे बढ़ा।

उसने विचार करके छोड़ दिये थे ; उसने अभिप्राय भी निश्चित कर छोड़े थे। केवल अपनी दलीलों का समर्थन मिलने से वह प्रसन्न होता था। कलाकार की दृष्टि से पाप देखते हुए, और गुज़ारे के साधन, दूसरे धन्धों की तरह पाप को भी धन्धा समझनेवाला वह शौकीन मन में ही बोल उठा—सभी क्यों भूल करते हैं ? मनुष्य पशु है ; यह बात जितनी भूलते हैं, उतना ही रास्ता भूलते हैं।

उसने दूर से जगदीश को जाते देखा। वह तेज़ी से उसके पास जाने लगा। उसके मन में इस समय यही विचार उठ रहे थे : 'यह मनुष्य पशु है!'

(१६)

'मनुष्य देवता तो होता नहीं ?' जगदीश के हृदय में प्रश्न उठा। समस्त समाज और समस्त मानव-जाति के घोर अपराधों को जड़-मूल से निकाल फेकने की वृत्ति उसमें अभी ताज़ी ही थी। अपने पर हुए असह्य अन्यायों का बदला उसे उनके विरुद्ध कर रहा था। परन्तु तेज़ बुखार में उसने ऐसा विचार करना रोका। लगभग सात दिन तक वह बिस्तर से लगा रहा। इस बीच वह शासन लौटा देने, उच्चाधिकारियों के कत्ल करने के षड्यन्त्र, धनियों को लूटने और घमंडियों को फाँसी पर चढ़ा देने के कई ख़्याल कर चुका था। किन्तु उसका शरीर ही उसके वश में न था। उसकी निर्बलता ने भी उसके हृदय को व्याकुल कर दिया था। उसकी परवशता ने उसे लाचार बना दिया था।

एक दिन वह सो रहा था। उसकी आँखें झँपी हुई थीं। कोकिला धीरे-धीरे उसके फीके मुख की तरफ़ देखती हुई उसको हवा कर रही थी। पंखा ऐसा नहीं था, जिसे पंखा कहा जा सके। केवल साड़ी का एक किनारा पंखे का काम दे रहा था। उससे अच्छी हवा होती थी और मक्खियाँ भी उड़ जाती थीं।

राधा घर का काम-काज करती थी। जगदीश के पास ही कोकिला बैठी रह सके, ऐसे काम उसने सँभाल लिये थे। काम से फ़ुरसत मिलने पर वह कोकिला के पास आ बैठी। पति की सार-सम्हाल में कोकिला को खाने-पीने की कम ही ज़रूरत मालूम होती थी। राधा ने कहा—भाभी! अब तुम ज़रा सुस्ता लो, थक गई होगी। जगदीश के साथ बहिन का रिश्ता स्थापित होने के बाद कोकिला के साथ राधा का

ननद के तौर पर सम्बन्ध होने का हो ठहरा। राधा के इस सम्बोधन को लेकर कोकिला ने कभी इसका विरोध नहीं किया था। वर्तमान युग को 'भाभी' शब्द अच्छा लगे या न लगे, किन्तु कुटुम्ब-जीवन को अत्यन्त ललित, भावमय और मनोरंजक भावना भाभी-ननद के विशुद्ध सम्बन्ध में ही अब तक पाई जाती है।

'बैठे-बैठे भला मुझे कोई थकान होती है ! मेहनत तो तुम करती हो !' कोकिला ने कहा।

राधा को कोकिला के प्रति ऐसा प्रेम हुआ मानो अपनी सगी भौजाई ही हो।

'अच्छा बहिन, पति की सेवा भला बिना सौभाग्य के मिलती है ?' राधा ने साधारण तौर पर कहा। किन्तु उसमें छिपा विशाल अर्थ एकाएक प्रकट हो गया। उसका पति तो जेल में था। उसे छूटा हुआ देखने वह बार-बार शहर में दौड़ी हुई आती थी ; पर अभी तक उसका पता नहीं लगा था। कैद में रहने के कारण राधा अपने द्वारा उसको कोई सेवा न कर सकी। इसका उसे बड़ा खयाल आया ; और उसने एक दीर्घ साँस ली।

कोकिला ने राधा के उदास मुख की तरफ़ देखा। मनुष्य की आँखें हँसने को रची गई हैं, या रोने को ? राधा की आँखों में आँसू उमड़ आये। इस ग्रामीण-हृदय में कितनी वेदना होगी ?

'राधा बहिन, यह क्या ?'

'भाभी, मुझे तो तुम्हारे घर में सुख मिला ; पर उनके दिन कैदखाने के जंगले गिनते-गिनते कैसे कटते होंगे ? उनकी तबीयत खराब होती होगी या बुखार आता होगा या सिर दुखता होगा तो उन्हें कौन पूछता होगा।' आँसू पोंछते-पोंछते उसने एक सिसकी भरी। कोकिला की आँखों में भी आँसू आ गये। क़सूर करनेवाले क सज़ा भले ही हो; पर उसकी पत्नी को उससे अलग रखकर, उसे क्यों सज़ा दी जाती है, यह कोकिला की समझ में नहीं आया।

बहुत धीरे-धीरे होती बातचीत जगदीश आँखें मूँदे सुन रहा था। उससे रहा न गया। उसने आँखें खोलकर राधा के सामने देखा। राधा ज़रा शरमाई और पछताई। इस प्रकार बातचीत कर, आराम करते जगदीश को जगाने के लिए उसने अपने को दोषी समझा।

जगदीश ने एकाएक पूछा—राधा बहिन, तुम्हारे पति का क्या नाम है ?

राधा शर्माकर सकुचा गई। उसका पति क़सूरवार जो था। और कैद भोग रहा था। इसलिए राधा को उसके नाम लेने की कल्पना ने मुग्ध बना दिया। उसने आँखें नीची कर लीं और वह पैर का अँगूठा हिलाने लगी।

'तुम यह क्यों पूछते हो? क्या यह यों बता देगी?' कोकिला ने जगदीश की व्यवहार-शून्यता पर हँसते-हँसते कहा।

'अरे हाँ, यह तो मैं भूल ही गया, पर मैं उन्हें कैसे खोज सकूँगा?' जगदीश ने पूछा।

'तो क्या तुम्हें ऐसी हालत में उठना है? यह कैसे हो सकता है? उन्हें तो मैं तलाश कर लूँगी।' राधा ने कहा।

'अब दो-तीन दिन में मुझे आराम हो जायगा और मैं चलने-फिरने के लायक होते ही खुद जाकर उन्हें तलाश कर आऊँगा।' जगदीश अपनी अस्वस्थता भूल गया। संसार से वैर करना भूलकर वह इस ग्रामीणा के पति की खबर पाने के लिए आतुर हो उठा।

'यदि विजया बहिन से कहलाया जाय तो वह तलाश न करा देंगी?' कोकिला ने तीसरा मार्ग सुझाया।

'ऐसी क्या ज़रूरत है? तीसरे दिन में ज़रूर बाहर घूम सकूँगा। उनके छूटने की खबर तुम्हें ठीक-ठीक नहीं मिली?' जगदीश ने पूछा।

'उनका एक पत्र आया था। पर उसमें लिखे हुए छूटने के महीने को मैं भूल गई। वे किस महीने में छूटेंगे इसका ख्याल नहीं रहा; और उतावली में यहाँ दौड़ आई। जेलखाने जाकर तलाश किया, पर मुझे कौन ठीक-ठीक बतलाता? सिर्फ इतना पता चला कि अभी उनके छूटने में कुछ देर है।' राधा ने कहा।

आज छूटेंगे, कल छूटेंगे, इसी आशा में राधा ने रोज़ जेलखाने के बाहर जाकर बैठना शुरू किया था। इसी बीच खर्च खतम हो गया। वह धर्मशाला में रात को पड़ी रहती, पर वहाँ से भी उसे निकाल दिया गया, क्योंकि वहाँ के रखवाले को वह खुश न कर सकी थी, जान-पहचान बिना उसे और कहाँ आश्रय मिलता? वापस जाने को पैसे भी नहीं थे और तबियत भी नहीं होती थी। उसका पति कैद से छूटने को था, इसलिए वह उससे जेलखाने के दरवाजे पर ही मिलने को आतुर हो रही थी। ग्रामीण स्त्री-पुरुषों में शिष्टाचार का अभाव होता है, किन्तु इस कारण उनमें [illegible] न नहीं

होता होगा, यह भूल है। शिष्टता की शोभा से रहित प्रेम शायद अधिक सच्चा और अधिक तीव्र होता है। आखिर ऐसी स्थिति में वह आ पहुँची कि उसे घर-घर भटकना पड़ा। किसी के यहाँ काम करने पर उसे खुराक मिलती थी, पर अज्ञात स्त्री को काम देते हुए सब डरते थे। फिर वह युवा और सुन्दर थी। अपने ही पतियों पर अविश्वास के कारण स्त्रियाँ भी उससे अपने यहाँ काम करवाने में बहुत डरती थीं। रास्ते आते-जाते पुरुष अपनी नज़र ठहराने का स्थान खोज ही निकालते हैं। जहाँ रूप होता है, वहाँ पुरुष की दृष्टि जाती है। स्त्री में रूप देखकर पुरुषों को उनका पक्षपात होता है। लोगों का ध्यान उसकी तरफ़ आकर्षित हुए बिना नहीं रहता। उसके साथ बात करने, उसे भीख देने और उसका मज़ाक करने का सब प्रयत्न करने लगे। अच्छे और बुरे मनुष्य में एक बड़ा अन्तर होता है; बुरे मनुष्य खुले तौर पर और भले छिपे तौर पर अपना पशु-स्वभाव दिखलाते हैं। सभी मनुष्य ऐसा नहीं करते। लुच्चे आदमियों को हर समय और अच्छे आदमियों की कोई न देखता हो उस समय की दृष्टि राधा को परेशान करने लगी। ऐसे लोगों से वह इतनी दुखी हो गई थी कि उसे घूमना-फिरना कठिन हो गया, पर एक तो भूख दूसरे बालक की समस्या और उधर समाज का अत्याचार—इन दोनों के बीच परेशान अबला, किस समय, किस रास्ते पर भटक जाय, यह कौन कह सकता था? पुरुष की पशुता में तो वह सम्मिलित हो जाय, पर जेल में पड़े उसके पति का फिर कौन हो?

राधा की सारी बातें जगदीश ने धीरे-धीरे सुनीं। इस समय उसका बुखार घटता जा रहा था। उसकी चलती तो उसी दिन वह तलाश करने निकल पड़ता, किन्तु राधा और कोकिला के आग्रह से उसने ऐसा नहीं किया। दो दिन में वह घर में चलने फिरने लगा और तीसरे दिन तो वह जेलखाने के अधिकारी से मिलने चला गया।

वहाँ उसे पता चला कि राधा का पति दो-चार दिनों में छूट जायगा। मियाद खतम होनेवाली थी और छोड़ देने के लिए उच्चाधिकारी को मंजूरी मिलने के लिए लिखा गया था। उसने जेल-अधिकारी को अपना पता देकर कहा कि इस पते पर वह कैदी को भेज दें।

जेल-अधिकारी को कुछ अचरज हुआ। जगदीश कैदी का सम्बन्धी नहीं मालूम होता था। उसे ऐसा लगा कि छूटनेवाले कैदियों को सहायता देने के लिए कोई

संस्था स्थापित हुई है, उस संस्था में जगदीश काम करता होगा, किन्तु जगदीश ने बताया कि ऐसी कोई संस्था नहीं है।

'आपका इस कैदी के साथ क्या सम्बन्ध है?'

'उसकी पत्नी मेरे यहां आई है।'

'फिर भी उसे आपके यहां भेजना ठीक नहीं। वह तो बहुत नीचे दर्जे का कैदी है।'

'इससे कोई हानि नहीं।'

जेल-अधिकारी को विचार करते छोड़कर जगदीश वहां से घर वापस चला गया। उसने सोचा कि ऐसे खतरनाक और अजीब मनुष्य के प्रति उसकी पत्नी इतना अधिक प्रेम क्यों रखती है? किन्तु दूसरे ही क्षण उसे कोकिला याद आई।

'किसलिए कोकिला मुझ जैसे असफल बेकार पति को चाहती है?' उसने अपने अच्छे गुणों को गिना, तो वे ऐसे नहीं थे जो किसी भी साधारण मनुष्य में न हों। कोकिला जैसी आकर्षक पत्नी उसे न मिली होती तो वह अब तक एक इधर-उधर बुरी नज़र फेंकनेवाला साधारण मनुष्य बन गया होता। इसका उसे क्यों सन्देह हुआ? वह क्रोधी भी था। संसार की किस वस्तु के प्रति उसे क्रोध नहीं होता था। कमाने की अशक्ति उसे खटकने लगी थी। और उसका रूप? कोकिला के सिवा किसी और ने उसकी सुन्दरता की कभी प्रशंसा की हो इसका उसे ख़्याल न आता था। कभी उसकी तरफ़ किसी खास स्त्री ने देखा हो, ऐसी उसकी इच्छा हुई भी होगी तो उसमें सफलता का उसे स्मरण नहीं था। फिर कोकिला उसे क्यों इतना चाहती है?

पर यदि वह अपने पति को न चाहे तो करे भी क्या? पत्नी विवाहिता होने पर और कर ही क्या सकती है? पति-पत्नी के विवाह होने के बाद एक दूसरे से अलग होने का और दूसरा रास्ता ही क्या रहता है! पुरुष अपने कई अधिकारों को लेकर सम्बन्ध-बन्धन को हलका कर सकता है; किन्तु स्त्री और वह भी हिन्दू स्त्री, पति की संकीर्ण मर्यादा के बाहर भला जा सकती है? विवाह स्त्री को कैसी परवशता में छोड़ देता है, इसका वह विचार करने लगा। उसमें न स्त्री हिल सकती है और न चल सकती है।

किन्तु जीवन में यदि ऐसा हो तो असंतोष अवश्य पैदा हो जायगा। उसे अनेक

दुःखों के होने पर भी कभी जीवन से झुँझलाहट नहीं हुई। कोकिला की दृष्टि-मर्यादा में आते ही उसे जीवन की कड़वाहट पिघलती हुई लगती थी। उसके स्मरण मात्र ने उसे कई साहस-पूर्ण भरे कसूर करने से रोका था। राधा भी अपने दोषी पति के लिए इतने दुःख सहने को तैयार हो गई। यह क्यों? कोकिला का स्मरण उसे कसूर करने से बचाता था, तो फिर राधा की उपस्थिति उसके पति को उपयोगी सिद्ध क्यों न हुई?

जगदीश ने सारा हाल तो राधा से पूछ लिया था, पर उसके पति को किसलिए सज़ा दी गई थी, यह उसने कभी न पूछा। किसी भी स्त्री को अपने पति के दोष का बताना महापाप है। यह वह समझता था। जब तक इस बात का पता न चले, तब तक राधा के पति का अपने जीवन में क्या स्थान था, वह कैसे मालूम हो सकता है? चाहे जो हो, पर अपने दोषी पति के लिए इतने दुःख सहनेवाली वह सच्ची पत्नी थी। सत्यता स्वीकार किये विना वह नहीं रह सकता था। मानव-जाति क्रूर और दूषित है, इसका अनुभव जगदीश को था; परन्तु राधा और कोकिला भी तो इसी मानव-जाति में शामिल थी। मनुष्य देवता तो होता नहीं? यह प्रश्न उसके हृदय में उठा।

इसी समय उसके कन्धे पर किसी ने हाथ रखा। उसने पीछे देखा तो जुगलकिशोर था।

'लगभग चारेक दिन हुए होंगे तब मैंने तुम्हारी खबर मँगवाई, पर पता चला कि तुम अस्वस्थ थे। इस समय कैसे बाहर निकले?' जुगलकिशोर ने पूछा।

'अब बुखार उतर गया है।'

'इस समय तुम्हारे मुख पर चिन्ता का भाव है। क्यों इस प्रकार शरीर को कष्ट देते हो?'

'मुझे जेल जाना था।'

'तुम जेल जा चुके! तुममें जेल तक पहुँचने की सामर्थ्य भी है? इसमें बहादुरी की जरूरत है, समझे!' जुगलकिशोर ने कहा।

जगदीश ज़रा हँसा—मुझे वहाँ कोई रख सके, ऐसा तो मालूम नहीं होता।

'वहाँ जाकर क्या कर आये?'

'मुझे एक कैदी तलाश करना था।'

'किसलिए ?

'वह राधा जो मेरे यहाँ है, उसका पति जेल से छूटनेवाला है, उसी के छूटने का निश्चित दिन पूछने गया था।'

'ठीक, यह तो परोपकार है। मालूम होता है, तुमने अब अच्छे आदमियों का साथ करना शुरू कर दिया है।'

'मुझे धीरे-धीरे यह समझ पड़ा कि बाहर घूमनेवाले सफ़ेदपोश मनुष्यों की अपेक्षा कानून द्वारा दोषी माने हुए अधिक अच्छे होंगे।'

'ठीक है। इसमें मूर्खता अधिक है और चतुरता कम। इसलिए वह जल्दी पकड़ में आ सकती है। हम नहीं पकड़े जायँगे।'

'तुम्हें एतराज़ तो इतना ही है न ?'

'तो फिर दूसरा क्या ? यदि गाय दाना खा जाय, तो रखनेवाले की लकड़ी उस पर अपने आप ही पड़ती है।'

जगदीश ने उसकी तरफ़ देखा, पर कोई उत्तर नहीं दिया।

'क्यों बोलते नहीं ? सारी दुनिया इसी प्रकार चलती है। यदि गाय खाते पकड़ी जायगी तो लकड़ी उस पर पड़ेगी। पति पकड़ा जाय तो गाली खायगा ही, यदि उसे पत्नी देख ले तो ? जैसी जिसकी होशियारी हो।'

'तुम तो दार्शनिक हो।' जगदीश ने कहा।

'मैं तो जो सच बात है, वही कह रहा हूँ। तुम यह बात समझते नहीं, इसीलिए असफल रहते हो। एक बार समझ जाओ कि मनुष्य पशु है। उसे इन्द्रिय-सुख चाहिये। जितने परिमाण में तुम संसार को वह दे सकते हो, उतने ही परिमाण में वह तुम्हें मिलेगा।'

'पर शायद इस सुख के लिए मुझमें और तुममें खींचातानी हुई तो ?'

'ठीक, पर मुझे इस एक बात का पता नहीं चलता कि तुम मुझ यह सब क्यों समझाते हो ? मेरे लिए यह तकलीफ क्यों तुम्हें करनी पड़ती है ?'

जुगलकिशोर को यह प्रश्न खटका। पर उसने यह भाव मुख पर नहीं दर्शाया। उसने लापरवाही से हँसकर कहा—इसके दो कारण हो सकते हैं। एक तो तुम्हारे प्रति मेरी कोई सहानुभूति या प्रेम हो, या मेरा तुमसे कोई स्वार्थ हो। ठीक देखने

से दोनों कारण मूल में एक ही हैं। जब तुमसे मेरा कोई स्वार्थ हो तभी तो मुझे तुम्हारे लिए प्रेम होगा ?'

'तो इस समय मैं तुम्हारे स्वार्थ का अच्छा साधन बन सकता हूँ ?'

'हाँ, इसीलिए तो मैं तुम्हारी तरफ आकर्षित होता हूँ।'

'साधन बनते-बनते यदि मैं अपना ही स्वार्थ साध लूँ तो ?'

'इससे मुझे क्या नुकसान ? यह और भी अच्छा। फिर तो मैं और तुम दोनों ही अपने स्वार्थ साध सकेंगे।'

'पर मेरा और तुम्हारा स्वार्थ एक दूसरे से टकरा गया तो ?'

'तो मैं तुरन्त तुम्हें अपने मार्ग से अलग कर दूँगा। तुम यह न सोच सकोगे कि उस समय मुझे तुम पर दया आयेगी।'

जगदीश स्वभाव का लापरवाह था। उसकी आकांक्षाएँ बड़ी नहीं थीं। सीधे-सादे तौर पर वह देश-सेवा करने में प्रवृत्त हुआ था। देश-भक्तों में भी नौकरशाही के सारे गुण-अवगुण पाकर वह धीरे-धीरे उनमें से खिसकने लगा था। देश-सेवा के बहाने के नीचे वैर-भाव और निन्दा-स्तुति की ही हद तक देश-सेवा की प्रवृत्ति ने उसके हृदय में एक प्रकार का विराग उत्पन्न कर दिया था। अब वह स्पष्ट तौर पर केवल अपना किसी तरह भरण-पोषण हो सके, ऐसा रोज़गार खोजनेवाला साधारण मनुष्य बन गया था। अतः उसके हृदय का अभिमान इतना अधिक सुषुप्त नहीं बन गया था कि जुगलकिशोर के ये शब्द उसके पौरुष को दबा दें। दया की तो कभी उसने किसी से अब तक माँग ही नहीं की थी। उसे ऐसा लगा कि जुगलकिशोर उसे रण में सामने आने का निमन्त्रण देता हो। शान्त और पीछे रहनेवाले अनेक मनुष्यों को ऐसे आवाहनों ने आगे बढ़ा दिया है। उसने तुरन्त जुगलकिशोर से कहा—तुम मुझे काम बतलाओ। मैं तुम्हारे साथ आने को तैयार हूँ।

जुगलकिशोर को मानव-प्रकृति का बहुत अनुभव था। जगदीश ने जो एकाएक उसके साथ आने की तैयारी प्रकट की, उसमें उसे अपने शब्द ही कारणरूप मालूम हुए। किसी-किसी का स्वभाव दूसरे की दया नहीं सह सकता। और किसी-किसी के आवाहन नहीं सह सकते। जुगलकिशोर यह समझ गया। वह ज़रा हिचकिचाया। तथापि अब जगदीश की बात स्वीकार करने के सिवा उसे दूसरा कोई चारा नहीं था। उसने कहा—परसों सवेरे तुम सर बिहारीलाल की मिल में आ जाना।

'वहाँ क्या करना है ?' जगदीश ने पूछा। ग। कुसुम

'यह तुम अभी मत पूछो। मैं वहीं तुम्हें बता दूँगा।' ग नहीं

इतना कहकर दोनों अलग-अलग चले गये। जगदीश राधा से-उसके पति को हाल सुनाने को आतुर हो रहा था।

जुगलकिशोर कुछ विचार में पड़ा। वह मनोहर से मिलने जा रहा था। साथ-साथ शान्तागौरी का इतिहास जानने की उसकी इच्छा थी ही। मानव-जाति की पशुता पर संसार का व्यवहार रचा गया है, इस सिद्धान्त पर जीवन का आदर्श बनानेवाले जुगलकिशोर को जगदीश के ये शब्द खटकने लगे, 'मुझे यह बात समझ में नहीं आती कि मेरे लिए तुम्हें यह तकलीफ क्यों करनी पड़ती है ?' क्या कोई स्वार्थ उसे जगदीश की तरफ खींचता था ? जगदीश के बिना भी वह रह सकता था। फिर किसलिए उसने जगदीश को अपने मार्ग में आने के लिए प्रेरित किया ? जगदीश सुखी हो, ऐसी भी कोई आकांक्षा उसके हृदय में नहीं थी। वह किसलिए होती ? उसकी अनुभवी और संयमी बुद्धि ने यह प्रश्न उपस्थित किया—क्या मनुष्य मात्र पशु ही है ?

(१७)

कुसुम को देखने और शान्ता के सूचना देने के बाद मनोहर को ऐसा लगा कि जीवन-रथ में दो पहियों की ज़रूरत है। पुरुष स्त्री के बिना और स्त्री पुरुष के बिना अपूर्ण ही है। बहुत विचार करने पर वह इस निश्चय पर आता, और निश्चय होने के बाद अत्यन्त दिलचस्पी के साथ वह निश्चय के अनुसार वर्ताव करता था। अब तक विवाह न करने की उसने ज़िद पकड़ ली थी। देश-सेवा की धुन में उसे ऐसा लगा कि विवाह उसके जीवन की दिशा बदल देगा; उससे लगन के साथ सेवा न हो सकेगी। इतना ही नहीं, किन्तु दिन पर-दिन वह इस महाकार्य के लिए निरुपयोगी हो जायगा।

उसके मन में यह विश्वास हो गया था कि देश के लिए उसकी सचमुच आवश्यकता है। वह अपने को, इस वर्ग में उतरकर, उसके उद्धार को अवतार लेनेवाला नेता समझता था। उसे कमाने की कोई चिन्ता न थी। उसके पिता ने बहुत-सा धन इकट्ठा किया था। बाल्यावस्था में ही उसके पिता का स्वर्गवास हो गया था किन्तु उसकी चतुर और प्रतिभावान माता ने उसका अच्छी तरह पालन-पोषण किया

से दोनों उसने महत्त्वाकांक्षाएँ उत्पन्न की थीं। साधन-सम्पन्न बालक होने से दूसरे तुम्हारे उसे आसपास घेरे रहा करते थे। स्कूल में विद्यार्थी उसकी बगल में मँडराते। अनेकों को उसके घोड़ा-गाड़ी के साधन आकर्षित करते, किसी को उसकी रविवार की मेहमानी आकर्षित करती, और कइयों को उसकी तरफ से मिलनेवाली सहायता आकर्षित करती, जहाँ एक पुस्तक की ज़रूरत होती वहाँ वह दस पुस्तकें लेकर आता और सबके हृदय में उसके प्रति सम्मान बढ़ जाता था। उसकी बुद्धि तीव्र थी, उसकी माता शिष्टाचारिणी थी। इसलिए उसके बोलने का ढंग और रहन-सहन सबसे भिन्न थे। धीरे-धीरे उसने अपना महत्त्व समझा। और देश-सेवा की तरफ़ झुकती हुई उसकी वृत्ति का यह निश्चय हुआ कि देश में वह एक आवश्यक व्यक्ति है।

उसकी छोटी अवस्था उसे बाधक नहीं बनी, वह तो उसके एक और गुण के रूप में मानी गई। वह सभाओं में बोलता, धनवान् होकर ग़रीबों का पक्ष लेने से उसकी प्रशंसा होती थी। पत्रकारों की वह बहुत सहायता करता था। सभी उसकी उदारता और देश-सेवा की प्रशंसा करते थे। वह सभाएँ कराता और अपने घर पर देश-भक्तों को बुलाता, छोटी-छोटी मण्डलियाँ स्थापित कर वह उन सबमें अपनी प्रधानता स्थापित करता था। उसकी सादगी सफ़ाई से भरी हुई होती थी; उसकी सेवा जग-मगाती थी। कमाने की चिन्ता से ईश्वर ने उसे मुक्त कर दिया था, इसलिए वह देश की प्रवृत्तियों में खूब समय खर्च करता, मानो वह इसी के लिए पैदा हुआ है। यह सब मानकर वह अपने कार्य को अत्यन्त महत्त्वशाली बता सकने को तैयार रहता था।

उसकी धारणाओं में झूठ नहीं थी। संस्कार और संयोग मनुष्य की धारणा को क्यों बनाते हैं, उसका यह सुन्दर उदाहरण पेश करता था। विवाह न करने का उसका निश्चय उसकी धारणाओं का एक भाग था। ब्रह्मचर्य का लाभ, विवाह के कारण मर्यादित बन जानेवाली शक्ति, ग़रीब देश में आबादी बढ़ने से बढ़ती हुई ग़रीबी आदि कई कारणों से वह अपने विवाह के विरुद्ध मत रखता; इतना ही नहीं, किंतु देश-भक्तों के प्रथम धर्म-कर्त्तव्य के तौर पर वह अविवाहित स्थिति को महत्त्व देता था। यदि उसकी चलती तो वह एक सदी तक भारतवासियों के विवाह-संस्कार रोक देता। किन्तु पापी मानव-जाति प्रलय होने पर भी बिना विवाह के रह नहीं सकती; यह वह धीरे-धीरे समझने लगा था। और उसने दूसरों के विवाह के विरुद्ध मत छोड़ दिया था, और वह केवल अपने ही लिए कायम रखा था।

फिर भी विचार न कर सकनेवाला दुराग्रह भी उसने कभी न रखा था। कुसुम को देखकर उसे ऐसा ख्याल हुआ कि विवाह सबको हानिकारक ही है, ऐसा नहीं हो सकता। जिनके पास जायदाद नहीं, कमाने की जिन्हें चिन्ता है, बालकों को शिक्षित बनाने की जिनमें शक्ति नहीं, उन्हें तो विवाह करना ही नहीं चाहिए। किन्तु ऐसी कठिनाइयाँ जिन्हें न हों और वह यदि विवाह को पसन्द करें तो इसका परिणाम अच्छा हो सकता है।

विचारों में मिठास आने पर मनुष्य सहनशील बनता है। सहनशीलता का समावेश होने से विचारों में उदारता आती है, उसमें समता का भाव पैदा होता है और समता का भाव होने पर पहले की अस्वीकृत वस्तु स्वीकृत हो जाती है। यह सबके अनुभव की बात है। बाद में भले ही कोई इसे अनिश्चितता सिद्ध कर दे।

स्वदेशी मोजों में अपना गोरा पैर देखकर मनोहर को गौरवर्ण कुसुम याद आई। हड़तालियों को अनाज बाटने से थके हुए मनोहर ने आज आराम किया था। मिल-व्यवस्थापक प्राणलाल ने उसे समझौते को मिलने के लिए कहलाया था, पर आज वह जा नहीं सकता था। सफल देश-भक्तों को आराम की बड़ी आवश्यकता होती है। ज़रा-सी मेहनत के बाद भी अधिक आराम करना उनका हक़ है और उन्हें आराम लेने देना देश का कर्त्तव्य है। इस आराम के समय केवल उनका शरीर आराम लेता है। उनका मन तो कार्य में ही लगा रहता है। इसी तरह शरीर को आराम देते हुए मनोहर के हृदय में प्रश्न उठा—हड़ताल का कुसुम पर क्या असर हुआ होगा?

स्त्री का और शूरवीर का सम्बन्ध बहुत कोमल होता है। स्त्री के प्रेम का जो विचार नहीं करता, वह वीर नहीं। वीर-विजेता स्त्रियों का वध नहीं करता, न उन पर हाथ उठाता है। वीरत्व का यह नियम सर्वमान्य है। फिर भले ही वह युद्ध-वीर, विचार-वीर या योजना-वीर हो।

'मेरी तरफ़ के मनुष्यों ने कोई ऐसा कार्य तो नहीं किया जो कुसुम को बुरा मालूम हुआ हो?' मनोहर यही विचारने लगा। कुसुम की मोटर पर एक पत्थर फेंकने की वारदात उसके सुनने में आई थी। इससे मनोहर को दुःख हुआ और इस कृत्य के लिए प्रत्यक्ष सहानुभूति प्रकट करने के लिए वह सोच ही रहा था कि इतने में जुगलकिशोर आकर उसके सामने बैठ गया। मनोहर विचारों में इतना व्यस्त था कि उसे जुगलकिशोर के आकर बैठने तक का पता न लगा।

उसने महत्त्वाकांक्षाएँ उत्पन्न की थीं। साधन-सम्पन्न बालक होने से दूसरे उसे आसपास घेरे रहा करते थे। स्कूल में विद्यार्थी उसको बगल में मँडराते। अनेकों को उसके घोड़ा-गाड़ी के साधन आकर्षित करते, किसी को उसकी रविवार की मेहमानी आकर्षित करती, और कइयों को उसकी तरफ से मिलनेवाली सहायता आकर्षित करती, जहाँ एक पुस्तक की ज़रूरत होती वहाँ वह दस पुस्तकें लेकर आता और सबके हृदय में उसके प्रति सम्मान बढ़ जाता था। उसकी बुद्धि तीव्र थी, उसकी माता शिष्टाचारिणी थी। इसलिए उसके बोलने का ढंग और रहन-सहन सबसे भिन्न थे। धीरे-धीरे उसने अपना महत्त्व समझा। और देश-सेवा की तरफ़ झुकती हुई उसकी वृत्ति का यह निश्चय हुआ कि देश में वह एक आवश्यक व्यक्ति है।

उसकी छोटी अवस्था उसे बाधक नहीं बनी, वह तो उसके एक और गुण के रूप में मानी गई। वह सभाओं में बोलता, धनवान् होकर ग़रीबों का पक्ष लेने से उसकी प्रशंसा होती थी। पत्रकारों की वह बहुत सहायता करता था। सभी उसकी उदारता और देश-सेवा की प्रशंसा करते थे। वह सभाएँ कराता और अपने घर पर देश-भक्तों को बुलाता, छोटी-छोटी मण्डलियाँ स्थापित कर वह उन सबमें अपनी प्रधानता स्थापित करता था। उसकी सादगी सफ़ाई से भरी हुई होती थी; उसकी सेवा जग-मगाती थी। कमाने की चिन्ता से ईश्वर ने उसे मुक्त कर दिया था, इसलिए वह देश की प्रवृत्तियों में खूब समय खर्च करता, मानो वह इसी के लिए पैदा हुआ है। यह सब मानकर वह अपने कार्य को अत्यन्त महत्त्वशाली बता सकने को तैयार रहता था।

उसकी धारणाओं में झूठ नहीं थी। संस्कार और संयोग मनुष्य की धारणा को क्यों बनाते हैं, उसका यह सुन्दर उदाहरण पेश करता था। विवाह न करने का उसका निश्चय उसकी धारणाओं का एक भाग था। ब्रह्मचर्य का लाभ, विवाह के कारण मर्यादित बन जानेवाली शक्ति, ग़रीब देश में आबादी बढ़ने से बढ़ती हुई ग़रीबी आदि कई कारणों से वह अपने विवाह के विरुद्ध मत रखता; इतना ही नहीं, किंतु देश-भक्तों के प्रथम धर्म-कर्त्तव्य के तौर पर वह अविवाहित स्थिति को महत्त्व देता था। यदि उसकी चलती तो वह एक सदी तक भारतवासियों के विवाह-संस्कार रोक देता। किन्तु पापी मानव-जाति प्रलय होने पर भी बिना विवाह के रह नहीं सकती; यह वह धीरे-धीरे समझने लगा था। और उसने दूसरों के विवाह के विरुद्ध मत छोड़ दिया था, और वह केवल अपने ही लिए कायम रखा था।

फिर भी विचार न कर सकनेवाला दुराग्रह भी उसने कभी न रखा था। कुसुम को देखकर उसे ऐसा ख्याल हुआ कि विवाह सबको हानिकारक ही है, ऐसा नहीं हो सकता। जिनके पास जायदाद नहीं, कमाने की जिन्हें चिन्ता है, बालकों को शिक्षित बनाने की जिनमें शक्ति नहीं, उन्हें तो विवाह करना ही नहीं चाहिए। किन्तु ऐसी कठिनाइयाँ जिन्हें न हों और वह यदि विवाह को पसन्द करें तो इसका परिणाम अच्छा हो सकता है।

विचारों में मिठास आने पर मनुष्य सहनशील बनता है। सहनशीलता का समावेश होने से विचारों में उदारता आती है, उसमें समता का भाव पैदा होता है और समता का भाव होने पर पहले की अस्वीकृत वस्तु स्वीकृत हो जाती है। यह सबके अनुभव की बात है। बाद में भले ही कोई इसे अनिश्चितता सिद्ध कर दे।

स्वदेशी मोजों में अपना गोरा पैर देखकर मनोहर को गौरवर्ण कुसुम याद आई। हड़तालियों को अनाज बाटने से थके हुए मनोहर ने आज आराम किया था। मिल-व्यवस्थापक प्राणलाल ने उसे समझौते को मिलने के लिए कहलाया था, पर आज वह जा नहीं सकता था। सफल देश-भक्तों को आराम की बड़ी आवश्यकता होती है। ज़रा-सी मेहनत के बाद भी अधिक आराम करना उनका हक़ है और उन्हें आराम लेने देना देश का कर्त्तव्य है। इस आराम के समय केवल उनका शरीर आराम लेता है। उनका मन तो कार्य में ही लगा रहता है। इसी तरह शरीर को आराम देते हुए मनोहर के हृदय में प्रश्न उठा—हड़ताल का कुसुम पर क्या असर हुआ होगा?

स्त्री का और शूरवीर का सम्बन्ध बहुत कोमल होता है। स्त्री के प्रेम का जो विचार नहीं करता, वह वीर नहीं। वीर-विजेता स्त्रियों का वध नहीं करता, न उन पर हाथ उठाता है। वीरत्व का यह नियम सर्वमान्य है। फिर भले ही वह युद्ध-वीर, विचार-वीर या योजना-वीर हो।

'मेरी तरफ़ के मनुष्यों ने कोई ऐसा कार्य तो नहीं किया जो कुसुम को बुरा मालूम हुआ हो?' मनोहर यही विचारने लगा। कुसुम की मोटर पर एक पत्थर फेंकने की वारदात उसके सुनने में आई थी। इससे मनोहर को दुःख हुआ और इस कृत्य के लिए प्रत्यक्ष सहानुभूति प्रकट करने के लिए वह सोच ही रहा था कि इतने में जुगलकिशोर आकर उसके सामने बैठ गया। मनोहर विचारों में इतना व्यस्त था कि उसे जुगलकिशोर के आकर बैठने तक का पता न लगा।

'क्यों, किस विचार में इतने व्यस्त हो ?'

'कुछ नहीं, योंही बैठा हूँ। तुम कहाँ से आये हो ?'

'तुम जहाँ का विचार कर रहे हो, वहीं से आ रहा हूँ।' जुगलकिशोर ने अनुमान लगाकर कहा।

'हं, तुम कुसुम के पास से आ रहे हो ?' अनायास ही मनोहर ने इस तरह सच बात कह दी और विना सोचे ही अपना हृदय जुगलकिशोर के सामने खोल दिया।

'जी हाँ !'

'तो तुम फिर इतनी देर तक वहाँ रुके क्यों ? मुझे सारी बातें बताओ !'

'समय आने पर सभी बातें कह सुनाऊँगा ; परन्तु आपके ही आदमी कुसुम के पिता के विरुद्ध झूठी बातें बाहर प्रकट करते हैं, इससे उन्हें कितना बुरा लगेगा ?'

'ठीक बात है। शान्तिप्रिय सभी बातें सच-सच नहीं छापता। एक-एक बात को वह अलग-अलग रूप देता है।' स्त्रियों का सहयोग राष्ट्रीय वातावरण को पवित्र बना देता है, ऐसी कई विचारकों की धारणा को, इस दोष-दर्शन से मनोहर ने पुष्टि की।

'पर इसका कारण क्या ? यह तुम जानते हो ?'

'नहीं।'

'तो फिर मैं कारण बतलाकर तुम्हें किसी के विरुद्ध बहकाना नहीं चाहता। अब यह बात छोड़ो।' बात कहलाने के लिए रास्ता खोजने की जुगलकिशोर में अच्छी कुशलता थी। इस प्रकार उसने मनोहर की जिज्ञासा को प्रेरित किया।

'नहीं-नहीं, इसका कारण तुम्हें बतलाना ही पड़ेगा।'

'यह आपके लिए खोज निकालना चाहिये। मैं किसलिए किसी की निन्दा करूँ ? मुझे कोई मतलब नहीं।'

'यह जानता हूँ, इसीलिए कइयों के विरोध करने पर भी मैंने तुम्हें समाज में सम्मिलित किया। इतना ही नहीं, किन्तु लालजी सेठ के लिए वोट दिलवाने की बड़ी दौड़-धूप की। सच बात कहने में किसी की निन्दा नहीं है।'

'देखो, मेरा नाम न आये। मेरा तो शान्तिप्रिय भी मित्र है। किन्तु सच बात कहकर लोगों को ग़लतफ़हमी में न डालने की अपनी आदत के कारण मैं कइयों का बुरा बन जाता हूँ।'

'मेरा तुमको विश्वास नहीं ?'

'यह कैसे कहा जा सकता है? परन्तु तुम बहुत भोले और साफ दिल के हो। इसलिए कई बार चालाक लोग इससे लाभ उठा लेते हैं।' उनमें जुगलकिशोर भी इस तरह लाभ उठाता था।

'इसकी तुम चिन्ता न करो!'

'देखो, कुसुम पर तुम्हारा इतना अधिक बुरा असर पड़ा है कि उसने हमारे पत्र के खिलाफ़ अपने पिता के सामने एक अलग पत्र निकालने की तजवीज रखी है।'

'यह बात मैं भी सुन चुका हूँ। हम शान्तिप्रिय को सूचना दे देंगे कि वह अपनी कलम पर क़ाबू रखे।'

'शान्तिप्रिय ऐसा क्यों करेगा? आपने अभी तक ऐसी कोई सूचना नहीं की है? किन्तु यह ठीक-ठीक समझने की बात है।'

'मैं ठीक-ठीक नहीं समझा।'

'शान्तिप्रिय क्यों इतना तीक्ष्ण लिखा करता है?'

'अपने पक्ष को मज़बूत बनाने के लिए?'

'नहीं, आपको कुसुम की दृष्टि में नीचा बनाने के लिए।'

'यह किस तरह? सम्पादक की हैसियत से तो उसी का नाम प्रसिद्ध है न?'

'पर आपकी सहायता के बिना पत्र नहीं चलता, यह सब जानते हैं। आप ही इस पत्र की आत्मा हैं, यह कौन नहीं जानता?'

'फिर?'

'फिर क्या? सम्पादक तो यह कहकर छूट जाता है कि वह अपने मालिक के इच्छानुसार लिखता है।'

'शान्तिप्रिय ऐसा कहता है?'

'ऐसा कहने में उसका स्वार्थ जो है।'

'क्या स्वार्थ?'

'सर बिहारीलाल के पत्र में सम्पादक की जगह मिलने का है।'

'ऐसा?'

'इतना ही नहीं, पर दूसरी एक और चाल भी इसमें है।'

'तुम मुझे चौंका रहे हो। दूसरी क्या चाल है?'

'मैं कहूँगा तो शायद तुम नहीं मानोगे।'

'पता तो चले।'

'सर विहारीलाल की लड़की अब तक क्यों कुँवारी रही, यह आप जानते हैं?'

'यह क्या?' कहीं मेरे साथ तो कुसुम विवाह नहीं करना चाहती। विवाह के विषय में मनोहर के मृदु वने विचारों को ऐसी सूचना मिली।

'उसकी खुशी की वात है। किसी खास कारण का पता नहीं।'

'तुमने ऐसा कहां सुना है? तुम्हें तो विवाह न करने की धुन में ही रहना है, और इसका तुम शान्तिप्रिय को लाभ उठा लेने दे रहे हो!'

'इस प्रकार सर विहारीलाल के पत्र का सम्पादक बनने के लिए यह उनकी लड़की के प्रति वड़ा हल्कापन दिखला रहा है; मुझे इसकी खबर न थी।'

'यहीं तक वात होती तो कुछ नहीं था। यदि कुसुम इसमें अनिच्छा दिखायेगी तो ज़ोर-ज़ुल्म तक से···कुछ नहीं। मैं और अधिक नहीं कहना चाहता।'

'ओ हो! यहां तक वात है? मैं एकदम शान्तिप्रिय और उसके पत्र से अपना सम्बन्ध छोड़ दूँगा। पत्र को दी जानेवाली सहायता भी रोक दूँगा।'

'यह तुम जानो! पर इतना करना कि फिलहाल तीन-चार दिन, रात आठ बजे लगभग नदी के घाट पर घूमने-फिरने का प्रोगाम जारी रखना। तव तुमसे जो मैं कह रहा हूँ, उस पर विश्वास हो जायगा।'

'मैं ऐसा कभी नहीं होने दूँगा। एक युवती पर ज़ोर-ज़ुल्म? मेरे मित्र क्या इतने नीच वन सकते हैं?'

'मनुष्य पैसे के लिए और चाहे जो कर सकता है, पर स्त्री की वात हो तो फिर हो चुका!'

'पर जुगलकिशोर, कुसुम मुझे चाहती है, इस वात का प्रमाण क्या है?' मनोहर को इतनी वातचीत करने के बाद अधिक प्रमाण की ज़रूरत नहीं रही थी। इसलिए कुसुम के विषय की दिलचस्प वातचीत लम्बी करने के लिये उसने पूछा।

'हमने तो विश्वास कर ही लिया है; फिर भी आप न मानते हों तो अपनी मां से पूछ देखना।'

मां के भक्त मनोहर को यह सूचना यथार्थ मालूम हुई। किसी-किसी समय सर विहारीलाल की पुत्री के विषय में मां की सूचनाएँ उसे याद आईं और उस पर से उसने ·स कर लिया कि कुसुम उसको ही चाहती है। कितनी ही धारणाओं को करने में

कठिनाई नहीं होती और वे धारणाएँ बँध जाने के बाद उन्हें व्यवहार करने की उतावली होती है। कुसुम पर किसी के भी ज़ुल्म न करने देने का अपना अधिकार निर्धारित करने की उसके मन में तत्परता हुई। उसके देश-सेवा के कार्य-क्रम में कुसुम बड़े महत्त्व का भाग बन गई थी। वह रोज़ शाम के समय नदी के किनारे घूमने जाने लगा। वह कुसुम पर ज़ुल्म करनेवाले दल को तितर-बितर कर उसे बचानेवाले वीर की तरह अपने को समझने लगा था।

कल्पना जीवन में अजीब रंगों का समावेश करती है।

(१८)

मानव-जाति को विवाह करने की आदत पड़ गई मालूम होती है। जिसमें इस भारत को तो इसका व्यसन ही पड़ गया है। स्त्रियों का तो बिना एक बार विवाह हुए छुटकारा ही नहीं होता। कोई नहीं तो आखिरी कुँए की सरहद या पीपल के साथ ही उसकी शादी कर देते हैं। स्त्रियों के लिए कुमारी रहने का विचार भी नहीं हो सकता; किन्तु हाल में अँग्रेज़ी शिक्षा जैसे-जैसे बढ़ी उसने स्थिर प्रणालियों को डाँवाडोल कर दिया है; पर धीरे-धीरे—अभी कोई प्रकट तौर पर स्वीकार नहीं, कुछ अंश में—स्त्रियाँ भी अविवाहित रहने की शक्यता का स्वप्न देखती मालूम होती हैं। कुसुम को भी यह स्वप्न आता था।

सुसंस्कृत युवती को अपनी योग्यता का बड़ा ख्याल रहता है। यदि अमीर घराने में वह पैदा हुई हो तो उसकी योग्यता एकदम बढ़ जाती है। यदि उसके जिम्मे पिता के घर की व्यवस्था हो तो वह अपने को पितृ-गृह के लिए ही अनिवार्य मानती है; और यह मानना भी स्वाभाविक है। विशेष प्रकार के अभिमान की उसमें ज़रूरत नहीं पड़ती। कुसुम अभिमानिनी न थी। धनी पिता के यहाँ जन्म पाकर उसने उच्च शिक्षा प्राप्त की थी। इसलिए पुरुषों में दिखलाई देती मामूली योग्यता उसकी नज़र में न आती थी। माता की मृत्यु से सर बिहारीलाल की गृह-व्यवस्था कुसुम के हाथ में आ गई थी। इसलिए कभी विवाह करने की आतुरता उसने न बतलाई थी। यदि कोई अधिक सुशिक्षित युवक उसका ध्यान आकर्षित करने का प्रयत्न करता, तब वह सहज विचार में पड़ती थी। पर उससे भी अधिक उच्चकोटि के पुरुष को देखते ही उसका विचार छोड़ देती थी। प्रकट जीवन में सम्मानित कोई युवक, असंख्य धन का स्वामित्व पानेवाला कोई युवक, या उच्च सरकारी नौकरी-प्राप्त सफल युवक कुसुम का

ध्यान खींचता तो कुसुम को अपने पिता की एकान्तिक स्थिति का ख्याल होता; और उदारता से वह अपने विवाह के सम्बन्ध का स्वप्न देखा करती थी। मतलब यह कि गम्भीरता से उसने अपने विवाह के विषय का विचार ही नहीं किया था। उसे किसी का भारी आकर्षण नहीं हुआ। और साधारण बातचीत में वह कुमारी रहकर ही अपना जीवन बिताने का निश्चय प्रकट करती थी।

कोई भी स्त्री या पुरुष भले ही विवाह न करे। वह न करने के कारण भी भले ही बतलाये, पर जो यह कहे कि वह स्वाभाविक आकर्षण से दूर है, तो उसे योगसिद्ध या अमानुषी प्रकृति का मानना चाहिये। देवता भी हृदय की साधना के वश हो जाता है। ऐसे हृदय की साधना के वश होकर अपूर्ण मनुष्य ने जीवन भर का सम्बन्ध बाँधा या नहीं, यह प्रश्न अलग है, पर ऐसा, सहृदया कुसुम ने न सुना होगा, यह कहना उसे अमानुषी कल्पना जैसा है। आखिर कुसुम स्त्री ही तो थी।

वकील सुखपाल को उसने कई बार सभाओं में व्याख्यान देते हुए देखा था। भाषण का ढङ्ग मोहक है। वाणी के मोह-जाल में न फँसा जा सके, यह भी कठिन है। सुखपाल एक आदर्श वक्ता था। कितने ही शब्द, कितने ही वाक्य वह ऐसे प्रभावशाली ढङ्ग से कहता कि उनकी प्रतिध्वनि उसके व्याख्यान के कितने ही दिनों बाद तक सुनाई देती। उसकी कितनी ही मुद्राएँ, उसकी छटा, इशारे और कई अभिनय—शायद ही युवक हृदयों से अलग हो सकते। कई बार कुसुम को यह पुरुष महान् मालूम हुआ था। सर बिहारीलाल के विरुद्ध वह बहुत बोलता, फिर भी कुसुम अपने पिता के आगे उसकी प्रशंसा करती। बिहारीलाल मुस्कराते और कभी-कभी कह जाते कि 'आदमी को जीभ और हृदय वश में रखना चाहिए।'

शान्तिप्रिय को भी कुसुम ने देखा था। बातचीत में वह बड़ा वाचाल था। उसकी वाणी में किसी को भी हास्यास्पद स्थिति में डाल देने की कला थी। उसके पास जानकारी का भंडार था। लोगों की खानगी बातों के विषय में उसके सिवा और किसी को इतनी जानकारी शायद ही होगी। वायसराय के भोज में अमुक स्त्री-पुरुष की बैठक अमुक प्रकार कैसे हुई थी, उसके राजकीय, सामाजिक और निजी कारण उसकी जानकारी से बाहर न रहते थे। गवर्नमेण्ट हाउस में हुए नाच में अमुक स्त्री-पुरुष में जो बातचीत हुई वह, उस बातचीत को विराम-चिह्न सहित वर्णन करके बता सकता था। वह आकर्षक था। 'गर्जना' पत्र की लगाम उसके हाथ में थी और उसके लेख

तलवार को धार की तरह तीक्ष्ण होते थे। ये लेख अटपटे लगने पर भी एके कारण जो बिना ध्यान खींचे न रहते थे। शान्तिप्रिय भी देश-भक्तों में आगे बढ़ा हुआ वाले रथी था। कुसुम के साथ उसका परिचय न था, तथापि उसका नाम सुनते ही वह विचार में अवश्य पड़ती थी। वह कितने हो दिनों से बिहारीलाल के पास आता रहा था और रमेश तथा कुसुम से भी कभी-कभी मिलता था। पक्षपात की तीव्रता में कमी करनेवाला एक स्वतन्त्र पक्ष राष्ट्रीय क्षेत्र में स्थापित हो रहा है, ऐसा उसका विश्वास था और इस पक्ष को स्थूल रूप देने और उसमें दिलचस्पी लेने के लिए वह सर बिहारीलाल से आग्रह भी करता था।

मनोहर का नाम कई बार कुसुम के सुनने में आया था। एक-दो बार उसे कुसुम ने देखा भी था, तथापि उसने कुसुम के मन पर कोई अमिट छाप नहीं बैठाई थी। उम्र के प्रमाण से अधिक गम्भीरता भरा मुख धारण कर सबसे आगे का स्थान ग्रहण करनेवाला यह सुशील और अतिशय स्वच्छ युवक कुसुम को सुहाया नहीं था। हीरा-जड़ित बँगड़ी को जितने महत्त्व से एक स्त्री चाहे जिस बहाने प्रदर्शित करती है, वैसे ही वह अपने गोरे हाथ पर बँधी सुन्दर घड़ी को दर्शाता, टेढ़ी टोपी, मोटा चश्मा और मूँछ-रहित मुख से सबका ध्यान खींचता ही था। किन्तु कुसुम ने इसके प्रति अपना अभिप्राय साफ बता दिया था कि 'यह तो छोकरी जैसा लगता है' और इस अभिप्राय के साथ ही उसके प्रति अधिक विचार व्यक्त करना कुसुम ने स्थगित कर दिया था।

इन तीनों युवकों का कुसुम के प्रति आकर्षण था। वह शिक्षिता थी, सुन्दरी थी और धनवान् सर बिहारीलाल की एकमात्र पुत्री थी। फिर क्यों न किसी का उसके प्रति आकर्षण होता? वह स्वभाव से लज्जाशील थी, पर मौका आने पर वह सतेज भी हो सकती थी। सुखपाल और शान्तिप्रिय उसके साथ मोटर में जा तो सके थे, पर कुसुम पर गहरी छाप लगाने में कोई सफल न हो सका था। मामूली कौतूहल चाहे जिस पुरुष के प्रति उत्पन्न हो सकता है, परिचय और मैत्री के लिए भी कितने ही मनुष्य योग्य बन सकते हैं; किन्तु हृदय-मंथन करनेवाली वृत्तियाँ जागकर समस्त जीवन-समर्पण करने की आकुलता जिसके प्रति प्रकट करें, ऐसा कोई व्यक्ति अभी तक कुसुम को न मिला था।

सर बिहारीलाल यह सब जानते थे। ऐसे सम्बन्ध भी दुनिया में होते हैं, जिनमें पागलपन-भरा मोह उत्पन्न होते हुए भी वह बाधक नहीं होता। शायद अधिकतर

खींचता इस प्रकार के ही होते हैं ; और इसके बदले दुनिया ने कोई खास वि
दार बताया है। इसलिए स्त्री-पुरुष इस सम्बन्ध में सुखी ही रहते होंगे, यह सोच
सर विहारीलाल ने कुसुम को विवाह-सम्बन्धी सूचनाएँ कई बार दी थीं। किन्तु कु
ने इस सम्बन्ध में ज़रा भी उत्साह न बताया।

एक दिन विवाह के सम्बन्ध की एक अंग्रेज़ी पुस्तक सर बिहारीलाल रमेश
पढ़वा रहे थे। उसमें Trial Marriage—विवाह में योग्यता के दाखले का
प्रकरण आया। वह भाग थोड़ा पढ़ने के बाद बिहारीलाल ने रमेश से पूछा—रमे
तुम्हारा विवाह हुआ या नहीं ?

'जी नहीं।' संकोच के साथ रमेश ने उत्तर दिया।

'क्यों ?' खानगी बातों में कम दिलचस्पी लेनेवाले सर बिहारीलाल ने आगे व
बढ़ाई।

'मैं तो साहब, ग़रीब स्थिति का हूँ। ऐसी स्थिति में विवाह करके व
करूँगा ?'

'ग़रीबी में क्या विवाह करके गुज़ारा नहीं हो सकता ?'

'ऐसा तो नहीं कहा जा सकता। मेरे एक मित्र का दृष्टान्त मेरी आँखों के साम
ही है। ग़रीबी होने पर भी उनके जैसा सुखी संसार किसी दूसरे का मेरे देखने
अब तक आया ही नहीं है ; पर इस सुख का आधार तो उनकी पत्नी पर निर्भर है

'उनका क्या नाम है ?'

'मेरे मित्र का नाम जगदीश है। और उनकी पत्नी का नाम कोकिला। दो
ही मेरे पूज्य और आदर्श दम्पति मित्र हैं।'

'राष्ट्रीय हलचल में जिसने अपनी नौकरी छोड़ दी थी, वही जगदीश न ?'

'जी हाँ।'

'क्या यहाँ वह कभी आते हैं ?'

'किसी-किसी दिन ही वह आते हैं और कभी-कभी मैं भी मिलने च
जाता हूँ।'

'थोड़े दिनों में मिल की हड़ताल का फ़ैसला हो जायगा। तुम्हें और प्राणला
को एक पत्र निकालने की इच्छा भी हुई है तो तुम जगदीश से पूछ देखना।
प्राणलाल से जाकर मिलें।'

इन बातों को कुसुम दूर से बैठी-बैठी सुन रही थी। रमेश ग़रीबी के कारण विवाह नहीं करता, इस पर उसका ध्यान गया। ग़रीबी में भी आदर्श सुख भोगनेवाले एक युगल दम्पति की बात भी उसने सुनी। कुछ दिनों से वह रमेश के साथ पहले की अपेक्षा अधिक स्वतन्त्रता से बातचीत करती थी। यह खबर न होने पर भी कि रमेश स्त्रियों की उपस्थिति में शरमाता है, उसके प्रति उसे समानता का भाव पैदा होता जा रहा था। उसने कई बार उसकी विद्वत्ता और शिष्टता की प्रशंसा बिहारीलाल के मुख से सुनी थी। पास ही रहनेवाले इस युवक को कुसुम ने कई बार देखा था। कुसुम ने शायद ही उसे दूसरे युवकों के जैसा समझा हो। शान्तिप्रिय और सुखपाल का विचार आते ही रमेश अच्छे रूप में उसकी कल्पना में आ उपस्थित होता था। कुसुम को अखबार निकालने की इच्छा थी ही। इसकी योजना के लिए वह कई बार रमेश से बातें करती थी। बिहारीलाल ने पत्रसम्बन्धी अपनी अभी कोई सम्मति नहीं दी थी। 'गर्जना' पत्र के लेखों से सभी अकुला रहे थे। मिल-हड़ताल की अर्ध-सत्य खबरें और हाल पढ़कर सच्ची बातें संसार को बतलाने की सबको आवश्यकता मालूम होती थी। शान्तिप्रिय भी न जाने क्यों मध्यम पक्ष का पत्र निकालने का आग्रह करने लगा था। कुसुम ने एक बार शान्तिप्रिय से पूछा भी कि वह उग्र विचारों का होते हुए, इस तरह की सलाह क्यों देता है?

'गर्जना अब उग्र विचारों का पत्र कहाँ रहा है? वह तो मनोहर और सुखपाल की मूर्खता का सूचक पत्र बन गया है।' शान्तिप्रिय ने उत्तर दिया और फिर अधिक ठोस विचार प्रकट करनेवाले किसी दूसरे पत्र को सहयोग देने की अपनी इच्छा स्पष्ट तौर पर उसने प्रकट की थी। यह हाल कुसुम ने बिहारीलाल को भी बताया था।

हड़ताल का समाधान करने के लिए प्राणलाल ने मिल के दफ़्तर में प्रमुख व्यक्तियों की बैठक बुलाई थी। वह दिन कुसुम की वर्षगाँठ का था। अपनी इकलौती पुत्री की वर्षगाँठ के उपलक्ष में प्रतिवर्ष बिहारीलाल मित्रों और परिचितों को एक बड़ा भोज देने के अलावा एक भारी रकम का चेक भी अपनी पुत्री कुसुम को भेंट के तौर पर देते थे। कुसुम ने अबकी सोचा कि ऐसे समय भोज देना व्यर्थ है। रमेश को आमन्त्रण देने की और दूसरी व्यवस्थाओं की सूचनाएँ बिहारीलाल दे चुके थे; और रमेश निमन्त्रण-पत्र भेजने की तैयारियों में लगा हुआ था। कुसुम को इसकी

खबर पड़ी, इसलिए वह रमेश के पास पहुँची और निमन्त्रण-पत्र भेजना बन्द करने का उसने उससे अनुरोध किया।

'साहब की इच्छा तो दावत देने की है।' रमेश ने ज़रा आश्चर्य के साथ कहा।

'पर मुझे यह अच्छा नहीं लगता। जन्म-दिवस ऐसा कहाँ का महाभारत जैसा प्रसंग है जो उस दिन इतना अधिक खर्च किया जाय?' कुसुम ने पूछा।

'आपकी और आपके पिता की दृष्टि में अन्तर पड़ने का ही ठहरा। आपको इसमें महत्त्व नहीं मालूम होता, किन्तु साहब को तो इस दिन से अधिक आनन्द-दायक दिन और कोई हो ही नहीं सकता।'

'पर उस दिन इतने अधिक लोगों को बुलाने का क्या काम? उस दिन जिन्हें सहज आनन्द हो सके, ऐसे भले मित्रों को ही बुलाया जाय तो कैसा?'

'यह विचार तो आपका अच्छा है। साहब से पूछना चाहिये।'

'इसमें पूछने की क्या ज़रूरत है? मैं उनसे कह दूँगी और अभी मैं जिन्हें बतलाऊँ उतने ही मनुष्यों को निमन्त्रित कीजिये।'

रमेश ने कुसुम की तरफ़ देखा। उसे सर बिहारीलाल के ही आदेशों को मानने की आदत थी। इसलिए रमेश को कुसुम की आज्ञा कुछ भार जैसी मालूम हुई। किन्तु कुसुम को देखने पर रमेश को उसके मुख पर स्वामित्व का मद दिखाई नहीं दिया। छोटे-बड़े नौकरों को धमकाती और उन पर अधिकार जमाने को हुक्म करनेवाली, धनाढ्यों की लड़कियों की तरह चढ़ी हुई भौंहोंवाला उसका मुख नहीं था। उसके मुख पर एक तरह की सौम्यता थी। रमेश ने कहा—ठीक, आपकी आज्ञा के अनुसार ही मैं निमन्त्रण भेजूँगा। आप मुझे नाम बतायें।

'आज्ञा' शब्द कुसुम-जैसी शिक्षिता युवती को खटका। उसने कहा—नहीं, नहीं, मैं आज्ञा करती हूँ, ऐसा न सोचिए। मैं तो सिर्फ आपकी सलाह ही मांगती हूँ। आप किस-किसको बुला रहे हैं?

रमेश को यह नम्रता उचित मालूम हुई। वह ज़रा शरमाया। ऐसी नेक युवती को उसने अपने साथ हुई पहली लम्बी बातचीत में ही लज्जित किया; यह उसे अपनी भूल मालूम हुई। उसने अत्यन्त समान-भाव और नम्रतापूर्वक सर बिहारीलाल के मित्रों, कुसुम के मित्रों और सहेलियों के तथा ऐसे मिलनेवाले सम्माननीय पुरुषों और महिलाओं के नाम बतलाये जिनको बिना बुलाये रहा नहीं जा सकता था। कुसुम

ने उनमें से लगभग पन्द्रह स्त्री-पुरुषों के नाम पसन्द किये। रमेश ने खास तौर से सुखपाल, शान्तिप्रिय और मनोहर के नाम पसन्द किये, कुसुम ने भी उन्हें पसन्द किया। हड़ताल का निवटारा करने की बैठक में इन लोगों की ज़रूरत थी ही। इसलिए आतिथ्य के बाद तत्काल बैठक का प्रबन्ध हो सकता था। कुसुम ने यह योजना पसन्द की और रमेश से पूछा—अब अपने कुछ मित्रों के नाम बतलाइये। उन्हें बुलायेंगे।

'मेरे मित्रों को?' कुसुम की वर्षगांठ से मेरे मित्रों का क्या सम्बन्ध? यह न समझकर आश्चर्यपूर्वक रमेश ने पूछा।

'हाँ, इसमें क्या? आप क्या घर के नहीं हैं?'

'कुसुम वहिन, मेरे अधिक मित्र ही नहीं हैं।'

'आप उस दिन पिताजी से अपने एक मित्र का हाल कह रहे थे। यदि उन्हें और उनकी पत्नी को बुलाया जाय तो क्या वे न आयेंगे?'

'हाँ, हाँ, जगदीश की बात करती हैं? वह तो बड़ा विचित्र प्राणी है; आये भी या नहीं भी आये, उसका क्या ठिकाना!'

'पर हमें अखबार निकालना है और पिताजी ने भी उन्हें बुलाने के लिए कहा था। उन्हें बुलाया जाय तो फिर इस प्रसंग को भी उनके साथ मिलकर योजना सोची जा सकेगी।'

'ठीक, मैं उनसे कहूँगा।' जगदीश को बुलाने में उसी का स्वार्थ था। इसलिए रमेश ने इस बात का खास ख़्याल रखा।

कुसुम का इस विनम्र युवक के साथ आगे बातचीत बढ़ाने मन हुआ। कुसुम उसके पास आई तब उसने खड़े होकर उसका सम्मान किया था। बातचीत के दरमियान मर्यादा समझकर सभ्यता-पूर्वक उसे उत्तर दिये थे। युवक और युवती जब अकेले मिलते हैं, उस समय युवक की आँखों में जो चंचलता प्रदर्शित होती है, उसका रमेश की आँखों में अभाव था। यदि कुसुम के सामने देखे विना न बनता तो वह अपनी आँखें नीची कर लेता या दूसरी तरफ़ फेर लेता। बातचीत में उसने ऐसी हँसनेवाली कोई बात नहीं कही जो अपनी हीनता का परिचय देती। कुसुम को यह अच्छा लगा। उसने रमेश से कहा—मुझे अभी आपसे एक बात पूछनी है।

'जी हाँ, पूछिये।' रमेश के हृदय में यह विचार हुआ कि कुसुम कौन जाने क्या पूछेगी ?

'मुझे अपने प्रत्येक जन्म-दिवस पर पिताजी एक अच्छी रकम देते हैं।'

'जी हाँ, इस बार भी देनेवाले हैं।'

'क्या देनेवाले हैं वह आप जानते हैं ?'

'मुझे चेक लिखने के लिए कहा गया है। पिछले वर्षों की अपेक्षा इस बार अधिक रकम लिखी है।'

'इस बड़ी रकम का मैं क्या उपयोग करूँ ?'

'आपको जो अच्छा मालूम हो वह करें। आपको भेंट में दी गई इस रकम से बैंक और मिल में और भी अधिक ब्याज के रूप में रकम बढ़ जायगी।'

'मुझे अब यह रकम बढ़ानी नहीं है। पहले मेरा विाचर इससे एक पत्र निकालने का था, किन्तु उस सम्बन्ध में तो पिताजी खुद ही विचार कर रहे हैं। इसलिए अब इस रकम का क्या उपयोग किया जाय ?'

'हम हड़ताल की स्थिति में हैं, यदि इसका अपनी तरफ़ से मिल-मज़दूरों के लिए उपयोग हो तो बहुत अच्छा रहेगा। इससे हड़ताल का भी जल्दी ही निबटारा हो जायगा।'

'मुझे यह विचार बहुत पसन्द है। मेरी तरफ़ से यह रकम मज़दूरों की उन्नति के लिए बख्शीश के तौर पर दी जा रही है, क्या आप ऐसा प्रकट कर देंगे ?'

'क्यों नहीं ? आप एक पत्र में इसे लिख रखियेगा। मैं ठीक समय पर उसे प्रकट कर दूँगा।'

कुसुम उठी और कमरे से बाहर निकली। रमेश थोड़ी दूर तक उसे पहुँचाने गया। दूर पर दो-तीन नौकर बैठे थे। रमेश फिर रुक गया। कुसुम ने रमेश के सामने देखा और फिर उसने हँसते हुए पूछा—रमेश भाई, इतने अधिक नम्र क्यों हो ?

'मुझे यह समझना चाहिये न, कि मैं किसके साथ बातचीत कर रहा हूँ ?' दूसरा उत्तर न सूझने पर रमेश ने कहा।

'आप किसके साथ बातचीत कर रहे हैं ?' कुसुम ने पूछा। युवकों को छेड़ने में सभ्य युवतियों को भी कभी-कभी अधिकतर आनन्द आता है।

'मैं साहब की लड़की के साथ बातें करता हूँ।' रमेश ने उत्तर दिया।

'तुम साहब की लड़की को पहचानते हो! कुसुम को नहीं, ठीक है न?' कुसुम ने पूछा।

उत्तर खोजते हुए रमेश ने उत्तर दिया—आप तो बड़ी उदार हैं। पर मुझे तो ख़्याल रखना ही चाहिए।

'कैसा ख़्याल?'

'कहाँ मैं और कहाँ आप? भला, मुझसे मैत्री का दावा स्वप्न में भी किया जा सकता है?'

'आप ग़रीब हैं, यह मतलब है आपका? यदि आप पैसेवाले हों और मैं आपकी तरह ग़रीब होऊँ तो?' हँसकर कुसुम ने पूछा। इस हास्य में हृदय खींचनेवाला जादू रमेश ने पहली ही बार देखा। उत्तर न देकर वह शान्त ही रहा। यह मौन कुसुम को निःश्वास की तरह लगा।

'रमेश, आप इस तरह अपने को ग़रीब न समझा करें। मुझे यह पसन्द नहीं।' इतना कहकर शीघ्रता से मुँह फेरकर कुसुम चली गई। मानो कुछ समझ न पड़ा हो इस तरह रमेश चकित होकर खड़ा रह गया।

(१९)

मानो जाग्रत-स्वप्न देखा हो यह ख़्याल कर उत्तेजित कल्पना को हृदय में दाबकर और महत्त्वपूर्ण व्यावहारिक काम करने के लिए रमेश तैयार हुआ। उसने कुसुम की इच्छा के अनुसार कुछ निमन्त्रण-पत्र तैयार किये। सर बिहारीलाल ने कुसुम के इच्छानुसार ही काम करना प्रकट किया। अतएव निमन्त्रण-पत्र रवाना करके रमेश जगदीश से मिलने के इरादे से बाहर निकला।

कई दिनों से वह जगदीश और कोकिला से नहीं मिला था। जगदीश की अस्वस्थता के समय वह एकाध बार हो आया था; किन्तु उससे एकान्त में बैठकर बातचीत न हो सकी थी। जगदीश को सहायता करने की उसको बड़ी इच्छा थी। एक-दो बार उसने आर्थिक सहायता भी करना चाहा था, पर जगदीश और कोकिला ने उसकी सहायता स्वीकार नहीं की थी।

'तुमने कुछ पैसा इकट्ठा नहीं कर रखा है, यह मैं जानता हूँ। इस समय तुम्हें कहीं से आमदनी भी नहीं है। फिर तुम्हें यह रकम लेने में क्या आपत्ति है?' रमेश जगदीश को समझाता।

'देखो रमेश, पैसे प्राप्त करने के कई उपाय अभी मैंने आज़माये नहीं हैं। वे उपाय आज़माने के बाद भी यदि मुझे पैसे प्राप्त न होंगे तो फिर तुम हो ही !' जगदीश उत्तर देता।

'हाँ ठीक है, रमेश भाई को तो अपने अन्तिम साधन के रूप में रहने दो। जब कहीं भी ठिकाना न रहेगा, तब हम रमेश भाई के घर ही जायँगे।' कोकिला जगदीश के मत का समर्थन करती। स्वाभिमानी दम्पति आर्थिक सहायता नहीं ही स्वीकार करेंगे, ऐसा विश्वास होने पर रमेश वापस फिरता; तथापि उसे जगदीश की स्थिति के प्रति सहानुभूति तो रहती ही। एक नया पत्र निकलवाकर उसमें जगदीश को स्थान दिलवाने की उसकी तीव्र इच्छा थी। बिहारीलाल ने उसे याद किया था और कुसुम ने तो उसे आमन्त्रित भी किया था। इसलिए रमेश की, बिहारीलाल से उसका परिचय करवाने की बड़ी इच्छा हुई। विचित्र प्रकृति का जगदीश केवल निमन्त्रण मिलने पर ही आ जाय, ऐसा न था। इसलिए रमेश खुद उससे कहने गया था।

जगदीश और रमेश के बीच गाढ़ मैत्री का सम्बन्ध था। जगदीश रमेश से उम्र में बड़ा था, तथापि दोनों के बीच भाई-भाई जैसा सम्बन्ध जारी रहा था। रमेश कालेज में जगदीश से दो वर्ष पीछे था और उसे जगदीश की तरफ़ से अपनी दीन अवस्था के कारण सहायता भी मिलती थी। सर बिहारीलाल के प्रथम सहायक को जगदीश पहचानता था; और जगदीश ने उसके बाद रमेश की भलाई करने का आग्रह भी किया था। ऐसी सहायता मामूली बात है; किन्तु जगदीश ने रमेश पर बड़ी गहरी छाप डाली थी। जगदीश की विचित्रता, उसका अभिमानी और स्वतंत्र मिज़ाज, समाज के नियमों के प्रति बेदरकारी और साहस का शौक़ रमेश को बड़े आकर्षक लगते थे; पर इन सबमें जगदीश और कोकिला के आपस का प्रेम उसे बहुत ही अनुपम मालूम होता था। जगदीश जैसे बेदरकार और उच्छृङ्खल युवक को कोकिला किसी अद्भुत पाश से बाँध रही है, इसे वह प्रसन्न हो आनन्द में देख सकता था। जगदीश ने कई नौकरियाँ छोड़ीं, उससे रमेश को कोई आश्चर्य नहीं हुआ, पर अब भी उसे उचित सहायता देने की रमेश में वृत्ति जाग्रत थी और मध्यम पक्ष का समर्थन करनेवाले पत्र के लिए उसकी सहायता पाने के लिए रमेश उत्सुक हुआ। उसने जगदीश के घर पहुँचकर उससे सर बिहारीलाल का निमन्त्रण स्वीकार करने के लिए आग्रह किया। इससे जगदीश को आश्चर्य-सा लगा।

'अरे भले आदमी ! मेरा और सर विहारीलाल का कैसा सम्बन्ध ? मैं उनका निमन्त्रण कैसे स्वीकार कर सकता हूँ ? तुम वहाँ हो, इसलिए एक निमन्त्रण-पत्र मुझे दे रहे हो ; क्योंकि तुम्हारा मेरा सम्बन्ध है। बराबरी और मित्रता है।'

'चाहे जो हो, तुम्हें वहाँ पहुँचना है। तुमसे सर विहारीलाल को काम है।' रमेश ने कहा।

'मुझसे किसी का काम होगा, यह मैं नही मानता। विना काम जाकर मैं मूर्ख न बनूँगा।' जगदीश बोला।

'मूर्ख बनने पर भी मुझे तुमको ले जाना है। फिर क्या ?'

'अपने सर साहब से क्या मुझे नौकरी दिलवानी है ?' जगदीश ने मज़ाक में पूछा।

'तुममें नौकरी करने का ढंग ही कहाँ है ? कोकिला भाभी ! जो जगदीश मेरे कहने पर यहाँ नहीं आयेगा और यदि इसकी ज़िद के कारण ऐसा ही हुआ तो मैं तुम्हारे घर में कभी पैर न रखूँगा।' रमेश ने वाद-विवाद में कोकिला की सहायता माँगी और उसने उदारता से वह दी।

'जब रमेश भाई इतना ज़ोर देकर कह रहे हैं तो फिर जाने में क्या ऐतराज़ है ?' कोकिला ने पूछा।

'इसकी इच्छा मुझे ठिकाने लगाने की है, पर इस मूर्ख को पता नहीं कि मैं ठिकाने लगूँ, ऐसा आदमी नहीं।' जगदीश ने कहा।

'रमेश भाई को जब पूरा विश्वास हो तो फिर वे भला प्रयत्न न करें ?' कोकिला बोली।

'मुझे ऐसे बड़े आदमियों के यहाँ जाकर झुकना पसन्द नहीं।'

'अरे भाई, तुमसे कौन कहता है कि तुम दण्डवत् करना। तुम्हारी इच्छा होगी तो सर बिहारीलाल से ही पहले प्रणाम करवा दूँगा।' रमेश ने कहा।

'देखो, रमेश भाई तो अब एक बड़े जमींदार बन गये हैं। इन्हें इनकार करना ठीक नहीं।' कोकिला ने कहा।

'अरे हाँ, रमेश ! यह क्या तमाशा तुमने खड़ा किया है ? मुझसे जुगलकिशोर ने या और किसी ने ठीक ही कहा था कि सर बिहारीलाल और तुमने कोई ज़मीन रखी है।'

'तुम्हें सब तमाशा ही लगता है, पर मुझे तो कामना है और सुखी होना है। इसलिए कोई रोज़गार तो करना ही है न?' रमेश ने कहा।

'तुमने यह मुझे नहीं बतलाया?' जगदीश ने पूछा।

'तुम्हें बताकर क्या करता? तुम बाद में पूछ बैठते कि कलेक्टर को मेहमानी में कितना दिया? हेड क्लर्क को कितनी क़ीमत की रिस्टवाच घड़ी भेंट में दी?' रमेश ने कहा।

'नहीं-नहीं, यह अब नहीं पूछूँगा। यह सर्वमान्य रूढ़ि अब स्वीकार करके ही चलूँगा। पर इसमें तुम्हे दिलचस्पी भी है?'

'क्यों नहीं? कई अच्छे किसान मिल गये हैं। एक साधु ने हमारी बहुत-सी ज़मीन ले रखी है।'

'भाभी! यह ज़मीन कहाँ पर है?' ज़मीन की बात समझानेवाली राधा ने कोकिला से पूछा।

'यहाँ से बीस-पचीस कोस पर नदी-पार एक ऊजड़ गाँव है, वहाँ यह ज़मीन है।' रमेश ने बतलाया।

'वह कौन-सा गाँव है?' राधा ने और अधिक पूछा।

'उसे लोग ओमकारिया कहते हैं। अभी तो वहाँ आबादी नहीं है।'

आख़िर सबके आग्रह से जगदीश ने सर बिहारीलाल के यहाँ जाना स्वीकार कर लिया। आमन्त्रण के दिन दो-ढाई बजे के लगभग जगदीश सर बिहारीलाल के यहाँ गया। लगभग दस मनुष्य एक सुन्दर बैठकखाने में बैठे थे। वहीं एक कोने में रखा ग्रामोफोन बाजा बज रहा था। मौके के अनुसार इसकी भी थोड़ी-बहुत आवश्यकता समझी गई मालूम होती थी। इकट्ठे हुए लोगों में से कोई अख़बार या मासिक-पत्र पढ़ता और कोई चित्र-संग्रह (Albums) के पृष्ठ पलटता था। रमेश जगदीश का रास्ता देखता बाहर खड़ा था। वह जगदीश को अन्दर लाया और सर बिहारीलाल ने आगे बढ़कर जगदीश से हाथ मिलाया और आमन्त्रण स्वीकार करने के लिए उसका आभार मानकर उसे एक कुर्सी पर बैठने को कहा। सुखपाल, शान्तिप्रिय तथा मनोहर सर बिहारीलाल की आकर्षित करनेवाली शिष्टता देखकर परस्पर आश्चर्य-भरी दृष्टि से एक दूसरे को देखने लगे।

'इसे भी निमन्त्रण दिया गया है क्या ?' वकील सुखपाल से रहा न गया। और इस तरह कहा कि एक-दो मनुष्य सुन सकें।

'क्या यह भी निमन्त्रण के लायक नहीं ? क्या मेरी ही तरह यह भी आया है ?' जुगलकिशोर ने उत्तर में कहा। वह आज निमन्त्रित न होने पर भी मनोहर के साथ बिना बुलाये आया था।

'इसकी Status (प्रतिष्ठा) क्या ?' शान्तिप्रिय ने कहा।

'यह तय करना क्या मेरे-तुम्हारे जैसों के लिए है ?' जुगलकिशोर ने बेफ़िक्री से इस तरह कहा कि सब सुन सकें। सुखपाल और शान्तिप्रिय दोनों चुप रहे।

बाकी मेहमान भी आये और कुसुम भी आकर अन्दर बैठ गई। सबने उसे मुबारकबादी दी। रमेश और जगदीश दूर अकेले बैठे थे। नौकरों ने आकर हर एक व्यक्ति के सामने छोटी-छोटी मेजें रख दीं, और फिर फल, मिठाई तथा नमकीन की रक़ाबियाँ मेज़ों पर रख दीं। कुसुम उठकर रमेश तथा जगदीश के पास पड़ी एक कुर्सी पर बैठ गई और अपने हाथ से चाय के प्याले तैयार करने लगी। प्याले तैयार करते-करते कुसुम ने पूछा—ये आपके मित्र जगदीश भाई ही हैं न ?

'जी हाँ।' रमेश ने उत्तर दिया।

'कुसुम बहिन, मेरा अभिनन्दन रह गया है, वह अब मैं दे रहा हूँ।' जगदीश ने शिष्टता बतलाई।

'आपकी और आपकी पत्नी की प्रशंसा करते रमेश भाई थकते नहीं। इसलिए मैंने भी आपसे परिचय-लाभ करने का यही मौक़ा प्राप्त किया।' कुसुम ने उत्तर दिया।

सुखपाल, शान्तिप्रिय और मनोहर—इनकी दृष्टि इन तीनों पर ही थी। हर एक के मन में इतना तो स्वाभिमान होता ही है कि जिससे किसी भी युवती का ध्यान पहले अपनी ही तरफ आकर्षित हो वह ऐसा सोचता ही है। वे कुछ बातें करते थे। थोड़ी देर में उनकी राष्ट्रीय वातावरण-सम्बन्धी बातें शुरू हुईं। शिक्षित समाज राजनीति या साहित्य के सिवा भला और दूसरी बातें करता है ?

'शासकों की हरामखोरी का तो ठिकाना ही नहीं। अन्दर ही अन्दर एक-दूसरे को लड़ाकर राज्य करना ही उनकी कुटिल नीति है।' एक मनुष्य ने कहा।

'विदेशी लोग भला, इसके सिवा किसी दूसरी नीति से हम पर शासन कर सकते

हैं ? हम जिसे कुटिल नीति कहते हैं, वही उनकी सफल नीति है ।' जुगलकिशोर ने बतलाया ।

'तो फिर ये लोग हम पर उपकार करने का पाखण्ड किसलिए करते हैं ? इन लोगों को साफ़-साफ़ प्रकट करना चाहिये कि हम भारत पर अपने स्वार्थ के लिए राज्य करते हैं ।' शान्तिप्रिय ने अदा के साथ कहा ।

'यह इन लोगों के प्रकट करने तक तुम नहीं समझते ? स्वार्थ के सिवा एक प्रजा दूसरी प्रजा पर राज्य करे, ऐसा इतिहास में कभी हुआ है ? और समझो कि तुम जो कहते हो, उसके अनुसार उन्होंने प्रकट भी किया ; तो तुम करोगे क्या ?' जुगलकिशोर ने पूछा ।

'इससे एक फायदा तो होगा कि कम से-कम साधु के वेश में शैतान तो प्रकट हो जायगा ; और अंग्रेज़ों की प्रामाणिक मित्रता पर विश्वास किये बैठे मध्यम-वर्ग के अनेक लोग वस्तु-स्थिति समझकर हमारे पक्ष में तो मिल जायेंगे ।' वकील सुखपाल ने उत्तर दिया और सर बिहारीलाल की तरफ़ देखा । सर बिहारीलाल ज़रा हँसे और मानो उन्हें लक्ष्य करके सुखपाल बोला हो, यह सोचकर उन्होंने उत्तर दिया—अंग्रेज़ों की प्रामाणिक मित्रता पर विश्वास रखनेवालों में मुझे गिनोगे ही नहीं ।

'साहब, आप ऐसा क्यों कहते हैं ? उनकी सम्माननीय पदवी आपने धारण की ही है ।' एक व्यक्ति ने मित्रता के तौर पर कहा ।

'इसमें नासमझी की बात है ।' बिहारीलाल ने कहा—अंग्रेज़ स्वार्थ के लिए ही राज्य कर रहे हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं ; किन्तु स्वार्थ को अच्छे से अच्छा रूप देने का वे प्रामाणिक प्रयत्न करते हैं, यह तो माने बिना कोई नहीं रह सकता । वे भारत के हित के लिए राज्य करते हैं, अब ऐसी मान्यता उन्होंने बना ली हो तो कोई आश्चर्य नहीं, पर इतना तो सच ही है कि दूसरे विदेशी शासकों की अपेक्षा इनके शासन में भारत का बहुत हित दिखलाई दिया है ।'

'मैं तो कहता हूँ कि अपने देशी राज्यों के शासन की अपेक्षा भारत के ब्रिटिश राज्य में ही अधिक हित हुए हैं ।' एक व्यक्ति बोला ।

'यह किस दृष्टि से आप कहते हैं ?' मनोहर ने पूछा ।

'यह अपनी दृष्टि-वृष्टि की बातें खड़ी न कीजिये ! यों तो फिर एक व्यक्ति गप लगायेगा कि आर्थिक-दृष्टि से भारत चूस लिया गया । दूसरा आदमी यह कहेगा कि

अंग्रेज़ों ने जंगलों को नष्ट कर दिया, इससे बरसात कम हुई और किसान बर्बाद हुए। तीसरा कहेगा कि पुरानी ग्रामव्यवस्था और ग्रामोद्योग अंग्रेज़ों ने ही मिटा डाले। चौथा कहेगा कि देश में दुष्काल बढ़ गया है, लोग भूखों मरते हैं, वह भी अंग्रेज़ों के ही पाप से। यह कहनेवाला तो मूर्ख है ही, पर सुननेवाला भी है।' उस व्यक्ति ने चिढ़कर कहा।

'यही सारी बातें गप न मानिये ; प्रामाणिक आँकड़ों से यह बहुत कुछ साबित हो गया है।' मनोहर ने कहा और फिर उसने आँकड़े बतलाने का भाव बतलाया। उसे इसमें ही अटकाकर वह व्यक्ति बोला—रहने दीजिये अपने प्रामाणिक आँकड़े ! मैं भी अपना पक्ष आँकड़ों से साबित करने के लिए तैयार हूँ। पर सुनेगा कौन ? जैसे-तैसे करके किसी तरह अंग्रेज़ों को दोष देने का आपका काम पूरा हो ही गया है, फिर क्या ?'

'जब तक शिक्षित और समझदार मनुष्य ऐसे विचार रखेंगे तब तक देश का कुछ भी भला नहीं होगा। जब आँकड़े मानने को आप मना करते हैं, तो भला इससे अधिक हठ दूसरा कोई हो सकता है ?' सुखपाल बोला।

'आँकड़ों ही आँकड़ों को तो दुहराते हैं, किन्तु अपने बाप या दादा से पूछकर भी कभी देखा है कि अंग्रेज़ों से लाभ हुआ या हानि ? ठीक-ठीक तो वे बता सकते हैं। आपको तो रेलगाड़ी में बैठकर केवल उनका दोष गिनना आता है।' आवेश में आकर उस व्यक्ति ने कहा। सरकारी पक्षवाला विरोधी पक्षवाले को इतना गुस्सा न दिखा सकता हो, ऐसा नहीं कहा जा सकता। बुद्धिजन्य वाद-विवाद में बुद्धिमान भी मार-पीट करने तक उतर आते हैं।

'ठीक बात है।' जुगलकिशोर ने धैर्य के साथ कहा—मेरे बाप का जन्म सत्तावन के ग़दर के समय हुआ, और मेरे दादा तो जब मैं कालेज में पढ़ता था, तब तक ज़िन्दे रहे। उन्होंने किसी भी दिन अंग्रेज़ी राज्य की प्रशंसा नहीं की। वे तो अधिकतर इनके समय के दुःख ही गिनाते थे। मनुष्य बेफ़िक्री से बैठकर खा-पी नहीं सकता था। लूट-मार का बाज़ार गर्म था। दिन-रात पिंडारी, जाटों आदि की टोलियाँ फिरती रहती थीं। वे लोगों के मुँह में मिर्चों के तोबड़े बांध देते थे। गर्म-गर्म राख से शरीर का चमड़ा सेकते थे। राजा का ठिकाना नहीं था। सूबा बदला जा रहा है, इसलिए यात्रियों को रुक जाना पड़ता था, इधर से मुसलमानों की फौज आ

रही है, तो उधर से मराठे आ रहे हैं। वे खेत जला डालते थे। बैठे-बैठाये लोगों को पकड़ लेते थे। इस तरह के कई अनुभव वे बतलाते थे। इन सबका यदि विचार किया जाय तो आज की और उस समय की स्थिति में साम्य नहीं पाया जा सकता।

'इसी तरह तुम भी पिछले चारण-भाट की तरह गाने बैठ जाओ कि 'हर्षित हो फिर हिन्दुस्तान'।' सुखपाल ने ज़रा हँसकर मज़ाक किया। यह सुन शान्तिप्रिय, मनोहर और दूसरे दो-तीन लोग खिलखिलाकर हँस पड़े। जुगलकिशोर को, अंग्रेज़ भारत पर राज्य करते हैं या अमेरिकन, इसकी बहुत कम परवा थी। स्थिति के अनुसार वह जब चाहे, किसी भी पक्ष का बन सकता था। सर बिहारीलाल के मकान पर गर्म विचार प्रकट न करने के इरादे से वह पहुँचा था और सुखपाल की चोटों से घायल होनेवाली उसकी कच्ची चमड़ी न थी। उसने सबको हँसते छोड़कर उत्तर दिया—यह गीत अकेले दलपतराम ने ही गाया हो ऐसा नहीं है। यह तो मुहम्मद क़ासिम और महमूद गज़नवी के आने के समय से हम और आप सभी गाते आ रहे हैं।

'हिन्दू-मुसलमानों की समस्या न खड़ी कीजिये। हम तो वर्तमान समय की बातें करते हैं।' एक ने कहा।

'पर यह वर्तमान समय किस तरह आया, यह तो समझना पड़ता है न?'

सर बिहारीलाल इस व्यर्थ के वाद-विवाद के रुक जाने को उत्सुक हुए। कुसुम, रमेश और जगदीश इस वाद-विवाद में भाग नहीं ले रहे थे। वे इन बातों से अलग थे। सर बिहारीलाल ने जगदीश को बुलाकर अपने पास की कुर्सी पर बैठाया। पर इससे विवाद न रुक सका। जगदीश को अखबार सौंपने का हमारा इरादा उसे स्वीकार है या नहीं, यह मिल के व्यवस्थापक प्राणलाल ने पूछा—आपको इस विषय में कुछ कहना तो नहीं? आप भी कभी इस धाँधली में पड़ते हैं? रोजगार-व्यवसाय के सिवा दूसरी सभी प्रवृत्तियों को धाँधली मान बैठनेवाले प्राणलाल ने कहा।

'जी नहीं, मुझे कुछ भी नहीं कहना। वाद-विवाद से अमिट धारणाएँ नहीं हट सकतीं।' जगदीश ने कहा।

'तो भी आप कुछ कहिये!' प्राणलाल ने आग्रह करते हुए नारंगी छीली।

'इनका मत तो जाना ही हुआ है। बड़ी भारी नौकरी जो छोड़े बैठे हैं, वह अपने मत के कारण ही न?' जुगलकिशोर ने बताया।

बातचीत में शामिल न होकर मूर्ख की तरह बैठा रहना, यह सभ्यता का चिह्न

नहीं, ऐसा सोचकर जगदीश ने कहा— अंग्रेजों की कुटिलता के विषय में चाहे जो कहा जा सकता है; पर इतना तो निस्संदेह ही है कि शासन करने में ये लोग हमारी अपेक्षा अधिक योग्य हैं।

जगदीश के मुँह से ये बातें सुनकर सभी विचार में पड़ गये। जुगलकिशोर ने धीरे से शान्तिप्रिय को छेड़ा।

'यह आपके जगदीश! वक्त आने पर अब बदल गये मालूम होते हैं! पत्र-सम्पादक होने का लालच अभी इनमें मालूम होता है।'

'इसका इरादा कैसे कर लिया?' सुखपाल ने तिरस्कार से पूछा।

'कई नेताओं और कई वर्तमान हलचलों का अनुभव करने के बाद ही यह इरादा किया है।' जगदीश ने उत्तर दिया।

'हियर! हियर!' जुगलकिशोर बोल उठा।

'क्लाइव और हेस्टिंग्स के इतिहास को भूल गये हो तो फिर पढ़ जाओ! कपट और विश्वासघात की नींव पर रची ब्रिटिश सल्तनत का इतिहास फिर दुहरा जाओ!' व्याख्यानदाता का ढंग धारण कर सुखपाल गरज पड़ा।

'यह इतिहास और तवारीख पढ़कर ही मैं कहता हूँ कि वे क्लाइव और हेस्टिंग्स आपके इस समय के देश-नायकों की अपेक्षा अधिक भले और उच्चकोटि के व्यक्ति थे, और आपके आज के नेताओं को उनके जीवन से शिक्षा लेनी चाहिये।' जगदीश ने भी गुस्से से कहा।

'क्या? क्या?' दो-चार व्यक्ति बोल उठे। 'क्लाइव और हेस्टिंग्स उच्चकोटि के पुरुष थे?' यह किसी को भी आश्चर्य पैदा करनेवाली बात थी।

'उन्होंने चाहे जितना कपट किया, चाहे जितना विश्वासघात किया, किन्तु इन सबमें उन्होंने अपनी प्रजा का और अपनी मालिक कम्पनी का ही भला चाहा। यदि वे चाहते तो खुशी से नवाब या राजा बन सकते थे। पर उन्होंने क्लाइव या हेस्टिंग्स का राजवंश स्थापित नहीं किया। और आपने क्या किया? पेशवा ने छत्रपति को मिटाकर अपनी पीढ़ी चलाई, होल्कर, सिन्धिया और भोंसले ने भी ऐसा ही किया। इससे क्लाइव उच्चकोटि का या होल्कर उच्चकोटि का, यह आप ही देख लें न?' जगदीश ने कहा।

'और हमसे तो मिलकर एक भी नहीं हुआ जाता? क्या महात्माजी के कार्य-

क्रम के चौबीस घंटे की भी पूरी अज़माइश करने दी गई ?' जुगलकिशोर ने जगदीश का समर्थन किया।

वाद-विवाद अधिक तीव्र होने से रोकने के लिए रमेश बोला—पर आज तो कुसुम बहिन की जन्म-तिथि है। दूसरा कोई अवसर नहीं है। हमें दूसरे विषय में बातचीत करनी चाहिये।

इतने पर भी बातचीत गर्म बनी रही। सर बिहारीलाल एक अच्छे विचारक के रूप में तो माने ही जाते थे। उन्होंने भी किसी पक्ष की तरफ़ से हिस्सा नहीं लिया था, और सरकार की पदवी ग्रहण की थी। इस कारण वे सरकार पक्ष के ही माने जाते थे, पर एक गम्भीर विचारक के रूप में उनकी सब पक्षों में गणना थी।

एक व्यक्ति ने उनसे आवेश में पूछा—साहब, आपका क्या खयाल है? क्या स्वराज्य की इच्छा आपको नहीं होती, यह आप कह सकते हैं?

'मुझसे यह कैसे कहा जा सकता है? स्वराज्य की मुझे भी तीव्र इच्छा है। केवल मैं इतना समझता हूँ कि स्वराज्य और सुराज्य, इन दोनों में प्रजा हमेशा से सुराज्य को ही पसन्द करती चली आई है। यदि स्वराज्य ही जनता से पसन्द कराना हो तो भी उसे सुराज्य तो बनाना ही पड़ेगा।'

बातचीत पेचीदा होकर बढ़ती ही जाती थी। उसे रोकने को प्राणलाल उठ खड़ा हुआ, और जगदीश से कहने लगा—अब मुझे काम है, इसलिए जा रहा हूँ। आप मेरे साथ ज़रा मिल के आफ़िस में चलें? आप सबको भी थोड़ी देर में वहाँ पहुँचना है। आज हड़ताल के झगड़े का निबटारा जो करना है। पिछला वाक्य प्राणलाल ने सुखपाल तथा मनोहर से कहा। झिझकता हुआ जगदीश उसके साथ गया। उसे यह ख्याल न था कि प्राणलाल उसे क्यों बुला ले जा रहा है।

(२०)

जगदीश और प्राणलाल मिल चले गये। उनके बा॰ धीरे-धीरे सारी पार्टी उठ गई। उनमें से कई व्यक्तियों को मिल में जाना था; क्यों॰ आज हड़ताल-सम्बन्धी फ़ैसला होना था।

प्राणलाल ने जगदीश की परीक्षा बग्घी में ही कर ली और उ॰ लगा कि अखबार चलाने के लिए इतना होशियार मनुष्य ही उपयोगी सिद्ध होगा। प्राणलाल को पत्र की नीति या सिद्धान्तों के विषय का कोई अनुभव न था। केवल ॰ल के मजदूरों के

बारे में जो चाहे वह बात लिखना, निठल्ले, बिना काम-धंधे के आगे आनेवाले नेताओं की खबर लेने का साधन पूरा होना ही उसका ख़्याल था। मिल में एक अच्छे कमरे में प्राणलाल अकेला बैठता था। वहाँ पहुँचकर अपनी सादी गद्दीवाली कुर्सी पर बैठकर उसने जगदीश को अपने सामने बैठाया। फिर घंटी बजाकर नौकर को बुलाया। नौकर को दो-चार क्लर्कों को बुला लाने के लिए हुक्म दिया। नौकर जाकर क्लर्कों को खबर दे इसके पहले ही फिर उसने घंटी बजाई। जब कोई न आया तो दो तीन आदमियों का नाम लेकर आवाज़ लगाई। उनमें से एक आदमी आवाज़ सुनकर दौड़ा आया। उस समय ऐसा मालूम हुआ कि प्राणलाल भाई की धाक बहुत भारी है।

'क्यों? तुम सब कहाँ मर गये?' प्राणलाल ने पूछा।

'साहब, यहीं तो थे।' नौकर ने उत्तर दिया।

'क्या मज़दूरों की तरह तुम्हें भी हड़ताल करना है, लुच्चो!'

प्राणलाल की कर्कश बोली सुनने के आदी नौकर ने कोई जवाब न दिया। इसलिए प्राणलाल ने उसे फिर डाँटा।

'भूत की तरह क्यों खड़ा है। चकू सेठ के यहाँ से कोई आया था? और शकरा भाई ने टेलीफोन पर क्या कहा?'

चकू सेठ और शकरा भाई ये नाम साहित्य-भोगी दुनिया को भले ही अच्छे न लगें, परन्तु मिल की दुनिया में ये सम्मानित नाम थे।

'चकू सेठ का मुनीम आया बैठा है। और आपके आने की सूचना देने के लिए शकरा भाई ने टेलीफोन पर कहा है।'

'तो फिर कहा क्यों नहीं जाता? जा-जा, बुला ला उन्हें।'

चकू सेठ के मुनीम और अपने मुनीम के साथ, फिर शकरा भाई से फोन पर उसने भाव-ताव और सौदे की बातें कीं। फिर मज़दूरों की हड़ताल के विषय में भी बातें हुईं। जगदीश अंग्रेज़ तथा देशी व्यापारियों की पद्धति पर विचार कर रहा था। उसे लगा कि प्राणलाल अपनी मिल के साँचे की तरह ही फुर्ती और लगन के साथ कैसा काम कर सकता है। आखिर प्राणलाल को आधे घंटे बाद जगदीश के साथ बातें करने की फुर्सत मिली।

'क्यों मिस्टर, अब कहिये!' उसने बात शुरू की। जगदीश को कुछ कहना तो था नहीं। वह उसे किसलिए साथ लाया था यह उसकी समझ में नहीं आ रहा था।

इसलिए प्राणलाल ने बात शुरु की—आप पर साहब की कृपा हुई है। साहब हमेशा कृपा ही करते हैं। यह भुलाया न जा सके, इसलिए प्राणलाल ने इस बात की तरफ़ जगदीश का ध्यान खींचा।

'जी हाँ, समझा; पर किसलिए कृपा हुई है, यह मैं नहीं समझ रहा।' जगदीश ने कहा।

'मिस्टर, आपको पता नहीं। आपके मित्र ने इसके लिए बड़ा प्रयत्न किया है।' हँसकर प्राणलाल ने कहा।

'मुझे कुछ भी पता नहीं।'

'क्यों? आपको एक बुधवारिया निकालना है और उसमें आपकी नियुक्ति हुई है, यह पता नहीं?' प्राणलाल ने पूछा। बुधवारिया, चोपानिया और अखबार—इन बदलते हुए नाम-संस्करणों का प्राणलाल को अधिक पता न था। ख़्याल होगा भी तो उसकी बहुत ज़रूरत न रही होगी। 'अब तो सिर्फ आपके वेतन को ही तै करनी है। यह काम साहब ने मुझे सौंपा है।' प्राणलाल बोला।

'साहब का और आपका उपकार मानता हूँ; परन्तु इस रोज़गार में न पड़ने का मैंने निश्चय कर लिया है।'

'हैं?' कुछ आश्चर्य से प्राणलाल ने कहा।

'प्राणलाल भाई, इस रोज़गार में ही मैं था; पर इसमें तो सत्य बेचने के अनेक मौके आते हैं, और इसे मैं नहीं सह सकता। और आख़िर इस धन्धे में न पड़ने का ही निश्चय करके बैठ गया।' जगदीश ने कहा।

'अरे आप भी कैसे आदमी हैं? रोज़गार करना है कि लम्बी-चौड़ी बातें करनी हैं?' प्राणलाल ज़रा खीझा। वह कभी-कभी अपनी आदत के अनुसार कठोर शब्द बोल जाया करता था। इसलिए कभी किसी को बुरा लगने का मौका नहीं आया था। जगदीश यह सुनकर हँसा।

'दूसरा कोई काम हो तो ज़रूर बतलाइये। मुझे काम की ज़रूरत भी है।'

'वेतन में कोई आपत्ति हो तो कहिये, वह ठीक हो जायगा। साहब के साथ का सम्बन्ध आपको खराब न मालूम होगा।'

'यह तो मैं जानता हूँ। रमेश रोज़ आप लोगों की प्रशंसा करता है।'

'तो फिर मेरे भाई! अच्छी तरह काम से लग जाओ न?'

'आपको मेरे विरुद्ध बहुत कहनेवाले मिलेंगे। बाहर मेरे विषय में बहुत चर्चा रहती है। इसलिए किसी अधिक प्रतिष्ठित मनुष्य को यह काम आपको सौंपना चाहिये।'

'आप भी तो प्रतिष्ठित हैं। रहने दो न। क्यों चन्द्रकान्त, आओ! देखो, इन भाई के साथ तुम्हें काम करना है।' बुलवाये हुए अपने एक मात्र पुत्र चन्द्रकान्त से उसने कहा। प्राणलाल और चन्द्रकान्त—इन दोनों बाप-बेटों के नामों में जितना संस्कार-भेद था, उतना ही चारित्र्य भेद भी उनके जीवन में था। लाड़-प्यार में पला यह स्वच्छन्द एकलौता लड़का, बाप की भी बहुत इच्छा रहने पर भी वैसा न बन सका। वह अच्छे-से-अच्छे कपड़े बड़े ठाट-बाट से पहनता था। दिन में पाँच-छः बार चाय पिये बिना नहीं रहता था। दो घण्टे सुबह आराम करने के अलावा शाम को भी बिना घूमे उससे नहीं रहा जाता था। घर वापस आने के लिए उसके अलग-अलग वक्त थे। दस, ग्यारह, बारह, एक—इतना बजने पर भी रात को आने में वह डरता नहीं था। सिनेमा-नाटक के मैनेजरों, व्यवस्थापकों, एक्टरों आदि को वह खास तौर से जानता था और उनकी मैत्री में उसका वक्त गुजरता था। नाटक या फ़िल्म-कंपनी में शामिल होने की उसे महत्त्वाकांक्षा थी। उसका खर्च बहुत अधिक था। प्राणलाल के एक वर्ष का खर्च उसके एक महीने के बराबर था। धीरे-धीरे व्यसन और नशे का शौक़ भी उसे हुआ। बुरे संस्कार, साधनों की विपुलता, धाक का अभाव और नीच सोहबत—इन सबका विकास चन्द्रकान्त में प्रकट हो गया था। बाप के प्यार ने शुरू में तो पुत्र में होशियारी देखी। उस होशियारी का अच्छी बातों में उपयोग न होने से पिता का वात्सल्य बढ़ा। इस तरह पुत्र के दोषों का प्यार से बचाव होने लगा। उसके पुत्र से मानो संसार की दुश्मनी हो, इस भावना से प्राणलाल ने पुत्र के दोष बढ़ने दिये, किन्तु ढके हुए दोषों की सीमा बढ़ने लगी और तब ग़लतफ़हमी में पड़े पिता को मालूम हुआ कि पुत्र के दोष अब बचाव के लायक़ नहीं रहे हैं। इसलिए वह असन्तोष प्रकट कर उस पर नज़र रखने लगा। किन्तु उसका यह प्रयोग निष्फल हुआ। पिता की रोक-टोक से अब चन्द्रकान्त का नशा और चट्टापन और भी बढ़ने लगा। अब खुले तौर पर प्राणलाल अपने पुत्र की शिकायतें करने लगा और किसी भी तरह वह ठिकाने लगे, यह तजवीज करने लगा। थोड़े दिन उसे अपने पास काम सीखने के लिए रखा, थोड़े समय माल के

भेजने और लेने के काम में रोका और थोड़े दिन उसे रमेश को देख-रेख में रखा। किन्तु हर एक जगह उसकी अनियमितता, उद्दण्ड बर्ताव और तबियत न लगने के कारण, उससे ये काम टिककर न हो सके। प्राणलाल ने आशा की थी कि नवीन पत्र निकलने पर चन्द्रकान्त को जगदीश के साथ रख देंगे। और इसीलिए उसने उसे बुलाया था। प्राणलाल को यह विश्वास था कि जगदीश फौरन इस काम को स्वीकार कर लेगा ; और वेतन ज़रा अच्छा देखेगा तो मेरे अहसान के नीचे भी रहेगा। किन्तु जगदीश ने तो पत्र का भार स्वीकार करने से साफ़ इन्कार कर दिया। महात्माज़ी ने जैसे देश-भक्ति का नवीन परिचय कराया था, वैसे ही पत्रकार की भूमिका का भी नवीन आदर्श खड़ा किया था। यह आदर्श जहाँ तक सिद्ध करना सम्भव न लगता वहाँ तक जगदीश ने इस धन्धे का बहिष्कार करना तय किया। इसलिए प्राणलाल की धारणा झूठी ठहरी।

इतने में नीचे कोलाहल होने लगा। मिल के बाहर घूमती हुई मज़दूरों की भीड़ एकाएक मिल के हाते में इकट्ठी हो गई। कोलाहल क्यों हुआ? यह कुछ समझ न पड़ा, किन्तु मनोहर, शान्तिप्रिय और सुखपाल मोटर से बाहर निकलकर भीड़ को दूर करते दिखलाई दिये। मोटर के आस-पास मनुष्य इकट्ठे हो गये थे। इतने में किसी ने प्राणलाल को खबर दी कि कुसुम की मोटर पर मज़दूर पत्थर फेंक रहे हैं और मोटर को आगे नहीं बढ़ने देते। जगदीश एकाएक खड़ा हो गया ; किन्तु प्राण-लाल ने कहा—आप बैठिये, मेरे गये बिना काम न चलेगा।

इतना कहकर वृद्ध प्राणलाल अपनी स्वाभाविक तेज़ी से उठकर नीचे गया।

चन्द्रकान्त उठकर कमरे में घूमने लगा। वह जगदीश की तरफ़ परिचित की तरह देख रहा था। थोड़ी देर ठहरकर उसने जगदीश से पूछा—क्यों मिस्टर, सिगरेट पियोगे?

जगदीश ने इनकार कर दिया।

'मेरे पिताजी बहुत बढ़िया सिगरेट पीते हैं। मैं आपको चखाता हूँ!' यह कह-कर चन्द्रकान्त ने प्राणलाल की मेज़ पर पड़ी चाबियाँ उठाईं और मेज़ की दोनों दराज़ें खोलीं, पर उनमें से सिगरेटें न निकलीं, इसलिए उसने जगदीश के सामने देखकर कहा—'बूढ़ा सिगरेट भी तिजोरी में रखने लगा क्या?'

'नहीं भाई, आप तकलीफ़ न करें। मैं सिगरेट पीता ही नहीं।' जगदीश ने

कहा। इतने में बाहर कोलाहल बढ़ गया। जगदीश उठकर छज्जे पर आया। मोटर धीरे-धीरे मुकाम पर आ रही थी। मोटर के पीछे तीन सिन्धी पहरेदार, भरी बन्दूकें लिये भीड़ के सामने डटे थे। सुखपाल तथा मनोहर भीड़ को पीछे हटाने के लिए बड़ा प्रयन्त कर रहे थे कि इतने में प्राणलाल की गरजती हुई आवाज़ सुनाई दी— अगर जो कोई भी आगे बढ़ा तो मारा गया ही समझना।

'तुम लोगों को इतना समझाया था कि शरारत न करना, फिर भी तुम लोग नहीं मान रहे हो, इससे तुम्हारा पक्ष कमज़ोर पड़ता जाता है।'

मनोहर ने मज़दूरों के सामने भाषण किया। एक तरफ़ से कुछ मनुष्यों के हँसने की आवाज़ सबको सुनाई पड़ी।

'मोटर पर पत्थर फेंकते तुम्हें शर्म नहीं आती? तुम्हारा पक्ष हम इसी समय से छोड़ देंगे।' सुखपाल ने अपनी ऊँची आवाज़ से कहा। मज़दूरों की भीड़ की पिछली तरफ से एक पत्थर सुखपाल के पैरों के पास आकर पड़ा और दूसरा मोटर की छत पर। प्राणलाल ने दाँत पीसे। सिंधियों ने बन्दूकें ऊँची कर भीड़ को धमकाया। पर भीड़ पीछे न हटकर चार क़दम और आगे बढ़ गई। इसी भीड़ में से एकाएक जुगलकिशोर आगे बढ़ा और तीन-चार मज़दूरों को जो आगे बढ़ आये थे, धक्के देकर पीछे ढकेल दिया; और चिल्लाकर भीड़ के सामने खड़ा हो गया— खबरदार, कोई आगे बढ़ा तो?

उसकी हुंकार से मज़दूर कुछ पीछे हटे। छज्जे पर जगदीश के पास चन्द्रकान्त आया और कन्धे पर हाथ रखकर कहने लगा—अब आप जाइये। आपका काम आज न होगा। पिताजी ने कहलवाया है।

चन्द्रकान्त को उसके बाप ने यह बात किस तरह कहलवाई होगी, यह जगदीश न समझ सका। प्राणलाल तो नीचे रुका हुआ था, परन्तु उसने यहीं बैठकर बात चला ली थी। उसे पत्रकार की लाइन में फिर काम करने से हिचक थी। और दूसरी किसी नौकरी की इच्छा हो तो वह आज की आज ही पूरी हो सके, ऐसा न था। फिर चन्द्रकान्त ने उतावली के साथ उसके चले जाने का दूसरा कारण बतलाया— नीचे ऊधम हो रहा है और यह तो रात तक खतम हो न होगा। फिर आज तो फ़ैसला जो होना है। बस, अब तो आधी रात तक की बात गई। आपको जाना हो तो मैं पिछला दरवाज़ा खोल दूँ। मैं पिताजी से कह दूँगा कि वे चले गये।

जगदीश को नीचे होनेवाले प्रदर्शन को देखने की इच्छा न थी। मोटर बँगले के पास पहुँच गई थी और उसमें से उसने कुसुम तथा शान्तिप्रिय को सही-सलामत उतरते हुए देखा। इसलिए पिछले दरवाजे से चले जाने की चन्द्रकान्त की सलाह उसे पसन्द आई। उसने जाने के लिए 'हाँ', कहा। इसलिए चन्द्रकान्त उसे लेकर दूसरे दरवाज़े पर गया। मिल के हाते में घुसने के मुख्य मार्ग के अलावा यह दूसरा मार्ग था। आम रास्ते की बगल में बनी हुई मोटी दीवाल के साथ मिल की कचहरी के बँगले का अधूरा काम रोक दिया गया था, इसलिए आम रास्ते पर इस बँगले में होकर जाया जा सकता था। यह दरवाजा अधिकतर बन्द रहता था। कभी-कभी ही उसका उपयोग होता था। बाहर का गम्भीर मामला विचारकर प्राणलाल सेठ के साथ आये हुए व्यक्ति को इस रास्ते से जाने देने की माँग हो सकती है, इसमें किसी को आश्चर्य नहीं हुआ। फिर उसमें प्राणलाल के चिरञ्जीवी का हित था। इसलिए कोई प्रश्न पूछने को रहा ही न था। दरबान ने चाबी लाकर बन्द फाटक खोल दिया। इस दरवाज़े के सामने हड़ताल में हिस्सा लेने में असमर्थ कितने ही मज़दूरों के अलावा और कोई नहीं था। दूर पर जगदीश ने पुलिस की एक टुकड़ी को मिल के मुख्य दरवाज़े की तरफ़ तेज़ी से आते हुए देखा।

'मामला घटेगा या बढ़ेगा?' जगदीश के हृदय में प्रश्न उठा। इस प्रश्न के साथ ही वह आम रास्ते पर चलने लगा। उसने पीछे मुड़कर देखा तो उसे रास्ते की उल्टी तरफ़ साइकिल पर एक व्यक्ति तेज़ी से जाता मालूम हुआ। उसे मालूम हुआ कि यह व्यक्ति चन्द्रकान्त ही था, पर इससे क्या?

(२१)

जगदीश को अपनी विचित्रता पर हँसी आई। बिना रोज़गार बैठे इस युवक को आख़िर किसी धन्धे की ज़रूरत थी ही। उसके अनुभव का और पसन्द का पत्रकार का धन्धा उसकी दृष्टि के सामने पेश हुआ। उसे हाथ लम्बा कर प्राप्त करने की ही देर थी। फिर किसलिए उसने उसे ठुकरा दिया? उसकी नीति किसी ने तय न की थी। उसके स्थापक को किस पक्ष का समर्थन करना है, यह भी उसे नहीं बताया गया था। फिर इसे उसने क्यों पसन्द नहीं किया?

उसकी गुज़र कोकिला ही चलाती थी, यह जगदीश जानता था। गहने बेचकर लाते हुए उसने कोकिला को अपनी आँखों से देखा था। उसकी अस्वस्थता के

समय की गई सार-सम्हाल में भी कितना ही खर्च हुआ था। इस विषय में कई बार उसे संकोच हुआ था। जगदीश को ज़रा भी कोई संकोच न हो, इसका कोकिला बहुत खयाल रखती थी। पर इस सुपत्नी को अब कितनी सामर्थ्य थी? बीमारी से जब जगदीश उठा, उस समय के कई प्रसंग जगदीश की स्मृति में खड़े हुए। उसे खाना अच्छा नहीं लगता था। इसलिए कोकिला कुछ खाने के लिए कितनी ही तरह से अनुरोध करती थी। एक दिन तो जगदीश को अत्यन्त आत्म-ग्लानि हुई। अस्वस्थ्य मनुष्य को रुचिकर लगनेवाली, हल्की स्वादिष्ट चीज़ों से भरी थाली उसके पास रखकर कोकिला बैठ गई। जगदीश थाली के सामने देखता हुआ बैठ गया। उसे उसी समय अपनी इस स्थिति से घृणा हुई। हाथ बढ़ाकर मुख में ग्रास देने की भी उसकी इच्छा नष्ट हो गई थी। जगदीश के सामने देखती कोकिला ने मीठे स्वर से पूछा—यह क्या? मैं ग्रास दूँ?

और कोकिला ने अपने हाथ में एक चीज़ ली और वह जगदीश के मुँह के पास ले गई कि इतने में जगदीश की आँखों से आँसू टपककर गाल पर ढुलक पड़े।

'अरे, अरे, तुम्हें क्या हुआ है? मैं ही मर जाऊँ जो आँख में आँसू लाओ तो?'

अपनी साड़ी के छोर से उसने पति के आँसू पोंछे। परन्तु इस कार्य से जगदीश के रुके हुए आँसू दुबारा बाहर निकल आये। कोकिला का मुँह उतर गया। वह भयभीत हो गई। उसे कहने को कुछ नहीं सूझा। पति के आँसू देखकर उसका कलेजा बाहर निकला पड़ता था। और उसकी आँखों से भी आँसू निकल पड़े। जगदीश ने यह देखा, वह स्वस्थ हुआ; और फिर मुस्कराया।

'ओ माँ! यह क्या हुआ? मैंने तो कभी आपकी आँखें भीगी हुई नहीं देखीं। मुझे ज़िन्दा रखना है तो आज सौगन्ध खाओ कि फिर मेरे देखते आँसू न आयेंगे।' कोकिला ने अपने आँसू पोंछते हुए कहा।

'कोकिल! तुम मुझे भी तो कुछ बोलने दो!' जगदीश ने कहा।

'नहीं, पहले खा-पी लो। फिर मैं तुम्हारी बात सुनूँगी।' यह कहकर कोकिला ने जगदीश के मुँह में एक ग्रास दे दिया।

जगदीश ने एक कौर तो जैसे-तैसे गले में उतारा, किन्तु उसकी पत्नी की प्रेम-भावना आज उसे असह्य हो गई थी। जगदीश ने आँखें स्थिर करके कहा—

कोकिला ! एक दिन तो तुम मेरा तिरस्कार करो ! एक बार तो तुम मुझे मनाने का अवसर दो !

'अरे, पर किसलिए ? तुम्हें हुआ क्या है ?'

'मानो कुछ समझती ही नहीं हो ! कोकिला, तुमने मुझ अभागे के साथ क्यों विवाह किया ? और किया तो इतना प्रेम क्यों करती हो ? तुम्हारे प्रेम से मैं घायल हुआ जाता हूँ । मुझे ज़रा तो धिक्कारो ! इसके बिना मुझे शान्ति नहीं मिलेगी ।' जगदीश ने कहा ।

कोकिला ज़रा हँसी और बोली—ऐसी तो बहुत वर्ष पहले भी तुमने मेरे विषय में एक कविता लिखी थी ; और उसे मुझे चार दिन तक तुमने समझाया था । फिर भी मैं उसे नहीं समझ सकी थी । याद है ?

अपनी प्रशंसा की बात न समझना और न बढ़ाना—इसका कोकिला ने निश्चय कर लिया था । वह ऐसे समय नासमझ बनकर हँसती या दूसरी बातों को छेड़ देती, और अपनी प्रशंसा करने का जगदीश को कोई मौका न आने देती थी । बिना दिखाव-बनाव के पति के लिए ही जीनेवाली और पति को ही सर्वस्व माननेवाली पत्नी को कौन जाने पति के ही आनन्द में परमानन्द होता था । जगदीश के जीवन में वह मानो अनिवार्य हो गई थी । पत्नी और गृह—इन दोनों का परिचय विस्तृत है । पत्नी से दूर और घर के बाहर आनन्द पाने की पति को बड़ी इच्छा होती है । किन्तु जगदीश इसका अपवाद था । लम्बे परिचय ने उसे पत्नी और घर में ही आनन्द प्राप्त करनेवाला बनाया था । वह पत्नी को ज्यों-ज्यों अधिक सुखी करने की योजनाएँ करता, त्यों-त्यों उसकी योजनाएँ भंग होतीं, किन्तु तब भी उसके इच्छानुसार कोकिला अधिकाधिक सुखी बन जाती । अपने सुख देने की अशक्ति के बदले कोकिला की सुख मिलने की शक्ति उत्तरोत्तर खिलती जाती थी ।

मिल से घर वापस आते जगदीश को ऐसी ही अनेक घटनाएँ याद आईं । वह कितना चला, इसका उसे कोई ख्याल न रहा । विचारों के ज्वलन्त चित्र देखता-देखता वह ठीक घर के पास आया । कोकिला ने छज्जे से उसे देखा और अपनी आदत के अनुसार जगदीश को लेने के लिए दरवाज़े के सामने आने लगी ।

जगदीश ने जैसे ही घर की पगडंडी पर पैर रखा कि उसके कंधे के ऊपर पीछे से एक आदमी ने हाथ बढ़ाया । वह आदमी हांफ रहा था क्योंकि दौड़ता आया था।

उसने अपने हाथ का एक कागज़ जगदीश के हाथ में दे दिया और फिर वह तेज़ी से चला गया।

जगदीश ने वह कागज़ पढ़ा—'जगदीश, जहाँ हो वहाँ से एकदम भाग जाओ। पूछने को न रहना। तुम पर पंद्रह हज़ार की चोरी का आरोप है।'

जगदीश को ऐसा लगा मानो सिर पर आसमान टूट पड़ा हो। पंद्रह हज़ार कैसे? चोरी कैसी? कहाँ से उसने चोरी की? उसे कुछ समझ न पड़ा। कोकिला दस कदम पर है। उससे भी बिना मिले भाग जाऊँ? पर मिलकर भी क्या कहूँगा?

एक क्षण में ही वह बहुत कुछ सोच गया। घर पहुँचना या आगे क़दम रखना। इन दोनों निश्चयों के बीच वह क्षण-भर खिंचा। फिर एक दूसरा आदमी हाँफता हुआ आया और उससे कहने लगा—आपको चिट्ठी मिली?

'हाँ।' जगदीश ने यंत्रवत् कहा।

'फिर खड़े क्यों हो? पीछे पुलिस है। चलते बनो।'

जगदीश ने क़दम बढ़ाये और तेज़ी से चल पड़ा। पन्द्रह कदम आगे बढ़ा होगा कि इतने ही में एक मोटर उसके पास खड़ी हो गई! चौंककर उसने उस तरफ़ देखा। मोटर में बैठी विजया उससे पूछने लगी—जगदीश भाई, कहाँ जा रहे हो?

'यों ही शहर के बाहर जा रहा हूँ।'

जल्दी जाने की जगदीश को ज़रूरत थी ही। चिट्ठी किसने लिखी, यह सोचने की भी उसे फ़ुर्सत न थी। सिर्फ़ तेज़ी से चलने का ही उसका विचार था। कहाँ जाना है, यह कैसे निश्चय हो सकता? अकस्मात् मिली मोटर का लाभ प्राप्त करने की उसकी इच्छा हुई और विजया का आमन्त्रण स्वीकार कर वह मोटर में तुरन्त बैठ गया।

'तुम हाल ही में तो बीमारी से उठे हो। घूमने जाने की ज़रूरत हुआ करे तो मोटर या गाड़ी मँगा क्यों नहीं लिया करते?' विजया ने पूछा।

'इससे आपको तकलीफ़ होगी न?' कोई उत्तर न मिलने पर जगदीश ने कहा।

'हमें तकलीफ़ कैसी? साधन का दूसरा उपयोग भी क्या होना है? ज़रा भी बिना संकोच के ज़रूर मँगवा लिया करें।' विजया ने कहा।

थोड़ी देर दोनों चुपचाप बैठे रहे। मोटर आगे बढ़ती जा रही थी। जगदीश को ऐसा मालूम हुआ कि विजया आँख के कोने से उसकी तरफ़ देख रही थी, कोई अपने

को छिपे तौर पर देखता हो तो यह मनुष्य की शर्म बढ़ानेवाला प्रसंग होता है। जगदीश ने संकोच पाकर अपने एक पैर पर दूसरा पैर रखा और शर्म के प्रतिकार करने का निष्फल प्रयत्न किया । किन्तु ऐसा करने में आराम से बैठी विजया का पैर छू गया। कहीं अपने प्रति बुरा भाव पैदा न हो जाय, ऐसा डरकर जगदीश ने चुप रहने के बदले बातें करनी शुरू कीं — कौंसिल के चुनाव का परिणाम कब निकलेगा ?

'थोड़े दिनों में। पर आप तो हमारे काम न आये ?' विजया ने उलाहना दिया।

'क्या करूँ ? मेरा सिद्धान्त अलग है। यदि मैंने 'हाँ' कहा तो भला मैं काम न आता ? फिर मेरी तबियत भी खराब हो गई थी।'

'अभी तो तुम्हारी बड़ी ज़रूरत पड़ेगी। कौंसिल में उनके हो जाने के बाद लिखने-पढ़ने का काम बाकी रहेगा। मुझे भी अपना अध्ययन आगे बढ़ाना है।' कौंसिल में धनवान् निर्वाचित हो तो बेकारों को रोज़गार मिलने के साधन कुछ बढ़ ही जाते हैं।

'इसमें कोई सन्देह नहीं। सेठ साहब ज़रूर निर्वाचित होंगे। जुगलकिशोर इस विषय में बहुत योग्य आदमी है।' जगदीश ने कहा।

'उनका चुना जाना तो तय ही है। दो-तीन और जो मनुष्य मुकाबले में खड़े हुए थे उन्होंने अपनी उम्मीदवारी वापस ले ली। इसलिए वे अकेले ही हैं।'

लालजी के कौंसिल में निर्वाचित होने का या उनके कौंसिल में होने से जगदीश से सम्बन्ध बढ़ेगा, इसका इन दोनों में से विजया को किस बात पर आनन्द हो रहा था, यह नहीं कहा जा सकता।

'देखिये, तब आपको मुझे अंग्रेज़ी सिखानी पड़ेगी।' विजया ने कहा।

जगदीश ने जब एक बाहर खड़े पुलिसवाले को देखा तब उसे ख्याल हुआ कि वह तो भागता फिरता मुलज़िम है। और उसके मुख पर उदासी की छाया स्पष्ट रूप से झलक पड़ी। उसने कोई उत्तर नहीं दिया।

'आपने क्यों, स्वीकार नहीं किया ?' विजया ने उसके सामने देखकर पूछा।

'मैं कैसे स्वीकार करता ? मेरा जीवन तो बड़ा विचित्र है।' जगदीश ने कहा।

'उसमें एक और विचित्रता बढ़ा देना, समझे ?' विजया के जीवन में कला थी। उसका उठना-बैठना, चलना-फिरना आदि चेष्टाओं में एक सुन्दरता की झलक रहती थी। नासमझ मनुष्य भी समझ सके, इस प्रकार की छटा उसकी बातचीत में होती उसके शरीर या अंगों के स्वाभाविक चेष्टा-सौन्दर्य की छाप पड़े बिना न रहती

थी। उसने बोलते समय जान-बूझकर आँखें तिरछी करके देखा ; और स्मित-मिश्रित क्रोध की मुद्रा उसके मुख पर झलक आई। सिर से खिसके हुए साड़ी के छोर को उसने पीछे से आगे की तरफ़ सरकाया। ऐसा करने में विजया का हाथ जगदीश से छू गया। जगदीश को कोकिला की छटा याद आ गई। कोकिला से अधिक उम्र की और कुछ अधिक भरावदार देहवाली विजया, कोकिला जैसा शरीर-सौन्दर्य और भाव-सौन्दर्य प्रदर्शित कर रही थी। इससे जगदीश को बहुत नवीनता मालूम हुई। वह तुरन्त समझ गया कि विजया की आँखों में मस्ती और चंचलता है और शायद यह मस्ती और तूफान उसके कारण ही विजया में उत्पन्न हैं। इससे वह चौंका।

स्त्रियों के प्रति उसमें पूज्य-भाव रहता था। बचपन से ही वह घूमने-फिरने का शौक़ीन और खुले मैदान में टहलने का आदी था। दूसरी सुन्दर स्त्रियों के प्रति वासना का भाव उसमें कभी पैदा नहीं हुआ था। उसे विश्वास था कि स्त्री-जाति विशुद्ध है ; पर जहाँ भरण-पोषण के साधनों का सम्पूर्ण अभाव होता है, वहीं स्त्रियाँ अशुद्ध बन सकती हैं। स्त्रियाँ भी मानव-हृदय रखती हैं और इस कारण उनमें ये दोष हों ही, उसे ऐसा विश्वास न था। नीच कौम की स्त्रियों, मज़दूरनियों और नौकरानियों के बदचलन होने का कारण वह समझता था, उन्हें वह क्षम्य भी समझता था ; क्योंकि इसका कारण उनका थोड़े में गुज़र न हो सकना ही था। किन्तु किसी शिक्षित, सभ्य तथा साधन-सम्पन्न स्त्री के विषय में कोई ऐसी बात करता तो वह उस बात को कभी नहीं मानता था ; और बात करनेवाले को हरा देता था।

अपने ऊपर पन्द्रह हज़ार की चोरी का आरोप है, और ऐसे मुलजिम को लगभग उसके बराबर उम्र की ही उच्च श्रेणी की और संस्कारी स्त्री प्रेम करती है—ये दोनों विचार कठोर प्रहार की तरह उसके मस्तिष्क में टकराये। उसे यह ठीक नहीं लगा।

'आपकी तबियत अभी जैसी चाहिये, वैसी दुरुस्त नहीं है। यह ठीक है न?' विजया ने पूछा और पूछने के साथ ही जगदीश के हाथ को दृढ़ता से पकड़ लिया, मानो वह बुखार का तापमान देखती हो। इससे जगदीश को बड़ा रोमाञ्च हुआ। फिर विजया ने हँसकर अपने पास पड़े एक कीमती शाल को देकर जगदीश से पूछा—आपको मोटर में ठण्ड तो नहीं लगती? यह शाल ओढ़ लीजिये!

बीसवीं सदी का यन्त्र मनोभावों का खयाल नहीं रखता। वह तो उसे सौंपा हुआ कार्य करता जाता है। मानव-हृदय की क्षुद्र दुर्बलता का ज़रा भी ख्याल किये

बिना मोटर आगे बढ़ती जा रही थी। उसमें बैठनेवाले भावुकों की बिना परवा किये आगे बढ़ते यन्त्र को ज़रा भी ग्लानि नहीं होती थी। देखते-देखते मोटर शहर के बाहर आ गई और वहाँ से कुछ दूर पर नदी के किनारे पहुँच गई। एकाएक शॉफ़र ने कार रोकी और पूछा—बाई साहब, मोटर कहाँ खड़ी कर दूँ?

विजया शॉफ़र और मोटर का अस्तित्व भूल गई थी। उसने कहा—बस, यहीं पर। चलो जगदीश, ज़रा किनारे पर घूम आयें।

(२२)

जगदीश को भागकर जाना था। कहाँ भागकर जाना था, इसकी उसे खबर न थी। विजया को नदी के किनारे और जगदीश के साथ घूमना था। संस्कारों की असमानता से बेचैन उसकी आत्मा में कोकिला और जगदीश का प्रेम देखकर भयंकर असन्तोष प्रकट हुआ था। कोकिला को ऐसा पति मिला था कि उसकी निष्फलताएँ होने पर भी कोकिला उस पर जान देती थी। विजया को ऐसा पति मिला था जिसको सफलता होने पर भी उसका उल्लास उसे देखते ही मिट जाता था। 'किस लिए मुझे ऐसा पति नहीं? मैं क्या जान देनेवाली प्रेमिका नहीं?' इस दम्पति के प्रेम को देखकर विजया को हर्ष भी होता और ईर्ष्या भी। उसके संस्कार ने उसे चेतावनी दी कि पति के सिवा दूसरा पर-पुरुष कहलाता है; और उसकी तरफ़ ज़रा भी झुकना समाज में घोर पाप माना जाता है। फिर उसकी रस-वृत्ति ने तीव्र वेदनामय होकर पुकारा कि इसमें मेरा क्या? मुझे कहाँ से तृप्ति मिलती है? मुझे असन्तोष होगा तो यह पाप फिर किसे लगेगा?'

कितने ही समय तक संस्कार की जीत रही। लालजी को सारे रूप-गुणों का निधान मानकर विजया ने अपनी रस-वृत्ति को सन्तुष्ट रखने का बड़ा प्रयास किया। जगदीश को देखना और उसका विचार करना विजया ने छोड़ दिया था। वह भी यहाँ तक कि उसकी अस्वस्थता के दूसरे दिन से लेकर अब तक वह जगदीश के घर नहीं गई थी। अलबत्ता, सभ्य पड़ोसी के तौर पर खबर पूछती या पुछवा लिया करती थी और कोकिला के साथ बातें कर लेती थी; किन्तु जगदीश को चूमते हुए पकड़ी गई कोकिला को देखकर उसके हृदय में उत्पन्न हुई उमंग ने उसे शान्त कर दिया, और सद्गुणी गृहिणी की तरह वह स्थिर हो गई।

थोड़े ही समय में इस स्थिरता के पाये फिर डगमगाने लगे। रस-वृत्ति के विद्रोह

जैसा प्रबल विद्रोह किसी दलित जनता में भी नहीं होता। जगत् को जलाने के लिए उफनते ज्वालामुखी पर ढक्कन रखकर उसे दबा देने का प्रयत्न अभी नहीं हुआ था। ऐसा प्रयत्न हुआ भी होगा तो वह सफल नहीं हुआ था। ज्वालामुखी की ज्वाला से तो भोग देने पर ही छुटकारा था। रस-वृत्ति की उमंग को सन्तुष्ट करने पर ही उससे छुटकारा मिलता है। यदि उसे सन्तुष्ट न किया जाय तो वह संस्कार को जला डाले, चारित्र्य को बिगाड़ दे और जीवन की आहुति कर उसे धधकता अंगार या बिल्कुल राख ही बना देती है। रस-वृत्ति का विरोध पुण्य नहीं है। जहाँ रस-वृत्ति को पूर्ण सन्तोष होता है, वहाँ महापुण्य प्रकट होता है। इस रस-वृत्ति को दबाने का जहाँ प्रयत्न होता है, वहाँ सैकड़ों पाप सताते रहते हैं।

विजया ने ज्यों-ज्यों लालजी से सन्तुष्ट होने का प्रयत्न किया, त्यों-त्यों उसकी रस-वृत्ति अधिक तीव्र होती गई। उम्र और संस्कारों के बराबर न मिलने से पति-पत्नी की रस-वृत्तियाँ एक नहीं हो सकतीं। एक होने के प्रयत्न में परस्पर टकराकर उनकी वृत्तियाँ आमने-सामने थककर बैठ जाती हैं। प्रेम की भूखी विजया को सतत प्रेमोपचार करने की लालजी में शक्ति न थी। और उसे भोगने की कोमलता भी उसमें नहीं थी। ज्यों-ज्यों वह जगदीश को भूलना चाहती, त्यों-त्यों वह उसकी स्मृति में अधिक स्पष्ट रूप में अंकित होता जाता। मानो लालजी का परिचय घटकर जगदीश की तरफ़ ममत्व और अपनापन बढ़ता जाता हो। लालजी पराया बन गया। पराया तो पहले ही से था, यह सत्य अधिक प्रबलता से ही प्रकट हुआ, कारण अपना पात्र बनाने लायक एक पुरुष उसे मिल गया था।

अत्यन्त बेचैन विजया दो-तीन दिन से शाम को नियमित रूप से घूमने जाती थी। लालजी को कौंसिल के काम में दिलचस्पी हो गई थी। इसलिए वह उसी प्रवृत्ति में व्यस्त रहता था। प्रवृत्ति की भी आदत पड़ जाती है। मिलने की ज़रूरत न होने पर भी उसे मनुष्यों से मिलते रहने की आदत पड़ गई थी। विजया अकेली ही घूमने जाती थी। शहर के बाहर मोटर की गति बढ़वाकर उसकी तेज़ी अनुभव करने में वह अपनी कुछ बेचैनी भूलने का प्रयत्न करती थी। जगदीश को घर के आगे से निकलते हुए विजया ने देखा। वह तैयार रखी हुई मोटर में जगदीश के पीछे गई; और उससे अपने साथ चलने को कहा। जगदीश यह चाहता ही था कि वह शीघ्र भाग सके और उसने आमन्त्रण स्वीकार कर लिया। विजया की असन्तुष्ट

रस-वृत्ति ने रस-पात्र माने हुए व्यक्ति को अचानक अपनी बगल में ही देखा। आनन्द के उन्माद में यह रस-वृत्ति अमर्याद बनने लगी। रसिक और रस-पंडितों ने रस-प्रदर्शन की मीमांसा करते हुए रस-शास्त्र रचा है। परकीया और सामान्या को वह भूला नहीं। इसमें मानवता प्रकट होती है। रस की शक्यता अनिर्धारित पात्रों में सम्भव है। रस और प्रेम का सच्चा रूप क्या होगा?

नदी-किनारे पहुँचने तक सूर्यास्त हो चुका था। जगदीश और विजया नीचे उतरे। इस समय दूसरे गोलार्ध को प्रकाश देने की तैयारी में सूर्य अपना तेज समेट-कर क्षितिज के नीचे उतरने की तैयारी कर रहा था। पश्चिम-आकाश में आये हुए बादल सूर्य की रंगीन किरणों से रँगकर रंगीन वस्त्रों-जैसे मालूम होते थे। भेंट के लिए उत्सुक नदी का प्रशस्त पाट मानो बहुत दिनों में मिला हो, इस प्रकार पवन ज़ोर से उसके ऊपर मँडरा रहा था, और अति रसिक नायक का तूफ़ानी विलास मानो नदी को पसन्द हो, इस प्रकार वह अपनी लहरों को हवा के साथ अधिक आन्दोलित होने दे रही थी। किनारे के वृक्ष भी इस मस्त वातावरण का अनुमोदन करके, तेज़ी से बढ़ते हुए अन्धकार में, इससे भी अधिक तूफ़ान आवश्यक मानकर, आनन्द से हिल रहे थे।

पानी के पास पहुँचने के पहले कई टीले चढ़ने-उतरने पड़ते थे। एक टीला उतरते हुए ज़रा विजया का पैर फिसला। विजया ने फ़ौरन पास चलते जगदीश का हाथ पकड़ लिया। उसने फिर हाथ नहीं छोड़ा। एक-सी ज़मीन आने पर उसने अपने हाथ के ऊपर की बँगड़ी बताकर कहा—देखो जगदीश भाई, यह बँगड़ी कैसी है?

'बहुत अच्छी है।'

'यों बिना देखे ही प्रशंसा न करो। तुम्हें यह पसन्द है?'

'मैं ठीक कह रहा हूँ। मुझे बहुत पसन्द है।'

'तुम यह बँगड़ी कोकिला बहिन को पहना दो न? मैं यह तुम्हें भेंट करती हूँ।' यह कहकर विजया हीरों की बँगड़ी निकालने लगी।

'नहीं, नहीं, यह मुझसे न ली जायगी। उसे बँगड़ी पहननी होगी तो मैं खुद खरीदकर ला दूँगा।' जगदीश ने कहा।

'पर देखो। कोकिला बहिन को बँगड़ी मैंने पहनी है तो मेरी बँगड़ी उन्हें पहननी ही चाहिए।' कहकर विजया ने हाथ पर पहनी हुई दूसरी सादी बँगड़ी की

तरफ़ जगदीश का ध्यान खींचा। जगदीश ने पहचाना कि वह सादी बँगड़ी कोकिला की ही थी। जगदीश तुरन्त समझ गया कि कोकिला ने ज़रूरत पड़ने पर यह बँगड़ी बेच डाली होगी। अपनी अस्वस्थता के बाद कोकिला के हाथ में केवल कांच की ही बँगड़ी जगदीश ने देखी थी।

'तुम्हारे पास यह कैसे आई?' समझ जाने पर भी जगदीश ने कारण पूछा।

'मुझे इसका गढ़ाव बहुत अच्छा लगा, इसलिए मैंने यह मांग ली।' विजया ने अर्ध-सत्य कहा। पर बँगड़ी में पसन्द आने लायक कुछ भी न था, किन्तु कोकिला के हाथ पर रहने के कारण उस गहने से जगदीश के हाथ का प्रेमपूर्ण स्पर्श अनेक वार हुआ होगा, यह समझकर विजया की दृष्टि में उसका मूल्य बहुत बढ़ गया था। और जब कोकिला ने बँगड़ी गिरवी रखी तभी विजया ने उसे पहनने की आज्ञा भी उससे ले ली थी।

हृदय की विचित्रता ठीक तौर से व्यक्त नहीं की जा सकती।

नदी के किनारे एक ऊँची जगह पर दोनों आये। वहाँ बैठने के लिए विजया ने कहा। और दोनों वहाँ नीचे पैर लटकाकर बैठ गये। जगदीश के बैठने के बाद तुरन्त विजया ने अपना सिर जगदीश की जांघों पर रख दिया।

जगदीश मामूली प्रसंगों से चकित होनेवाला नहीं था, किन्तु विजया के इस कृत्य से उसे भाग जाने को मिली हुई चिट्ठी पढ़ने से भी अधिक आश्चर्य हुआ। आखिर उसने विजया का सिर न गोद से हटाया और न उठाया। पुण्याचरण का घमण्ड पापाचरण की अपेक्षा अधिक पापमय है। पापी के सामने अपना पुण्य दिखलाना यह अपने ग़रीब साथी को बार-बार अपना खजाना बतलाकर चिढ़ानेवाले धनवान जैसा ही हल्का और नीच काम है। उच्च जगत् में ऐसा भी कोई पुण्यवान जन्मा है जो पापी का तिरस्कार कर पवित्र रह सके?

विजया के मस्तक को अपनी गोद में रखने देकर अत्यन्त मृदुता से जगदीश ने पूछा—विजया बहिन, तुम्हें क्या हुआ है? मैं तुम्हें हाथों में लेकर मोटर में बिठला दूँ?

'मुझे मोटर में नहीं बैठना। मैं तो अपने जीवन से ऊब उठी हूँ।' विजया बोली।

'इस तरह क्यों दुखी होती हो? तुम्हारे जीवन में दुःख कहाँ है?' जगदीश ने पूछा।

'दुःख ?' जगदीश की गोद से सिर उठाकर उसके सामने देखकर विजया ने कहा—दुःख ? तुम स्त्री नहीं ; इसलिए मेरा दुःख क्या जानो ! तुमने पुरुष होकर कोकिला जैसी पत्नी को पाया है ; इसलिए तुम्हें मेरे दुःख की क्या खबर पड़ सकती है ?

जगदीश कुछ समझा। अच्छी स्थिति के स्त्री-पुरुष अनेक बार अपनी दशा से असन्तुष्ट हो जाते हैं। उसे आश्वासन दिया—मैं सुखी हूँ, यह तुम मानती हो ?

'क्यों नहीं ? और तुम सुखी हो या नहीं ; किन्तु कोकिला बहिन तो सुखी ही हैं ; यह मानती हूँ। मैं क्यों ऐसा सुख न देखूँ ?' अत्यन्त कष्ट से विजया ने कहा। जगदीश हँसा। सचमुच कोकिला अपने को सुखी ही मानती थी।

'तुम इस सुख का कारण कोकिला से पूछ देखो।' जगदीश ने कहा।

'मैंने पूछ देखा है।'

'तो अब उसका अनुकरण करो !'

'मैं ऐसा ही तो करती हूँ।' खिल-खिलाकर हँसते-हँसते विजया बोली—इसीलिए तो मैं तुम्हें साथ लाई हूँ।

जगदीश समझ तो गया ही कि असन्तुष्ट विजया को उससे प्रेम हुआ है। वाक्पटुता में वह हमेशा कोकिला से हारता ही था ; क्योंकि हारने में उसे आनन्द आता था। दूसरी स्त्रियों के साथ चतुरता-भरे शब्द-विलास में वह नहीं पड़ा था ; इसलिए विजया-जैसी चतुर स्त्री की घुमावदार बात का जवाब कैसे दिया जाय, यह वह न समझ सका।

'पर मुझे साथ लाकर क्या करना है ?' जगदीश ने पूछा।

किसी-किसी मौके पर पुरुषों की नासमझी, अज्ञान या भोलापन स्त्रियों की दृष्टि में अधिक मोहक बन जाता है। प्रियतम की किसी क्षण की अस्थिर जड़ता से प्रियतमा के हृदय में प्रेम की धारा फूट निकलती है। स्त्री के प्रेम में वात्सल्य का कितना बड़ा अंश होगा ?

'तुम्हें साथ लाकर मैं क्या करूँगी ? देखो, मैं ऐसा करूँगी।' कहकर विजया ने अपना सिर जगदीश की गोद पर टिका दिया। विजया का हृदय उसकी आँखों में उतर आया। सूर्य अस्त हो चुका था। उसकी साक्षी किसी को दी जाय, ऐसा न था। केवल विजया की आँखों में से अपनी आँखें हटाकर जगदीश ने ऊपर देखा। प. उस ...य आकाश में केवल दो तारे टिमटिमाते दिखे। जगदीश को भ्रम हुआ कि कहीं

कोकिला की आँखें तो नहीं हँसती ? यदि कोकिला उसे इस स्थिति में देखती तो हँसती ही। उसे यह विश्वास था कि वह सिवा इसके और कुछ नहीं कहती। इतने में दूर पर मोटर का हार्न बजाकर शाफ़र ने चलने के समय की तरफ़ दोनों का ध्यान खींचा।

'विजया बहिन, मैं योगी नहीं। मैं तो बहुत निर्बल मनुष्य हूँ। ऐसी हरकत मुझे ज़रूर डुबो देगी। तुमने मेरी परीक्षा ले ही ली ; अब बस करो न ?' जगदीश ने वास्तविक बात कही।

'तुम्हारी परीक्षा मैं अपनी ज़िन्दगी भर लेती ही रहूँगी।'

'तुमने मुझे कितनी कठिनाई में डाल दिया है, यह तुम्हें बतलाऊँ ?' जगदीश ने पूछा।

'ऐसी की ऐसी ही मुझे बैठी रहने दो तो मैं बहुत समझूँगी।'

'मेरी स्थिति तो तुम जानती हो न ? कोकिला के गहनों पर मेरी गुज़र चलती है।'

'ऐसा ख़्याल तो कोकिला को करना ही चाहिये और उसे तो विश्वास है कि जिस समय भी तुम चाहो, उतना कमा सकने में समर्थ हो।' विजया ने कहा।

'हम दोनों के विषय में लोग क्या कहेंगे ? मेरी तो कोई भारी प्रतिष्ठा नहीं कि जिससे कुछ खोने का डर हो। पर तुम तो एक धनाढ्य और प्रतिष्ठित नागरिक की पत्नी हो !'

'यों कहकर तुम मेरा भयंकर अपमान करते हो, यह न भूलो !'

'माफ़ करो, मैं अपमान नहीं करना चाहता। मैं तो तुम्हारी प्रतिष्ठा को कायम रखने की बात कह रहा हूँ।'

'मुझे इस प्रतिष्ठा की आवश्यकता नहीं।'

'उच्च समाज हमारे सम्बन्ध को पाप मानेगा।'

'तुम्हारा समाज तो बेवकूफ है। अयोग्य पति के साथ भी पत्नी के लिए व्यवहार चालू रखना तुम्हारा समाज पुण्य कहता है। ठीक है न ? मुझे इस पुण्य का फल नहीं चाहिये।' विजया ने कहा।

'मेरी पुण्य की भावना बहुत ऊँची नहीं है। कोकिला मेरी पत्नी न होती तो मैं अवश्य किसी विजयालक्ष्मी को अपने हृदय में स्थान देता। किन्तु इस हृदय को तो कोकिला ने पराजित कर दिया है। कहो, अब मैं क्या करूँ ?' जगदीश ने पूछा।

विजया ने तुरन्त अपना सिर हटा लिया। जगदीश ने समझा कि विजया को बुरा मालूम हुआ है। किन्तु और दूसरा कोई इलाज न था। सन्ध्या रात में परिणत हो रही थी और यह सम्भव न था कि वह विजया के साथ वापस जाता। इसलिए उसने इस प्रसंग को समाप्त कर देने के लिए कहा—बुरा न मानना। पर एक दूसरी तुम्हें चौंकानेवाली बात अपने विषय में बतलाऊँ। मैंने पन्द्रह हज़ार की चोरी की है, और पुलिस से बचने को भागता हुआ तुम्हारे साथ यहाँ आया हूँ।

'झूठी बात है!' विजया ने कहा।

'बात झूठी होगी, पर इतना तो ठीक ही है कि मेरे ऊपर आरोप लगाकर मुझे पकड़ने की कोशिश हो रही है।'

'खाओ मेरी सौगन्ध!'

'तुम्हारी सौगन्ध, यह बात ठीक है।'

'और झूठ हुई तो?'

'जो झूठ हो तो मैं तुम्हारे पास कल उपस्थित हो जाऊँगा। फिर तुम जो उचित समझो वह दण्ड देना।'

'ठीक, तो तुम साथ नहीं चलोगे?'

'नहीं, पर मैं तुम्हें मोटर तक छोड़ने चलता हूँ।'

'इसकी कोई आवश्यकता नहीं। मुझे डर नहीं लगता।' ज़रा सख्ती से विजया ने कहा; और फिर धीरे-धीरे टीले से उतरने लगी। जगदीश थोड़ा साथ चला और बोला—मेरा एक काम करो न?

'क्या काम?'

'कोकिला यह बात नहीं जानती। शायद अब उसने जाना होगा। उससे इतना कहना कि मैं अच्छी तरह हूँ, और झूठे आरोप से बचने के लिए भाग गया हूँ।'

'ज़रूर कहूँगी, और कुछ?'

'और तो क्या?' जगदीश ने कहा।

उत्तर में विजया ने झपटकर जगदीश का हाथ अपने दोनों हाथों में ले लिया; और अत्यन्त आवेश से उसे दबाकर छोड़ दिया। फिर जगदीश के सामने बिना देखे विजया शीघ्रता से नीचे उतर गई।

धुँधले अँधेरे में टीलों पर चढ़ती-उतरती हुई विजया को जगदीश देखता रहा।

फिर वह अँधेरे में छिप गई। और तब मोटर का हार्न बोला और बिजली का प्रकाश आगे बढ़ता हुआ जगदीश ने देखा। वह वापस फिर टीले की चोटी पर आकर खड़ा हो गया। उस समय केवल तारों का प्रकाश था। उसमें उसने देखा कि पास में एक जगमगाती वस्तु पड़ी हुई है। वह उसने उठा ली। उसे देखने पर पता चला कि वह विजया की हीरक-जड़ित बँगड़ी थी।

जगदीश को ऐसा लगा कि उसका हृदय भयंकर संघर्ष के बीच है। उसे ऐसा मालूम हुआ मानो वह लोगों की दृष्टि में चोर हो; पर इस प्रकार सबको भयानक लगनेवाले मनुष्य को कोकिला चाहती थी। खैर वह तो पगली है, किन्तु आज इसी भयानक मनुष्य को चाहने के लिए एक दूसरी स्त्री ने तैयारी की थी। उसके हृदय की विकलता एक भयंकर अट्टहास के रूप में बदल गई और वह खूब ज़ोर से हँसा, जिससे सारा वातावरण काँप उठा।

(२३)

जगदीश के हृदय की व्याकुलता ऐसे पागल-जैसे अट्टहास द्वारा बाहर न निकल गई होती तो वह अवश्य पागल बन जाता। संसार की, समाज की, मनुष्य की और संयोगों की विषमता को देखते हुए हास्य या रुदन दोनों में से एक ही आवश्यक है।

इतने में टीले की एक तरफ़ से कोई मनुष्य निकल आया और उसने कर्कश आवाज़ में कहा—क्या है? क्यों हँसता है?

जगदीश को फिर हँसी आई। जैसे किसी शिकारी प्राणी की आँखें अँधेरे में चमकती हैं वैसे ही उसकी आँखें चमक रही थीं।

'पागल है?' उसने पूछा।

'हूँ तो नहीं, पर हो जाऊँगा।' हँसने के बाद जगदीश ने कहा।

'वह स्त्री कहाँ गई?' आवाज़ कठोर होने पर भी साफ़ थी। वह जगदीश के पास आया। उसकी कमर पर धोती लिपटी हुई थी। शेष सारा शरीर उसका खुला हुआ था। सिर के लम्बे खुले हुए बाल उसकी पीठ पर लटक रहे थे।

'जहाँ चाहती होगी, वहाँ गई। पर तुम्हें क्या काम है भाई?' जगदीश ने कहा।

'मुझे क्या काम होगा? काम तो तुझे होगा। तू उसके साथ जो आया था। मुझे जब काम होगा उस दिन तुझे नहीं पूछना पड़ेगा।' उस मनुष्य ने तेज़ होकर

कहा। इतने में जगदीश के हाथ में रही बँगड़ी चमक उठी। और उस पर मनुष्य की नज़र पड़ गई। उसने पूछा—तेरे हाथ में क्या है?

'हीरे की बँगड़ी।'

'इसका क्या करेगा?'

'देखो, इसका मैं यह करूँगा।' कहकर जगदीश ने हाथ की बँगड़ी ज़ोर से नदी के पानी में फेंक दी। अन्धकार में भी चमकता अर्धवर्तुल पानी में दिखलाई दिया।

'ठीक, है तो कोई फक्कड़ आदमी! अरे तू कौन है?' जगदीश की पीठ पर हाथ ठोककर उस मनुष्य ने पूछा। जगदीश को वह कोई साधु मालूम हुआ। उसकी मुस्कान उसकी आँखों की क्रूरता को बढ़ा रही थी।

'मैं चोर हूँ। पन्द्रह हज़ार की चोरी करके भागा हूँ।' जगदीश ने कहा।

'चोर होता तो यों अपरिचित आदमी से इस प्रकार न कहता।'

'पर तुमने देखा न कि मैंने वह बँगड़ी फेंक दी।'

'तो तेरी चोरी तेरे पास न रहेगी। बोल, कहाँ माल रखा है?' मानो जगदीश पर झपटने की वह तैयारी करने लगा।

'तो तुम खोज निकालो!'

जगदीश इतना ही कह पाया था कि इतने ही में साधु ने झपटकर जगदीश का गला पकड़ लिया। उसकी आँखों में अङ्गारे चमकने लगे। उसके खुले होठों में से उसके दाँतों की कड़कड़ाहट जगदीश ने सुनी। उसे क्रूरता से फाड़ खाने में मज़ा पानेवाले भेड़िये की छाप साधु में मालूम हुई। जगदीश के गले में साधु के नख घुस गये। साधु के पञ्जों में उसे बल मालूम हुआ। जगदीश को कालेज के समय की शरारतें याद आईं। उसने साधु का हाथ छुड़ाने का प्रयत्न किया, किन्तु मगर के दाँतों की तरह उसके हाथ अधिक सख्त होते गये। जगदीश ने दाव पाकर साधु को ज़मीन पर दे पटका, पर इस तरह पटकने पर भी साधु ने जगदीश का गला न छोड़ा। जगदीश भी साधु के साथ ही ज़मीन पर गिरा। साधु का बल कम न था और जगदीश ने सोचा कि यदि साधु को ज़रा भी ढीलापन मालूम होगा तो वह ज़रूर गला दबाकर मार डालेगा। उसने दाव पाकर साधु के हाथ को ऐसी हालत में मोड़ दिया कि अगर वह अपनी पकड़ न छोड़ता तो उसका हाथ मुड़कर टूट जाता। साधु को अपना हाथ

तुड़वाना नहीं था। उसने अपनी पकड़ छोड़ दी और जगदीश तुरन्त खड़ा हो गया। साथ ही साधु भी झपटकर उठा।

'बाबाजी, बहुत गड़बड़ करोगे तो इस टीले पर से नीचे ढकेल दूँगा।' जगदीश ने डर दिखलाया। पर साधु ने मुस्कराकर अपने विकराल दाँतों का प्रदर्शन किया; और तिरस्कार से उत्तर दिया—साँस ले-ले, साँस! बोलते तो ठीक-ठीक बनता नहीं, मुझे नीचे ढकेलेगा। साधु की बात ठीक थी। बुखार से हाल ही में उठे हुए जगदीश ने कसरत करना भी शुरू नहीं की थी। उसका दम फूल गया था। और यद्यपि उसकी शक्ति की कमी नहीं हुई थी, तथापि इस प्रकार अजनबी मनुष्य के साथ लड़ते हुए उसे मुश्किल पड़ी ही। साधु की साँस नहीं चढ़ी थी।

वह विचार ही कर रहा था कि इतने में तीन मनुष्य टीले पर चढ़ आये। कालेज-जीवन के आज़ादी के दिन होते तो प्राचीन राजपूतों की तरह वह जितने होते उतने मनुष्यों से अकेला ही जूझता। किन्तु उन दिनों की स्फूर्ति और बेपरवाही आज वापस आ सके, ऐसा न था। शीघ्र डर जानेवाली उसकी प्रकृति न थी। पर वह कोई मारपीट पर गुज़र करनेवाला गुण्डा न था। ऐसी मारपीट तो अनावश्यक थी। और साधु ने नाहक भ्रम में आकर उसकी शुरूआत की थी। पर अब वह कह क्या सकता था? वह कुछ कहे, इसके पहले ही साधु बोला—देखते क्या हो? पकड़ो इसकी गर्दन और निकलवाओ इससे पन्द्रह हज़ार रुपए!

दो मनुष्य जगदीश की तरफ़ बढ़े; परन्तु तीसरा मनुष्य ज़रा झिझका। जगदीश ने सोचा कि चोरी तो सिर पर है ही; अब खून से डरने की ज़रूरत नहीं। उसने दृढ़ निश्चय किया। इस छोटे टीले पर इतने मनुष्य सरलता से नहीं चढ़ सकते थे। यह जानकर अपने सामने आनेवाले को टीले से नीचे गिरा देने का उसने निश्चय किया। दो मनुष्य उस पर टूट पड़े। इसके पहले एक क्षण में ही तीसरे आदमी ने कहा—अरे रुक जाओ! पिताजी यह तो अपना ही आदमी है। साधु से उस मनुष्य ने कहा। साधुओं को अपने से दूसरों द्वारा पिताजी, कहलाने की बड़ी इच्छा रहती है। यह बाघ-भेड़िये के वंशज जैसा साधु भी अपने को 'पिताजी' का सम्बोधन कराता मालूम हुआ। जगदीश के पास आते ही दोनों व्यक्ति रुक गये। चन्द्रमा निकल आया था और उसका प्रकाश टीले पर छिटकने लगा था।

'क्या? क्या कहता है?' साधु ने पूछा।

कहा । इतने में जगदीश के हाथ में रही बँगड़ी चमक उठी। और उस पर मनुष्य की नज़र पड़ गई । उसने पूछा—तेरे हाथ में क्या है ?

'हीरे की बँगड़ी ।'

'इसका क्या करेगा !'

'देखो, इसका मैं यह करूँगा।' कहकर जगदीश ने हाथ की बँगड़ी ज़ोर से नदी के पानी में फेंक दी। अन्धकार में भी चमकता अर्धवर्तुल पानी में दिखलाई दिया।

'ठीक, है तो कोई फक्कड़ आदमी ! अरे तू कौन है ?' जगदीश की पीठ पर हाथ ठोककर उस मनुष्य ने पूछा। जगदीश को वह कोई साधु मालूम हुआ। उसकी मुस्कान उसकी आँखों की क्रूरता को बढ़ा रही थी।

'मैं चोर हूँ। पन्द्रह हज़ार की चोरी करके भागा हूँ।' जगदीश ने कहा।

'चोर होता तो यों अपरिचित आदमी से इस प्रकार न कहता।'

'पर तुमने देखा न कि मैंने वह बँगड़ी फेंक दी।'

'तो तेरी चोरी तेरे पास न रहेगी। बोल, कहाँ माल रखा है !' मानो जगदीश पर झपटने की वह तैयारी करने लगा।

'तो तुम खोज निकालो !'

जगदीश इतना ही कह पाया था कि इतने ही में साधु ने झपटकर जगदीश का गला पकड़ लिया। उसकी आँखों में अङ्गारे चमकने लगे । उसके खुले होठों में से उसके दाँतों की कड़कड़ाहट जगदीश ने सुनी । उसे क्रूरता से फाड़ खाने में मज़ा पानेवाले भेड़िये की छाप साधु में मालूम हुई। जगदीश के गले में साधु के नख घुस गये । साधु के पञ्जों में उसे बल मालूम हुआ। जगदीश को कालेज के समय की शरारतें याद आईं । उसने साधु का हाथ छुड़ाने का प्रयत्न किया, किन्तु मगर के दाँतों की तरह उसके हाथ अधिक सख्त होते गये। जगदीश ने दाव पाकर साधु को ज़मीन पर दे पटका, पर इस तरह पटकने पर भी साधु ने जगदीश का गला न छोड़ा। जगदीश भी साधु के साथ ही ज़मीन पर गिरा। साधु का बल कम न था और जगदीश ने सोचा कि यदि साधु को ज़रा भी ढीलापन मालूम होगा तो वह ज़रूर गला दबाकर मार डालेगा। उसने दाव पाकर साधु के हाथ को ऐसी हालत में मोड़ दिया कि अगर वह अपनी पकड़ न छोड़ता तो उसका हाथ मुड़कर टूट जाता। साधु को अपना हाथ

तुड़वाना नहीं था। उसने अपनी पकड़ छोड़ दी और जगदीश तुरन्त खड़ा हो गया। साथ ही साधु भी झपटकर उठा।

'बाबाजी, बहुत गड़बड़ करोगे तो इस टीले पर से नीचे ढकेल दूँगा।' जगदीश ने डर दिखलाया। पर साधु ने मुस्कराकर अपने विकराल दाँतों का प्रदर्शन किया; और तिरस्कार से उत्तर दिया—साँस ले-ले, साँस! बोलते तो ठीक-ठीक बनता नहीं, मुझे नीचे ढकेलेगा। साधु की बात ठीक थी। बुखार से हाल ही में उठे हुए जगदीश ने कसरत करना भी शुरू नहीं की थी। उसका दम फूल गया था। और यद्यपि उसकी शक्ति की कमी नहीं हुई थी, तथापि इस प्रकार अजनबी मनुष्य के साथ लड़ते हुए उसे मुश्किल पड़ी ही। साधु की साँस नहीं चढ़ी थी।

वह विचार ही कर रहा था कि इतने में तीन मनुष्य टीले पर चढ़ आये। कालेज-जीवन के आज़ादी के दिन होते तो प्राचीन राजपूतों की तरह वह जितने होते उतने मनुष्यों से अकेला ही जूझता। किन्तु उन दिनों की स्फूर्ति और बेपरवाही आज वापस आ सके, ऐसा न था। शीघ्र डर जानेवाली उसकी प्रकृति न थी। पर वह कोई मारपीट पर गुज़र करनेवाला गुण्डा न था। ऐसी मारपीट तो अनावश्यक थी। और साधु ने नाहक भ्रम में आकर उसकी शुरूआत की थी। पर अब वह कह क्या सकता था? वह कुछ कहे, इसके पहले ही साधु बोला—देखते क्या हो? पकड़ो इसकी गर्दन और निकलवाओ इससे पन्द्रह हज़ार रुपए!

दो मनुष्य जगदीश की तरफ़ बढ़े; परन्तु तीसरा मनुष्य ज़रा झिझका। जगदीश ने सोचा कि चोरी तो सिर पर है ही; अब खून से डरने की ज़रूरत नहीं। उसने दृढ़ निश्चय किया। इस छोटे टीले पर इतने मनुष्य सरलता से नहीं चढ़ सकते थे। यह जानकर अपने सामने आनेवाले को टीले से नीचे गिरा देने का उसने निश्चय किया। दो मनुष्य उस पर टूट पड़े। इसके पहले एक क्षण में ही तीसरे आदमी ने कहा—अरे रुक जाओ! पिताजी यह तो अपना ही आदमी है। साधु से उस मनुष्य ने कहा। साधुओं को अपने से दूसरों द्वारा पिताजी, कहलाने की बड़ी इच्छा रहती है। यह बाघ-बेड़िये के वंशज जैसा साधु भी अपने को 'पिताजी' का सम्बोधन कराता मालूम हुआ। जगदीश के पास आते ही दोनों व्यक्ति रुक गये। चन्द्रमा निकल आया था और उसका प्रकाश टीले पर छिटकने लगा था।

'क्या? क्या कहता है?' साधु ने पूछा।

'यह तो जुगलकिशोर के परिचित हैं। इन्हें भाग जाने को कहने के लिए मुझे ही भेजा था।' उस मनुष्य ने कहा।

जगदीश ने ग़ौर से देखा तो चिट्ठी देनेवाला यह वही आदमी मालूम हुआ। साधु जगदीश के पास आया, और उसकी पीठ पर हाथ रख ज़रा हँसकर बोला—यह लो, मुझे पहले ही क्यों नहीं बताया?

'तुम्हें बिना पहचाने क्या कहता? कुछ कहता भी तो इसके पहले ही तुमने मेरा गला धर दबाया।' जगदीश ने कहा।

'यह तो पिताजी के काम ही हैं। खुश हों तो राज्य दे दें और गुस्सा हों तो जान ले लें।' एक मनुष्य ने कहा। साधु को रिझाने की अपेक्षा खिजाने में देर नहीं लगती और यह उससे अधिक सरल है।

'तू है तो मज़बूत। ताक़त भी खूब है। पर ज़्यादा साँस रोकते हुए दम उखड़ जाता है। क्या प्राणायाम सीखेगा?' साधु ने पूछा।

इस भयंकर साधु के पास कुछ सीखा जा सके तो कैसे, इसका उत्तर देने का जगदीश निश्चय कर सके; इसके पहले ही नदी के किनारे पर लालटेनों का प्रकाश दिखलाई दिया। किनारे पर मनुष्य भी दिखे। टीले पर के पाँचों आदमी बैठ गये। किनारे से एक आवाज़ आई—अरे, टेकरे पर कौन है?

पुलिसवालों को टूटी-फूटी हिन्दुस्तानी भाषा में बोलने का कोई गुप्त नियम पुलिस-विभाग में होगा ही, इस विषय में विश्वसनीय जानकारी मालूम नहीं होती। पर बिल्ले और पट्टे के होने पर भी, उनकी हिन्दुस्तानी बातचीत से उन्हें पुलिस के आदमी के तौर पर अधिक स्पष्ट रूप में फौरन पहचान लेने देता है।

'आओ, आओ, जमादार साहब! यहाँ तो हम लोग हैं। और पिताजी बैठे हैं; आओ!' टीले से एक आदमी ने उत्तर दिया। यह बोलनेवाला जगदीश को पहचान लेनेवाला आदमी था।

'अरे क्या आयें, यार! मर मिटे इस पुलिस की नौकरी में। क्यों पिताजी, अच्छे तो हैं?' जमादार ने कहा। गुजराती बोलते-बोलते सिपाहीगीरी का ख़्याल आते ही जमादार ने हिन्दुस्तानी में बोलना शुरू किया।

'हाँ जमादार, आओ। ज़रा चिलम पीते जाओ।' कर्कश आवाज़ में साधु ने कहा।

'नहीं पिताजी ! आज तो मरने को भी फुर्सत नहीं है।'

'आखिर ऐसा कौन-सा बड़ा काम है ? इस वक्त भी फुर्सत नहीं।' जगदीश के रिचित आदमी ने कहा।

'भाई, तुमको हमारे हाल की क्या खबर ? आज तो एक भारी चोरी हुई है। कोई कमबख्त पंद्रह हज़ार लेकर भाग गया है। सारा शहर खोजते फिरते हैं, किन्तु उसका पता नहीं चलता। क्या करें ? नौकरी बुरी चीज़ है।'

'ऐसा ? यह चोरी कहाँ हुई ?' उस आदमी ने पूछा और जगदीश के सामने देखा। जगदीश का मुख उतर गया था। इस समय उसके और जेलखाने के बीच में अधिक फासला नहीं था। उसने इतनी बातचीत के बीच अनेक तर्क-वितर्क मन में कर डाले। जमादार के उत्तर देने के पहले ही उस आदमी ने कहा—जमादार साहब, यहाँ न आना हो तो खुशी से वहाँ खड़े रहो। पर पिताजी जो प्रसाद देते हैं वह तो ले जाओ, बिना प्रसाद के न जाओ। इतना कहकर थोड़ा खोपरा लेकर वह टीले से उतरकर किनारे पर पहुँच गया। मुफ्त मिलता प्रसाद भी भला कोई छोड़ेगा। जमादार और दूसरों ने हथेली पर दिया खोपरा श्रद्धा-पूर्वक खाया। और फिर कभी चिलम पीने के लिए आने का वचन देकर जमादार चला गया।

'तुम अब कहाँ जाना चाहते हो ?' उस परिचित मनुष्य ने जगदीश से पूछा—पुलिस बराबर तुम्हारे पीछे लगी है।

'इसी विचार में हूँ। भागने पर पकड़ा जाऊँगा, यह सम्भव है। तो फिर भागूँ या हाजिर हो जाऊँ ?'

'चोरी कितने बजे की ?' उस आदमी ने पूछा।

'चोरी हुई भी हो तो मैंने नहीं की। ऐसी झूठी चोरी की तो तोहमत लगानेवालों को दुनिया से मिटा देने का मन होता है।' जगदीश गुस्से में बोला।

'तो फिर ऐसा करते क्यों नहीं ? बैठे क्यों हो ?' साधु ने क्रूरता से कहा।

जगदीश को बहुत समय से अपनी स्थिति असह्य लगती रही थी। सुख-वैभव को ठुकराकर उसने फ़क़ीरी धारण कर ली थी। पर यह फ़क़ीरी दुनिया भी अशुद्ध साबित हुई। फ़क़ीरों के वर्ग में सच्चे फ़क़ीर को स्थान न था। अलबत्ता, किसी-किसी में सचाई की चिनगारी चमकती न हो, ऐसा नहीं है। यों तो कट्टर नौकरशाही के

हिमायतियों में भी सचाई का अंश देखने में आता है। किन्तु जैसे नौकरशाही में चिनगारी को राख में छिपा रखने की कोशिश होती थी, उसी प्रकार इन साधुओं की दुनिया में भी सचाई को दवा रखने के प्रयत्न होते हैं। जगदीश इन अंगारों को जब-तब भड़कने देना चाहता था। इसलिए उसके साथी उसके निष्फल कार्य पर हँसते और उसे त्यागियों के वर्ग में एक निरर्थक बोझ के तौर पर मानते थे। 'गर्जना' पत्र के साथ ही उसने इस दुनिया से सम्बन्ध तोड़ दिया था।

एक ग़रीब भिखारिणी को आश्रय देने के उसके कार्य को जब निन्दात्मक माना गया, तब उसके गुस्से का कोई ठिकाना न रहा। समाज-सेवकों और समाज-रक्षकों ने भी उसके कार्य पर सन्देह किया। उसे कष्टों में डालने के लिए वे उत्सुक थे। उसका अभिमान घायल हुआ। उसे समाज से घृणा हुई। उसने अपने सत्कार्य का बदला सोचा। संसार ने उसको क्या दिया ?—अपवाद और बेकारी। वह क्या काम करने लायक रहा था ? उसके सारे कामों का परिणाम कोकिला की रही-सही सम्पत्ति पर निर्भर रहा था।

और कोकिला ? उसके विचार में जलती आग में घी डाला। मरुभूमि में आश्रय देती यह हरियाली उसकी भयंकरता को और भी अधिक बढ़ाती थी। इन्हीं विचारों के संघर्षण में उसे सख्त बुखार आ गया। वह कुछ मधुर बना। और नवीन मार्ग मिलने की प्रतीक्षा करने लगा। जो मार्ग छोड़ा उसी मार्ग में जाने का उसे फिर आमन्त्रण मिला। यह तो उसने स्वीकार न किया। परन्तु देश-सेवा का या राज-सेवा का बहाना छोड़ देने के अलावा जो मार्ग मिले, उसे स्वीकार करने की उसकी इच्छा हुई। पत्रकार के रूप में तो नहीं, पर दूसरे किसी मार्ग में सर बिहारीलाल और प्राणलाल उपयोगी सिद्ध हों तो अवश्य वह लाभ उठाता। यही सोचकर उसे लालच हुआ था। भीषण देश-भक्ति का व्रत लेनेवाला युवक, मिल-मैनेजर के सहायक के रूप का धुँधला स्वप्न देखने लगा था।

इस तरह के स्वप्न को देखता-देखता वह घर जाता था। किन्तु होनहार ने उसे घर जाने में प्रतिबन्ध लगा दिया था। और दृढ़ हृदय के मनुष्य को भी पागल बना सकनेवाली चोरी के आरोप के कारण उसे भाग जाने की सूचना मिली। पन्द्रह हज़ार रुपया तो क्या, पर पन्द्रह पाई की भी उसने चोरी न की थी। एक क्षण के लिए उसे ।र भी आया कि क्यों उसने सचमुच चोरी नहीं की ? ऐसा किया होता तो शायद

उस पर आरोप नहीं लगता और ली हुई रक़म को सुरक्षित रखने का उसे समय भी मिला होता। दुनिया क्या ऐसा ही नहीं चाहती?

इन विचारों की उलझन में उसने देखा कि दूसरी स्त्री उसे चाहती है। स्त्रियों को आकर्षित करने की अपनी शक्ति पर उसे सदा अविश्वास रहता था। कोकिला के प्रेम को भी वह अपनी योग्यता की अपेक्षा अचानक आशीर्वाद की तरह समझने लगा था। उसने विचार भी कर देखा कि इस स्त्री के प्रेम का उत्तर देने में क्या हरकत है। पाप-पुण्य की उसमें खींचातानी न होती थी, ऐसा तो नहीं कहा जा सकता; किन्तु पाप-पुण्य की पुरानी भावना में उसे बहुत थोड़ी श्रद्धा रह गई थी।

'अपापी, पापी का शिवसदन कल्याण तू ही है।'

इस सूत्र पर उसका नीति-शास्त्र रचा गया था। केवल स्त्री-पुरुष सम्बन्धी व्यवहार में ही पाप-पुण्य समा गया है, ऐसा वह कभी नहीं मानता था। समाज या नीति को प्रतिकूल लगनेवाले सम्बन्धों को वह पुण्यमय मानता था; और यह स्वीकार नहीं करता था कि पुण्यमय सम्बन्ध जहाँ न हो वहाँ सदा पाप ही होता है।

संसार तो एक ही सूत्र मानता दिखलाई दिया कि यदि दोष को तुम छिपा सको तो तुम दोषी नहीं। विजया के साथ इस सूत्र के अनुसार व्यवहार रख संसार को व्याज के साथ उसका सूत्र वापस सौंप दिया जाय; ऐसा भी उसे एक क्षण के लिए आवेश आ गया था। पर यह एक ही पक्ष का पहलू था और जहाँ वह अपने को स्वतन्त्र नहीं मान सकता था। कोई कठोर बन्धन उसे कोकिला के साथ बाँधे हुए था। और उसके हृदय में कोकिला के सिवा दूसरे किसी और के लिए स्थान न था। पाप-पुण्य के विचार से वह रुक न सका, किन्तु दूसरे किसी के भी चाहने की अपनी अशक्ति से वह रुक गया। स्वार्थ या दिखाव के लिए भी वह किसी से प्रेम प्रदर्शित न कर सके, ऐसा भी न था। नाटक में पार्ट अदा करना हो तो भी कोकिला के सिवा अन्य स्त्री के साथ वह प्रेम-प्रयोग कार्य में परिणत कर सकता; यह असम्भव ही था।

इस उलझन का निवटारा होने जा ही रहा था कि इतने में एक रक्त-पिपासु अघोरी ने बिना कारण उसका गला धर दबाया। जीवन की और समाज की अव्यवस्था उसे स्पष्ट दिखलाई दी। इस अव्यवस्था को दूर करने की अपेक्षा, उसे अव्यवस्था की घटना में शामिल हो जाना ही अधिक श्रेयस्कर मालूम हुआ।

उस खूनी साधु ने उसे ललचाया। ललचाने के लिए वह तैयार हो ही रहा था।

दुनिया को नष्ट कर देने की वृत्ति उसमें कितने ही समय से रहती आई थी। पुलिस उसके पीछे पड़ी थी। जो गुनाह उसने किया न था उस गुनाह की शिक्षा उसे मिलने को है, और पुलिस से बच भागने के लिए उसे संसार में कहीं स्थान ही नहीं है। ऐसा लगते हुए उसका जगत्-वैर भड़क उठा। साधु ने इसमें सहमति प्रकट की और दूसरे ही क्षण से वह संसार का शत्रु बन गया।

साधु को उसने उत्तर दिया—मैं भी मानता हूँ कि मनुष्य तड़पा-तड़पाकर मारने लायक प्राणी है। जगदीश को बोलते हुए ऐसा लगा कि कोई अनजान आत्मा उसके द्वारा बोल रही हो। क्षण भर उसको अपने से ही डर लगा। उसने खुद अपना उत्तर पूरा किया, 'पर मुझे यों मारना जो नहीं आता।'

'आदत पड़ने पर आ जायगा। बच्चा, मेरे पास रह! मैं सिखा दूँगा।' साधु ने हँसते-हँसते कहा। किसी पिशाच के हास्य की तरह वह हास्य जगदीश को लगा। उसे ऐसा लगा कि इस साधु के मुख पर कुछ परिचित चिह्न हैं। उसे कुछ वैसे ही मुँहवाले को पहले कभी देखने का ख्याल आया। पर ऐसे क्रूर, कुरूप और विनाश-प्रिय का नहीं। किन्तु इससे अधिक स्वरूपवान, अधिक व्यवस्थित और अधिक शिष्टाचारी का। फिर यह ऐसा कैसे?

नदी के किनारे के ऊपर ही, किन्तु इस टेकरी से कुछ दूर पर शंख बजने की आवाज़ सुनाई दी।

उन आदमियों में से एक ने कहा—पिताजी, आरती का समय हुआ। अब पधारिये!

'अच्छा, चल। तू भी साथ चल!' साधु ने जगदीश से कहा।

टीले पर से सब लोग उतरे। जगदीश भी साथ चला। चन्द्रमा ऊपर चढ़ता जा रहा था। वहाँ तक दस मिनट का रास्ता था। वे एक छोटे-से मन्दिर में पहुँचे। वहाँ दो-तीन साधु आरती की तैयारी कर रहे थे। मन्दिर में मूर्ति नहीं थी, किन्तु एक पत्थर को कुछ ओढ़ाकर उसमें दो कौड़ियाँ लगाकर आँखें बना दी गई थीं। देवता के व्यक्तित्व के विषय में लोगों में भिन्न-भिन्न मत थे। किसी समय यह गणेश के रूप में पूजा जाता, कुछ लोग इसे हनुमान मानते, और आजकल सब उसे भैरव मानकर पूजते थे। जगदीश की कल्पना में यह मूर्ति किसी टूटे तारे का अवशेष या पाषाण-युग के किसी आयुध के रूप में थी।

आरती होने के बाद मन्दिर के पिछले भाग में स्थित धर्मशाला में सभी चले गये। पुलिस के सिपाही एक बार पहले ही यहाँ आकर तलाशी कर गये थे, ऐसा मालूम हुआ। साधु ने इस बात की कोई परवा नहीं की। साधुओं में से किसी को भोजन करना था, ऐसा मालूम नहीं हुआ। केवल जगदीश को एक तरफ़ ले जाकर उस परिचित मनुष्य ने कुछ मिठाई और दूध दिया। जगदीश को विचलित चित्त होने के कारण भूख नहीं मालूम हो रही थी। तो भी उसने कुछ खाया, और पीछे साधु के सामने एक चटाई पर आकर बैठ गया। धर्मशाला में एक जगह एक-दो मनुष्य धीरे-धीरे भजन गा रहे थे। अन्दर के चौक में एक वेदी ईंटों की बना ली गई थी। उसके पास तीन मनुष्य बैठे चिलम पी रहे थे। साधु विचित्र मुँह किये बेमतलब की बातें कर रहा था। ज़रा में वह हँसता और ज़रा ही में गुस्सा होकर बातें करनेवाले को गालियाँ देता था। उसका हास्य और क्रोध दोनों ही आश्चर्य पैदा करते थे। क्रूर दिखावे और क्रूर वातावरण का नया शौकीन जगदीश बातचीत करने लगा।

'महाराज, आपको मैंने कहीं पहले देखा है?' साधु के मुँह जैसा किसको देखा था, यह विचार जगदीश के मस्तिष्क में चक्कर काट रहा था। मुख-साम्य का स्पष्टीकरण न होने पर उत्सुकता से जगदीश ने साधु से पूछा।

'मुझे? कभी नहीं। यहाँ आये ही मुझे केवल सात दिन हुए हैं। तूने मुझे देखा होता तो मैंने भी तुझे देखा ही होता, और तूने यदि एक बार भी मुझे देखा होता तो कभी नहीं भूलता।' साधु ने कहा।

'तो मुझे ऐसा क्यों मालूम हो रहा है?'

'तेरा चित्त ठिकाने नहीं है।'

'कहो न कहो, पर तुम्हारे जैसा मुँह मैंने कहीं न कहीं देखा तो है ही।'

'हरामखोर, फिर तो यह शब्द कह देख!' पास पड़ी लकड़ी लेकर साधु ने तानी।'

वह मनुष्य बीच में न पड़ा होता तो ज़रूर साधु उस लकड़ी से जगदीश को मार देता।

'अरे पिताजी! यह तो नया अनजान मनुष्य है। आपके साथ कैसे बोले, इसको इसे क्या खबर?' उसने कहा।

'खबर नहीं है तो यह चुप क्यों नहीं रहता?' साधु ने कहा।

जगदीश की आँखों में भी खून उतर आया था। उसने खुद ऐसा क्या कहा था, जिससे साधु को इतना गुस्सा आ जाय? आँख निकालकर खड़े होते-होते जगदीश चिल्ला पड़ा—क्यों बहुत बकवाद करता है? अभी पीट डालूँगा!

इस तरह का तुच्छता-पूर्ण क्रोध उसने शायद ही कभी अपने जीवन में प्रदर्शित किया होगा। इससे उसकी रही-सही सभ्यता भी ज़रा लज्जित हुई। वह मनुष्य इसकी तरफ़ मुड़ा। सबको ऐसा लगा कि अब साधु चिमटा मारेगा या फिर उठकर झपटेगा। कई लोग वहाँ इकट्ठे हो गये, पर साधु जहाँ का तहाँ बैठा रहा। सबके आश्चर्य के बीच साधु ने अधिक क्रोध प्रकट न करते हुए केवल घृणा की दृष्टि से एक आदमी से कहा—इसे ले जाकर सुला दो! इसका चित्त इस समय ठिकाने नहीं है। सो जाने के बाद यह शान्त हो जायगा।

उस परिचित मनुष्य ने नर्मी से जगदीश को खड़ा किया, और कहा—पिताजी ठीक कहते हैं, तुम ज़रा सो जाओ!

'पिताजी जहन्नम में गये।' यह कहने का विचार जगदीश ने रोककर केवल इतना ही कहा—मुझे नींद नहीं आ रही है।

'तो फिर थोड़ा आराम करो! लेट जाओगे तो थकावट दूर हो जायगी।'

जीर्ण धर्मशाला के आधे दुरुस्त भाग में एक कमरा था। इस कमरे में से एक दरवाज़ा बाहर की तरफ़ था। कमरे में दूसरी दो खिड़कियाँ रास्ते की ही तरफ़ ऊपर खुली हुई थीं। खिड़कियों में किवाड़ नहीं लगे थे। उस कमरे में वह मनुष्य जगदीश को ले गया और उसे एक टूटी-सी चारपाई पर सुला दिया।

जगदीश ने पूछा—यह साधु है कौन? यह आदमी है या जानवर? कभी हँसता है, कभी क्रोध से मारने दौड़ता है। इसे हुआ क्या है?

'अरे भाई, यह तो महात्मा है! रमता जोगी है। अवधूत ऐसे ही होते हैं। पर बहुत जान-पहचानवाला है, समझे! तुम पर उसकी बहुत अच्छी कृपा मालूम होती है।'

'इनकी कृपा तो बहुत भारी मालूम होती है।' जगदीश ने कहा।

'तो फिर साधु किसे कहते हैं? यह तुम्हें धीरे-धीरे मालूम हो जायगा। अब ज़रा सो जाओ! किसी का डर न करो, समझे?' यह कहकर वह मनुष्य चला गया।

जगदीश आँखें मूँदकर चारपाई पर पड़ रहा।

एक मनुष्य जिस कार्य में सफल होता है, दूसरा उसी में कम बुद्धि होने के कारण असफल रहता है। पहला मनुष्य महापुरुष माना जाता है, दूसरे का किसी को नाम भी याद नहीं रहता। याद भी रहे तो उसे स्मृति से अलग करना पड़ता है। जगदीश इसी भाग्य-विषमता पर विचार करता हुआ पड़ा था। उसे देश के बदलते हुए वातावरण के कई चित्रों का स्मरण हुआ। अवगुणी माने हुए अनेकों पुरुष प्रकट जीवन के अगले भाग में आकर लोगों का नेतृत्व करने की अपने में योग्यता मानते थे। लोगों को आगे बढ़ने की शिक्षा देते। एक समय वे नेता के तौर पर प्रशंसित और विख्यात पुरुष—अब उन्हें कोई पहचानते भी नहीं, ऐसी स्थिति में गिर गये थे। कइयों की आशाएँ फलीभूत हुईं, कई आधी दूर ही पहुँचकर रुक गये; कई तो जो कुछ उनके पास था, वह तो उन्होंने खोया ही और उन्हें कुछ मिला नहीं। विश्ववंद्य गांधीजी द्वारा संसार और भारत के सामने उपस्थित किया दृश्य केवल एक स्वप्न बन गया था। वह स्वप्न भी प्रशंसनीय और आलोचना से परे है, यह वह मानता था, परन्तु उसके हृदय में यह शूल रह गया कि इस दृश्य को प्रत्यक्ष करने किसी ने महात्माजी का साथ नहीं दिया। यदि सचमुच साथ दिया होता और देशोद्धार की ज्वलन्त भावना सबने सही होती या सबने ठीक-ठीक स्वार्थ-त्याग किया होता तो एक वर्ष में नहीं, किन्तु एक दिन में ही यह दृश्य सफल ऐतिहासिक सत्य बन जाता। पर ..

उसके विचार रुके। उसके कमरे में कोई आ रहा था। उसे दरवाज़े की तरफ़ वही साधु आता दिखाई पड़ा। जगदीश उठकर बैठ गया। उसे डर लगा कि कहीं वह लकड़ी लेकर तो नहीं आया, पर उसके हाथ में कुछ था नहीं। साधु ने पूछा—अभी सोया नहीं?

'एक तरफ़ पुलिस और दूसरी तरफ़ तुम। फिर सोने लायक स्थिति कहाँ है?' जगदीश ने बताया।

'मेरा डर लगता है, क्यों?' साधु ने प्रसन्न होकर पूछा।

'डर तो नहीं, पर आप डर लगने लायक हैं ज़रूर।'

'देखो, घबराओ मत। मुझे किसी-किसी समय मनुष्य को मारने का आवेश आ जाता है, और यदि कोई स्वरूपवान मनुष्य हो तो उसे घायल करने, और उसे रोते देखने का खास शौक हो आता है। तू थक गया हो तो सो जा, नहीं मेरे साथ चले तो कुछ दिखलाऊँ!' साधु ने कहा।

'चलिये, मैं साथ ही चलता हूँ।' जगदीश खड़ा हो गया। साधु ने कमरे का दरवाज़ा खोला और उसमें से दोनों बाहर निकले। बाहर बिजली की रोशनी थी। दोनों उस रोशनी में चलने लगे। साधु ने शरीर पर एक काला कम्बल लपेट लिया था। कुछ आगे चलने पर जगदीश ने कहा—मैं साथ तो चलता हूँ, पर पुलिस कहीं मुझे पकड़ ले तो?

'तू चोर नहीं है, और तुझमें चोर के संस्कार भी नहीं हैं। यह मैं पहले ही समझ गया। तुझे यह पहले ही समझ लेना चाहिये कि पुलिस इस समय दो जगह तेरी तलाश कर रही होगी। एक तो वह जगह जहाँ चोरी की घटना घटी है, दूसरा तेरा मकान। दोनों में से किसी एक जगह अपराधी का पहुँचना सम्भव हो सकता है। मुख्य सड़क पर या स्टेशन पर तो हम लोग जा नहीं रहे, इसलिए तू पुलिस से बेखटके रह।'

जगदीश को यह बात जँच गई। यह तो उसे विश्वास था ही कि यह विचित्र साधु विचित्र अनुभव ही करायेगा। मन्दिर के सामने से शहर की तरफ़ वे लोग चले। पर शहर में प्रवेश करने के बदले वे नदी किनारे एकान्त भाग की तरफ़ आध घण्टे तक चलते रहे। दूर से एक बँगला दिखाई दिया। रात के कोई साढ़े ग्यारह बजे होंगे। किन्तु इस बँगले में अभी तक उजेला हो रहा था। अब तक कुछ भी बातचीत न करने के बाद साधु ने जगदीश से पूछा—तू क्या खयाल करता मेरे साथ आया है?

साधु की बोली बहुत साफ़ थी। उसके उच्चारण में सभ्यता थी। उसके भयंकर स्वरूप और भाषा के बीच का भेद जगदीश समझ गया था। इस समय उसका मुख अधिक सौम्य क्यों मालूम हो रहा था, यह जगदीश नहीं समझ सका। उसने उत्तर दिया—खयाल तो कोई भी नहीं।

'मनुष्य को किस तरह पीड़ा पहुँचा कर मारा जा सकता है, यह तुम्हें सीखना है न?' दृढ़ता से साधु ने पूछा। अब जगदीश को समझ में आया कि साधु का मुख सौम्य नहीं था। किन्तु मुख पर दृढ़ निश्चय के साथ प्रकट होनेवाली स्वच्छता थी। संशयपूर्ण स्थिति में ही मुख परस्पर विरोधी रेखाएँ धारण करता है। वह मानव-जाति का शत्रु बन गया था—बनना चाहता था, किन्तु उसने यह न सोचा था कि आज ही उसे इसका प्रत्यक्ष पाठ सीखना पड़ेगा। जगदीश को कँप-कँपी आ गई।

'सीखना तो है, पर आज ही तो नहीं!' जगदीश ने कहा।

'आज ही क्यों नहीं ! तुझे अभी तक मानव से ममता है ; ऐसा मालूम होता है। आज की तो बात ही अलग है, पर इसी समय क्यों नहीं ?' साधु ने दांत पीसते हुए कहा।

जगदीश के पैरों की तेज़ी जाती रही। मनुष्य को अधिक से अधिक तकलीफ पहुँचाकर मारने के लिए कहनेवाला साधु, कौन जाने क्या करेगा ! क्या यह दिखलायगा ! इसकी कल्पना जगदीश को डरा रही थी। साधु की क्रूरता का उसे अनुभव था।

'क्यों ? पैर भारी हो गये ! डरता हो या दया आने की सम्भावना हो तो मेरे साथ न चल। यहीं से वापस लौट जा।' साधु ने तिरस्कार-पूर्वक कहा।

'नहीं, नहीं ! मैं साथ चलता हूँ।' यह कह हिम्मत रखकर जगदीश आगे बढ़ा। उसे अपने प्रति हुए अन्याय का ख़्याल ताज़ा हुआ और उसने क्रूर बनने की तैयारी की। बँगला पास आ गया था।

उसमें से बातचीत करते हुए तीन-चार आदमी निकलते दिखाई दिये। वे ऊँचे स्वर से बातचीत कर रहे थे। साधु और जगदीश एक तरफ़ आड़ में हो गये और उन लोगों को जाने दिया। जाते-जाते उन लोगों की यह बातचीत सुनाई दी—यह बात ठीक है कि प्राणलाल की मेज में रुपए थे।

'पर वह मूर्ख वहां पर चाबी छोड़कर क्यों दौड़ गया ?'

'इसी तरह मनुष्य भूल करता है न ? जगदीश वहां बैठा था। वह बीच में ही पिछले रास्ते से चला गया। इतना ही नहीं ; पर उसने दरवाज़ा खोलने में प्राणलाल के लड़के की मदद ली।'

'बहुत दिनों से उसके गुज़ारे का साधन नहीं रहा था। जब मौका मिल गया तो हाथ मार बैठा।'

'वह लालजी सेठ के पड़ोस में भी रहता है, इसमें ज़रूर कोई भेद होगा।'

'होना ही चाहिये।'

ये बातें करते हुए वे लोग तेज़ी से जा रहे थे। इसलिए इससे अधिक बातचीत जगदीश ने नहीं सुनी। इतनी बातें उसका खून खौलाने के लिए काफ़ी थीं।

'जगदीश तो तेरा ही नाम है न ?' साधु ने ऊपरी बातचीत सुनने के बाद पूछा।

जगदीश ने 'हाँ' कहा।

बगीचे का मुख्य दरवाज़ा अभी तक बन्द नहीं हुआ था। साधु और जगदीश दरवाज़े में होकर बँगले में पहुँचे। एक आधा ऊँघता मनुष्य आँखें मलता सामने मिला। उससे साधु ने पूछा—बाई जागती हैं न?

'जाग तो रही हैं!' उस नौकर ने उत्तर दिया।

'उनसे जाकर कहो कि ओमकारियावाला नाथबाबा आया है।'

'बड़ी कृपा की, पिताजी! बाई थोड़ी देर पहले पूछती भी थीं कि नाथबाबा आये थे या नहीं।' यह कहकर वह नौकर अन्दर खबर देने गया।

ओमकारियावाले नाथबाबा की इस तरफ़ खासी प्रतिष्ठा हो गई थी। वह बारह वर्ष से ओमकारिया के ऊजड़ गाँव में रहकर तपस्या करता रहा था। ऐसा कहा जाता था कि बारह वर्ष से वह कभी ओमकारिया से बाहर नहीं निकला था। कई लोग समझते थे कि वह सिद्धि-सम्पन्न योगी था; वह वरुण, भैरव या यक्ष की तामसी उपासना करता था, ऐसा भी कुछ लोग कहते थे। शहर से बीस कोस के लगभग उसका स्थान था। फिर भी लोग उसके दर्शन के लिए जाते थे। अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे आस्था-हीन होते हैं, यदि ऐसा कोई कहता हो तो उसकी ऐसे साधु के प्रति की श्रद्धा उसकी बात को असत्य साबित कर देती। यदि साधु अंग्रेज़ी जानता हो तो उसका कार्य बहुत सरल बन जाता है। युरोपीय फ़िलासफ़रों के कुछ नाम जानना, उनके सिद्धान्तों के विषय की कुछ जानकारी रखना, तिरस्कार या श्रेष्ठता का दिखाव करके यह प्रकट करना कि ये सब सिद्धान्त हमारी ही फिलासफ़ी से निकले हैं, जिन्हें हम वेदकाल से ही जानते हैं, और उनके समर्थन में जुदे-जुदे संस्कृत श्लोक बोलना; हिप्नोटिज़्म (प्राण-विनिमय), स्प्रिच्युलिज़्म (प्रेतावाहन), मेन्टल टेलीपैथी (विचार-विनिमय)—ये सब सामने रखकर अपने योग से प्राप्त हुई सिद्धियों का वर्णन करना और वेदान्त-सम्बन्धी, पूरी न समझ आनेवाली पांडित्यपूर्ण चर्चा करना, आदि अंग्रेज़ी पढ़े-लिखों का धर्माभिमान जाग्रत करके ऐसे साधु स्वाभाविक ही उनकी दृष्टि में पूजक बन सकते हैं। कई लोग यह कहते थे कि नाथबाबा अंग्रेज़ी जानते हैं और कई अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे लोग उन पर श्रद्धा रखते थे। उनकी प्रकृति अतिशय तामसी थी। उनका पागलपन और विचित्रता अवधूतों के क्षम्य ही नहीं, किन्तु पूजनीय विशेषताओं के तौर पर माने जाते हैं। वह एकान्त-जीवन बिताता हुआ; बहुत कम बोलता और ेने में एक-दो बार से अधिक किसी को दर्शन नहीं देता था। कई लोग उसके

विरुद्ध कहते थे कि वह अघोरपन्थी है, मद्य-मांस खाता है, मनुष्य की बलि तक करने में भी नहीं हिचकता। ऐसी कई प्रकार की बातें फैलाई जातीं जो उसकी प्रतिष्ठा और उसके गूढ़ महात्म्य को बढ़ाती ही थीं।

शान्तागौरी साधुओं और तपस्वियों के संसर्ग को चाहती थी ; पंडितों, विद्वानों का वह बहुत आदर करती थी। नाथबाबा की कीर्ति भी उसके सुनने में आई थी, पर उसे २० कोस तक जल-मार्ग या स्थल-मार्ग तय करके उनके दर्शन करने जाने की श्रद्धा नहीं हुई थी। उसकी राय में देव-दर्शन या सन्त-दर्शन को बाहर जाना निषिद्ध था, पर साधु और पंडितों को ही अपने पास आने में वह उनकी विद्वत्ता और सच्ची साधु-परीक्षा समझती थी। अधकचरे पंडित और साधु शान्तागौरी से दूर ही रहते थे। केवल प्रखर विद्वान् और अनुभवी सन्त ही उसका प्रताप सह सकते थे। योग-वासिष्ठ की अभ्यासिनी यह स्त्री, पंडितों और साधुओं की मानो एक प्रतिभासम्पन्न संस्था ही बन गई थी।

उसे किसी ने खबर की कि ओमकारियावाले नाथबाबा यहाँ पर भैरव का मठ सम्हालने आये हैं। और शांतागौरी ने नाथबाबा को अपने घर पधारने का निमन्त्रण भेजा। निमन्त्र देनेवाले की उद्धताई पर नाथबाबा ने गालियों की वर्षा कर दी, फिर भी कइयों के आग्रह को मानकर उन्होंने निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। और एक दिन दोपहर १२ बजे जाना स्वीकार किया। पर जब बँगले पर ले आने गाड़ी पहुँची तो उन्होंने दूसरे दिन रात को ८ बजे वहाँ जाना प्रकट किया। आठ बजे गाड़ी लिवा लेने पहुँची तो उन्होंने तीसरे दिन सुबह छः बजे अपने पधारने की सूचना दिलवाई। उसके अनुसार भी गाड़ी समयानुसार पहुँची, पर अबकी उन्होंने गाड़ी भेजनेवाले घमण्डी की गाड़ी पर न जाकर दूसरे दिन गाड़ी न भेजने की शर्त्त पर रात में किसी भी समय जाना स्वीकार किया।

ऐसे विचित्र व्यक्ति को देखने का शान्तागौरी का मन होना स्वाभाविक था। आज नाथबाबा ने उससे आकर मिलने का वचन दिया था। रात के दस बजने तक शान्तागौरी ने उनकी बाट जोही। बाद में रोज़ की ही तरह आशा छोड़ दी। पास ही उसके पुत्र के मित्र आकर बंगले में एकत्रित हो गये थे और लगभग ग्यारह बजे तक बैठे रहे। कुछ खास मित्र और आध घण्टे अधिक तक बैठकर चले गये। उस समय शान्तागौरी ने नौकर से पूछ देखा था कि कोई महात्मा तो यहाँ नहीं आया?

किन्तु नौकर ने मना कर दिया था। आया होता तो फिर विना मिले जाता ही कैसे? इसलिए शान्तागौरी के लिए नौकर से पूछा प्रश्न केवल कौतूहल रूप में ही था। वारह वजने पर सोने की तैयारी करने लगी थी कि इतने में नौकर ने आकर खबर दी कि उक्त वावाजी आ गये हैं।

वावा की विचित्रता पहले ही सुन और अनुभव करने के वाद ऐसे समय पर उनके आने से उसे अधिक आश्चर्य नहीं हुआ। वह जव आ ही गये थे तो फिर उन्हें विना वुलाये रहा ही नहीं जा सकता था। उसने नौकर से कहा—उनसे कह दे कि पधारें।

शान्ता एक चौकी पर वैठी थी। उसमें टिकने के लिए एक रेशमी तकिया पीछे लगा हुआ था। चौकी पर मृगछाला विछी हुई थी। ऐसी ही कई चौकियां उस कमरे में पड़ी थीं। उन पर कई मृगचर्म और व्याघ्रचर्म विछे हुए थे। शान्ता की वगल में कई पुस्तकें पड़ी हुई थीं। पास ही पुस्तक रखकर पढ़ने के लिए लकड़ी का एक आसन रखा हुआ था।

नाथवावा और जगदीश ने कमरे में प्रवेश किया। आगे-आगे जगदीश था और पीछे-पीछे नाथवावा आ रहे थे। शान्ता ने वैठे-वैठे नमस्कार तो किया, किन्तु नमस्कार के साथ ही मानो वह किसी जल्लाद को देख रही हो, ऐसा उसकी आँखों और मुख पर भय छा गया। इस भय में उससे चिल्लाया भी नहीं जा सका। केवल उसने मुख फेरकर दोनों हाथों से अपनी आँखें ढँक लीं।

'शान्ता, अभी तक पुराना शारीरिक सौन्दर्य वचा रखा मालूम होता है?' अपनी छुरी के योग्य भोग मिलने पर जैसी खुशी कसाई को होती है, ठीक वैसी ही नाथवावा को हुई। जगदीश यह देखकर चकित हो रहा था।

'ठीक है। मैं यही चाहता था। मुझे ठीक-ठीक पहचान लिया न?' फिर नाथवावा वोला।

शान्ता ने धीरे से अपने मुँह पर से हाथ हटा लिया। उसकी आंखों का भय वैसा ही था।

'तुम अभी जीते हो?' शान्ता ने पूछा।

'इससे तुझे क्या काम? समझ ले कि मैं पिशाच वनकर आया हूँ। और पिशाच की तरह ही लगता हूँ न?' वावा ने पिशाच की तरह ही मुस्कराते हुए पूछा और ...ा के सामने रखे एक व्याघ्रचर्म पर वैठ गया।

'अरे, मुझे शान्ति से तो मरने दो ! तुम क्यों आये हो ? तुम्हें क्या करना
शान्ता ने कहा ।

'मुझे भी शान्ति से मरने की अभिलाषा है न ? बीस वर्षों से मैं शान्ति
रहा हूँ । इस खोज में तो मैं मनुष्य को मारनेवाला राक्षस बन गया हूँ, समझीं ?'

'तुम कब राक्षस नहीं थे ?'

'तुमने मेरे जीवन में प्रवेश किया इसके पहले तक तो नहीं था ।'

'तुम्हारा भोग था । क्यों मेरा अपने जीवन में प्रवेश कराया ?'

'ठीक है । भोग मेरे अकेले का ही । मेरे जीवन में प्रवेश करने से तुम्हें
अड़चन हुई थी ? तुम्हें तो उससे बचाव ही मिला । अपने भोग-विलास को छिपा
एक साधन जो मिला था ।'

'अब भी ऐसा ही भ्रम !'

'भ्रम ? ओ झूठी ! तूने मुझसे नहीं कहा था कि तुझे बिहारी से प्रेम है, मु
नहीं ?'

'मैंने कहा और यही सच बात थी, पर फिर अब क्या ?'

'फिर क्या ? अब आज तक के पच्चीस वर्ष का काल और आज फिर
हो वह !'

'तुम्हें यही बातें करनी हों तो इस लड़के को बाहर बिठला दो । इसका यहाँ
काम है ?'

'यह तो रहेगा । मेरा शिष्य है । इसे अपने बाद मुझे तैयार करना है ।'

'तुम आज क्या करना चाहते हो ?'

'शान्ता ! तुम्हें कितने वर्ष हुए ?'

'तुम्हें क्या काम है ? तुम्हारे साथ विवाह कर मैंने तो अपने बहुतसे वर्ष
डाले हैं !'

'तुझे देखने से तो इसका पता नहीं चलता । मुझसे छः-सात वर्ष छोटी त
है ही ।'

तिरस्कार-पूर्ण दृष्टि डालकर इस अमर्यादित प्रश्न का शान्ता ने कोई
नहीं दिया ।

'अभी जीने की इच्छा है ?' मानो मृत्यु अपनी बलि के सामने आकर मसखरी करती हो इस तरह साधु ने शान्ता को देखते हुए पूछा।

'जीना होगा, तब तक जिन्दी रहूँगी।'

'हाँ।' साधु कुछ हँसा। 'पर मुझे जीने की बिल्कुल इच्छा नहीं है, समझी ?'

'तो तुम फिर अब तक क्यों जिन्दे रहे ?' शान्ता के मुख पर से भय कम मालूम होने लगा।

'आज के दिन के लिए। आज का काम पूरा होने पर मैं अवश्य मर जाऊँगा।'

'तो अभी तुम्हें कोई काम बाकी रहा है ?'

'वह काम अभी करता हूँ। शान्ता, तुझे जीवन तो प्यारा है। तू भले ही जीती रहे। पर अभी तुझे इस सौन्दर्य का गर्व है ?'

'तुम्हारी जीभ में काँटे क्यों नहीं लगते ?'

'अकेली जीभ में ही नहीं, पर सारे शरीर में काँटे चुभे हुए हैं। शान्ता, तेरे सौन्दर्य ने पहले मुझे पागल बना दिया था। आज भी तेरा सौन्दर्य मुझे पागल बना रहा है। तेरी आँखों में ऐसी ज्वाला है कि धधकते सूए के सिवा उसके साथ खेला नहीं जा सकता। तेरी नाक ऐसी सुडौल और सुन्दर है कि उसे चमचमाती छुरी से काटकर अपने मुँह में रखूँगा। और तेरे गालों में मुसकान अब भी खेलती रहती है, उसमें नोकदार कटार के साथ डूब जाने को मन होता है। अपनी यही इच्छा पूरी करने में ज़िन्दा रहा। और देख, इसके लिए मैं साधन भी साथ लेता आया हूँ।'

इतना कहकर साधु ने हट्टहास किया। शान्ता का रोम-रोम काँप उठा। जगदीश के पैरों में सनसनी हुई। साधु ने धीरे से एक नोक़दार सूआ, छुरा और एक कटार निकाल अपने पैरों के सामने रखे। साधु के मुख पर से स्थिरता गायब हो गई थी। उसकी आँख से पशुता झलकने लगी, उसके दाँत कटकटाये, होंठ फड़क उठे, मूर्तिमान मृत्यु जैसी भयानक विकृति उसके मुख की प्रत्येक रेखा में दिखलाई देती थी। जगदीश ने कभी ऐसा भयंकर चेहरा नहीं देखा था।

'तेरा पुत्र कहाँ है ?' शान्ता के मुख की चेष्टा देखकर साधु बोला।

'मेरा पुत्र ? और तुम्हारा नहीं ?' ज़रा आश्चर्य से शान्ता बोली।

एकाएक जगदीश को याद आ गया कि साधु के मुख का साम्य तो उसे मनोहर

के मुख में दिखाई दिया था। यह साम्य खोजने उसके हृदय में विचार उठते रहते थे। शान्ता के शब्दों से यह बात स्पष्ट हो गई थी।

पर साधु पर शान्ता के शब्दों का दूसरा ही प्रभाव पड़ा। शिकार पर टूट पड़ने के लिए मौका ताकते निशाचर की तरह उसने झपटकर शान्ता का हाथ पकड़ लिया। मजबूत शान्ता भी खड़ी हो गई और साधु के पंजे से अपना हाथ छुड़ाने का प्रयत्न करने लगी।

'यह हाथ छूटनेवाला नहीं। पूछ देख इस युवक से। बोल, अब तेरी आँखें खींच निकालूँ, नाक अलग कर दूँ और गालों को चीर डालूँ?'

वध्य पशु की तरह शान्ता तड़पने लगी। उसने बलपूर्वक एक जबर्दस्त धक्का साधु को मारा।

पर साधु जहाँ का तहाँ निश्चय की तरह ही अडिग रहा। उसने कहा—छूटने का प्रयत्न करना व्यर्थ है, परन्तु तुझे चेतावनी देता हूँ कि जो ज़रा भी चिल्लाई या ज़ोर लगाया तो यह छुरा छाती में ही भोंक दूँगा। तुझे मार डालने में मुझे ज़रा भी देर न लगेगी। और तेरा जीने को मन है, यह मैं जानता हूँ। इसलिए···। इतना कह मुख पर से शान्ता का हाथ हटाकर उसकी आँखों के ऊपर सूआ रखा। शान्ता ने डरकर आँखें मींच लीं और उसके मुँह से एक बारीक चीख निकली। उसे ऐसा लगा कि आँख गई; और सचमुच सूआ शान्ता के पलकों पर अड़ गया कि इतने में साधु का हाथ अचानक पीछे हटा। चकित होकर शान्ता ने देखा कि जिस लड़के को वह बाहर निकलवाना चाहती थी, वही (जगदीश) साधु का घातक मजबूत हाथ पकड़े खड़ा है।

'हरामखोर! छोड़ नहीं तो अपना भी ऐसा ही हाल हुआ समझना।' साधु ने जगदीश से कहा।

'नहीं महराज, मेरे देखते ऐसा नहीं हो सकता।'

'मैंने तुझसे क्या कहा था? याद है? डरना हो या दया आये तो मेरे साथ मत चल!'

'यह ठीक है; पर मुझसे यह तो देखा नहीं जाता।'

'हट, कायर! तुझे तो इस संसार से बदला लेना था? संसार को तूने लात मारी है और लातें खाते ही मरना है!' यह कहकर नाथबाबा ने अपने पंजे से शान्ता

को समूचा छोड़ दिया। फूली हुई साँस और लड़खड़ाते पैरों से शान्ता एक कोने में टिकी हुई खड़ी रही।

'शान्ता, यहाँ आ! आज तू बच गई। आगे क्यों नहीं आती? मुझसे छूटना कठिन है। मुझे इस घर में रहने से भी तू रोक नहीं सकती। पर आज तो तेरे सौन्दर्य की निन्दा बन्द हो गई है। चल इधर, अब नाथबाबा के साथ कोई ज्ञान-चर्चा करनी है?'

पर शान्ता आगे नहीं आई और कुछ बोली भी नहीं।

'तो ठीक है। मैं किसी दूसरी बार आऊँगा। पर उस दिन कोई ऐसा मूर्ख साथ में न होगा। चल, जगदीश!'

साधु और जगदीश बगीचे के बाहर निकले। थोड़ी दूर पहुँचकर साधु ने पूछा—जगदीश, क्या तू विवाहित है?

'जी हाँ!'

'तुझे अपनी स्त्री से प्रेम है?'

'महाराज, प्रेम! यदि मेरे जीवन में प्रेम है तो वह केवल उसी के लिए है।'

'फिर तो तेरी इस संसार से पक्की दुश्मनी नहीं हो सकती। तू मेरे काम का नहीं है। संसार से यदि बदला लेना हो तो अपनी स्त्री के प्रति प्रेम-भाव छोड़ दे।'

'ऐसा करना अभी तो कठिन मालूम होता है।'

'तू मेरी स्थिति में पड़ देख! तुझे तो अपनी पत्नी का मोह है; मुझे यह मोह मेरी पच्चीस वर्ष की उम्र में ही नष्ट हो गया। बोल, ऐसे संयोगों में तू मेरे जैसा बन सकता है या नहीं?'

'मुससे तो ऐसी स्थिति की कल्पना भी नहीं हो सकती।'

'सुन और समझ! तू अपनी पत्नी के लिए प्रेम से मरने को तैयार है; यदि तेरी पत्नी इस उपासना को ठुकरा दे और घृणा करके तुमसे कहे कि वह तेरी अपेक्षा तेरे मित्र को अधिक चाहती है; इतना ही नहीं, पर तेरे मित्र के साथ अमर्यादित चेष्टा में उतरकर वह तुझे चिढ़ाती है, तो ऐसी स्थिति में तू सारी स्त्री-जाति का शत्रु बन जायगा या नहीं?'

'नहीं महाराज!' जगदीश ने उत्तर दिया।

'क्या!' चौंककर साधु ने पूछा। 'तू मर्द है या…?'

'मैं मर्द हूँ या कुछ और ? यह तो आपको टीले पर के प्रसंग से ही मालूम होना चाहिये। आपके साथ के तीन मनुष्यों तकसे भी मैं जूझने को तैयार हो गया था!'

'तू क्या कह रहा है, इसका तुझे पता है ?'

'हाँ, अच्छी तरह पता है। आप वैसी कहें वैसी स्थिति को कल्पना में कर सकता हूँ, पर इतने पर भी मेरा अपनी पत्नी के प्रति प्रेम कम नहीं हो सकता।'

'हा—हा—हा—' कर साधु ऊँचे स्वर से हँसा और कहने लगा—दुनिया में अब तक तो ऐसा किसी पुरुष ने कहा नहीं।

'भले किसी ने ऐसा न कहा हो, पर मैं तो कहता हूँ कि मेरी पत्नी, आप कहते हैं, वैसी स्थिति भी पैदा कर दे तो मैं उसकी आँख निकालने या उसके गाल पर घाव करने तैयार नहीं होऊँगा।'

'कारण ?'

'कारण आपने ही दिया है। पत्नी के लिए प्रेम से मरने की मेरी तैयारी है। आप तो मरने के बदले मार डालने की तैयारी में पड़े हैं ?'

'पर पत्नी के लिए मरना कैसा ? तू मेरे प्रेम के प्रत्युत्तर में वचन देता है कि नहीं ? इसके सिवा कैसे बन सकेगा ?'

'ऐसा शर्तिया प्रेम बाज़ारू चीज़ है। इसमें कीमत देकर माल ख़रीदना ही होता है। स्त्री आपको प्रेम दे तो आप भी उसे वैसा ही प्रेम दे सकते हो, फिर इसमें मरने की कैसी बात रही ? किसी को मारे बिना तुम मर सको तभी तुम सच्चे प्रमी हो! बाकी तो सौन्दर्य के बाज़ार में सौदागर हैं। आप को कोई अनुकूलता दे, इसलिए आप उसके विरुद्ध अनुकूलता देंगे; आपको कोई आनन्द दे, इसलिए आप विरुद्ध आनन्द देंगे; और शायद कोई आपको अपनी जान दे तो आप उसके विरुद्ध जान देंगे। पर इन सबमें आपको पहले कुछ मिलना तो चाहिये ही न ?'

'बस कर, बस कर अपनी बकवाद!' कहकर साधु ने इस प्रेम की फिलासफी में उलझते हुए जगदीश से बातें बन्द करने को कहा।

'महाराज, माफ करना। मेरी पत्नी के विषय में जब बातचीत होती है तो मैं ऐसा ही पागल बन जाता हूँ।'

दोनों मनुष्य शान्त हुए। साधु के मुख पर अनेक परिवर्तन हो रहे थे। वे अब

मन्दिर के पास पहुँच रहे थे। बहुत देर से बन्द बातचीत साधु ने फिर शुरू की—मैं कल ही ओमकारिया चला जाऊँगा। तू वहाँ चलेगा?

'जी हाँ। मुझे तो किसी जगह भागना ही है।'

'जगदीश?'

'जी!'

'मैं तुझे लकड़ी मारने तैयार हुआ था, याद है?'

'बराबर याद है, और शायद वह मेरे लगती तो मैं सारी ज़िन्दगी उसे नहीं भूल सकता था।'

'तूने उस समय क्या कहा था कि जिससे मैं तुझे मारने को ललचाया?'

'महाराज, मुझे फिर कहकर लकड़ी की मार नहीं खानी।'

'तुझे अब नहीं मारूँगा। चाहे कहकर देख ले!' स्वाभाविक दीनता से साधु ने कहा। साधु फिर कहीं न मार बैठे, इसकी सावधानी रखकर जगदीश बोला—मैंने कहा था कि आपसे मिलता मैंने किसी का मुख देखा था, उस समय कुछ याद नहीं आया।

'अब तुझे याद आता है।'

'हाँ, हाँ, याद आता है। शान्तागौरी के पुत्र...'

'बस, बस! मैं पूछूँ उतना ही जवाब दे।'

धर्मशाला के कमरें में दोनों पहुँचे। साधु ने जगदीश को अपनी खाट पर सो जाने को कहा और वह खुद कमरे के दूसरी तरफ़ धर्मशाला के मुख्य भाग की तरफ़ चला गया।

जगदीश को थकावट और श्रम के कारण चक्कर आ गया। आँखें मींचकर वह खाट पर पड़ रहा और फिर उसे धर्मशाला के कोने से घड़ी में दो बजने की आवाज़ सुनाई दी।

(२५)

सुबह लगभग पाँच बजे जगदीश की आँख खुल गई। रात का देखा हुआ दृश्य उसके मस्तिष्क में घूम रहा था। एक तरफ समाज पर उसका क्रोध प्रज्ज्वलित था, दूसरी तरफ कोकिला की मूर्ति अपने हाथ का इशारा करके उसे अपने पास बुलाती कोई न देख सके इस तरह जगदीश के सामने बिना देखे हुए और हाथ का

इशारा किये बिना, उसे पास बुलाने, कोकिला का अत्यन्त प्रिय ढंग, जगदीश कभी भूल नहीं सकता था। 'जिस दुनिया में मैं हूँ, उस दुनिया पर ऐसा कोप !' वह मानो करुण स्वर में पूछती हो, जगदीश को ऐसा लगा।

नाथबाबा ने उसे तैयार होने के लिए कहा, और पूछा—जगदीश, तुझे घोड़े पर बैठना आता है ?

'कुछ वर्षों से काम तो नहीं पड़ा। पर कोई दिक्कत नहीं होगी।'

'क्यों नहीं बैठ सका ?'

'नौकरी छोड़ने के बाद कोई मौका ही नहीं आया।'

'कैसी नौकरी ?'

'मैं सरकारी नौकरी में डिप्टी कलेक्टर की जगह पर काम करता था।'

'तू वही जगदीश है क्या ? कलेक्टर या कमिश्नर बनने के बदले आज तू चोर बना भागता फिरता है। तेरी मातृभूमि ने तुझसे बदला लिया है।'

मातृभूमि का नाम बीच में आ गया,यह जगदीश को अच्छा नहीं लगा ; पर उसके पास दूसरा उत्तर नहीं था। नाथबाबा, जगदीश और एक मनुष्य तैयार होकर नदी किनारे गये। वहाँ एक नाव उनकी इन्तज़ारी में खड़ी हुई थी। वे जैसे ही नाव के पास पहुँचे वैसे ही उसमें बैठे दो पुलिस के सिपाही खड़े हो गये। ज़रा भी संकोच किये बिना नाथबाबा ने नाव पर चढ़ते हुए पुलिस के आदमियों से पूछा—क्यों, अपने मुलजिम की खोज में हो ?

'जी हाँ। जाने-आने के खास-खास रास्ते तो देखना ही चाहिये न ?' पुलिसमेन ने जवाब दिया। दूसरे पुलिसमेन ने कहा—महाराज, आप कैसे एकाएक चल दिये। आपके जाने की खबर तो सुनी नहीं थी।

'हम लोगों का क्या ? मन में आया तभी चल निकले।'

जगदीश को ऐसा लगा कि इन पुलिसमेनों में से किसी ने भी उसे नहीं पहचाना। साधु बैठ गया, उसी के साथ वह भी नाव में बैठ गया।

'क्यों ? कहाँ तक चलना है ? ऐसा कौन-सा काम निकल आया है ?' साधु ने एक पुलिसमेन से पूछा।

'यहीं तक ही आये थे। हमें पता चला कि आप एकाएक जा रहे हैं। इसलिए हम यहाँ रुक गये।'

'तब तो हमारी तुम्हें खबर रखनी पड़ती है ; पुलिस किसी का भी लिहाज़ नहीं
ख़ती !' साधु ने कहा।

पुलिसवाले अपनी प्रशंसा से प्रसन्न हो गये। किसी का भी लिहाज़ न रख,
र्तव्य अदा करने का सन्तोष उनके मुख पर झलक उठा। उसने ऊपर से कहा—
ला, ऐसा हो सकता है, महाराज ! यह आपके साथ कौन है ?

'देख, मैंने क्या कहा था ? यही तुम्हारा मुलजिम है। ले जाओ इसे !' हँसकर
ाधु ने व्यंग किया। यह सुन जगदीश का चेहरा उतर गया।

'नहीं, नहीं, बाबाजी, मज़ाक़ क्यों करते हैं ? यह तो हमें पूछना ही पड़ता है।
ानेदार साहब का हुक्म था, इसीलिए हम यहाँ चले आये।'

'अपने थानेदार से पूछ देखना कि वह मेरी बगल में भी थानेदार था ; फिर
ेस तरह उसका कसूर मालूम किया जाता ?'

'ठीक है बाबाजी ! आप यहाँ आठ दिन रहे। इस बीच तो हमने इन्हें देखा नहीं !
ापके पास थके-थकाये सिपाहियों को दो-घड़ी बैठकर सुस्ताने का आराम तो था।'

इतना कहकर दोनों सिपाही नाव पर से उतर गये। माँझी ने नाव को आगे
ढ़ाया। सुबह होने पर सूर्योदय हुआ। जगदीश ने सोचा कि एक सूर्योदय और दूसरे
र्योदय के बीच उसका सारा जीवन ही बदल गया। परसों वह खुले रास्ते पर विचार कर
कनेवाला स्वतन्त्र गृहस्थ था। आज वह भागने को जगह खोजता हुआ अभियुक्त
ा गया है। परसों तक वह समाज और समाज के मनुष्यों का आश्रय खोजता हुआ
क नागरिक था। आज वह सारे समाज का शत्रु बनने को तैयार है।

हवा अनुकूल थी, इस कारण किश्ती तेज़ी से जा रही थी। एकाध घण्टे में दो
स नाव ने पार कर लिये। सारे समय शान्त रहने के बाद साधु ने जगदीश से
हा—जगदीश, तू कृतघ्नी साबित हुआ है।

'महाराज, आपने मुझे जो आश्रय दिया है, यह मैं कभी नहीं भूलूँगा।'

'तूने मेरा बीस वर्षों से देखा हुआ स्वप्न निरर्थक कर डाला।'

'मैंने ऐसा क्या किया ? भूल-चूक में यदि ऐसा हो गया हो तो मुझे बतलाइये !
तना मुझसे हो सकेगा, अपना दोष सुधारूँगा।'

'तुझसे नहीं बनेगा। मुझे यह डर लगता है कि मेरा भविष्य तूने बाँध
।'

'मुझे तो कुछ समझ नहीं पड़ता । मैं तो अभी आपके स्वभाव से अपरचित हूँ ।'

'पिछली रात याद है ? तू नहीं होता तो मैं क्या कर सकता था ?'

'स्त्री मारने की बात न कीजिये । पुरुष को मारना पड़े तो मैं तैयार हूँ ।'

'मुझे तेरी स्त्री को देखना पड़ेगा ।'

'बहुत सीधी-सादी है ।'

वे लगभग छः-सात कोस आगे तक निकल गये थे । सूर्य ऊँचा चढ़ गया था ; उसकी आँच से जगदीश का मुख स्वाभाविक ही लाल हो गया था । वेश बदलने उसने और कुछ भी नहीं किया था ; केवल एक सफेद चादर ओढ़ ली थी और भगवा रंग का साफा सिर पर बांध लिया था, पर इसी से उसे बहुत भारी परिवर्तन अपने दिखाव में मालूम हो रहा था ।

नदी के सामने की ओर नाव खड़ी हो गई । साधु ने वहीं पर जगदीश को उतरने के लिए कहा, और दोनों वहीं उतर गये । फिर साधु ने मांझी और दूसरे मनुष्यों को वापस जाने के लिए कहा, और दोनों नदी का चढ़ाव चढ़ गये । वहाँ से वे दूर पर के एक खेत में गये । खेत में तीन-चार झोपड़ियाँ थीं और तीन-चार स्त्रियाँ काम कर रही थीं । एक बड़े पेड़ के ऊपर मचान बनाया गया था ; और उस पर बैठा एक किसान युवक गीत गा रहा था । उस समय वातावरण में उस किसान का केवल गीत ही गूँज रहा था ।

साधु को देखकर एक वृद्ध झोपड़ी से निकलकर बाहर आया ।

'आइये, आइये, पिताजी ! आज कहाँ से आना हुआ । मुझे खबर भी नहीं की ।'

'मेरा एकाएक आना हुआ है । अपने घोड़े तैयार कर दो न ?' साधु ने कहा ।

'इस समय भला कोई जाने का समय है ? ऐसी क्या उतावली है ? दोपहरी हो गई है ।'

'नहीं, नहीं, भूपताजी ! मुझसे रहा नहीं जा सकता । हमारे पीछे पुलिस है ।' साधु ने कहा ।

ग़रीब और सीधे-सादे दिखाई देनेवाले वृद्ध भूपताजी की आँखें पुलिस का नाम सुनकर चमक उठीं ।

'अरे, इस गांव पर क्या ज़िम्मेदारी है ? छोकरा ऊपर पेड़ पर चढ़ा है, इससे कहे देता हूँ कि नज़र रखे । पांच कोस तक की दूरी में आस-पास सब दिखलाई देता है ।'

भूपता ने दो खाटें बिछा दीं और दोनों को बैठा दिया। अन्दर से एक स्त्री घूँघट निकाले दो लोटे दूध के भरकर ले आई। इन्हें भूपताजी ने साधु और जगदीश के लिए पीने को दिया।

'जगदीश! इन भूपताजी को पहचान ले। ये भी तेरे पंथ के हैं।' साधु ने कहा।

'यह किस तरह?'

'पुरुष को तलवार से मारते ये ज़रा भी नहीं हिचकते, पर स्त्री का नाम आते ही काँपते हैं। अपने समय के ये प्रसिद्ध डाकू थे। पर अब ऐसा कोई मौका नहीं आयेगा।'

'पिताजी, यह सब आपका प्रताप है। पर स्त्रियों पर तो हाथ नहीं चलता।'

'जवानी में एक ठाकुर की लड़की भगा लाये थे; बाद में तो सारी जवानी भर डकैती ही की। जब लड़के बड़े हुए और इनकी भी उम्र काफ़ी हुई तो खेती-बारी में पड़ गये।' साधु ने भूपताजी का विशेष परिचय कराया।

घूँघट काढ़कर आई हुई स्त्री ने स्वाभाविक तौर पर फिर घूँघट हटा लिया। अधेड़ उम्र की एक गौरवर्ण स्त्री की काली चमकती आँखों पर जगदीश की दृष्टि पड़ी। जगदीश ने यह अनुमान किया कि ठाकुर की भगाई हुई लड़की शायद यही होगी।

साधु ने खाट पर आराम करने की चेष्टा प्रकट की। जगदीश लेटा नहीं। उससे सोया भी नहीं जा सकता था। क्योंकि पुलिस पीछे है, यह साधु को भी डर था। वह खेत में इधर-उधर घूमने लगा। भूपताजी ने उसे खेत में घुमाकर हर एक वृक्ष का इतिहास बतलाया—जहाँ वे गायें बँधी हैं, वह बड़ का पेड़ इस ज़मीन के पहले का है और बहुत पुराना है। डाकू इसके नीचे बैठकर माल का बँटवारा करते थे। उन आम के पेड़ों को कोई पन्द्रह वर्ष हुए होंगे। हर वर्ष इन्हें बढ़ाता जाता हूँ। उनसे अच्छी उपज है। ये नीम के वृक्ष भी थोड़े पुराने हैं; पर दूसरे पेड़ हाल के ही हैं। पहले तो यहाँ छीले और बबूल के पेड़ों के झुण्ड थे। ज़मीन ऊबड़खाबड़ थी। जाने-आने का रास्ता तक था। धीरे-धीरे ज़मीन साफ़ की और आज बीस बरस हुए, कुछ देखने लायक जगह हो गई है।

सचमुच, यह जगह जगदीश को पसन्द आई। विस्तृत भूमि, छायावाले वृक्ष, हरा-हरा घास और हरियाली। इस तरह चारों तरफ़ चित्त को लुभानेवाले अनेक थे। फिर भूपताजी उसे कुएँ के पास ले गये। कुएँ पर दो चरस चल रहे थे।

दोनों चरसों को खींचनेवाले बैल स्वच्छ, मज़बूत, भरावदार, सुन्दर सींगों से शोभित हाथी के बच्चों की तरह मालूम होते थे। दोनों चरस कुएँ की गहराई में उतर जाते और फिर ऊपर खिंच आते थे। कुएँ के ऊपर खड़ा मनुष्य चरसों को घाट पर खोल देता, झरझर करता पानी फैल जाता और एक बड़ी कुंडो में से होकर खेत के चारों तरफ़ खोदी गई कियारियों में वह जाता था। बैल फिर कुएँ की तरफ़ लौटते और फिर अपने से बँधी हुई चरस की रस्सी पर बैठे मनुष्य की हांक के साथ ढाल में ले जाकर चरस को बाहर खींच निकालते। जगदीश को यह दृश्य बड़ा अच्छा मालूम हुआ। उसे पानी की खलबलाहट भी बहुत पसन्द आई। उसने भूपताजी से कहा—बैल तो बहुत अच्छे हैं।

भूपताजी ने कहा—भाई, खेती में तो मनुष्य को और पशुओं को कड़ी मेहनत किये बिना गुजारा नहीं।

सूर्य की धूप में चमचमाती हुई वहती स्वच्छ कुएँ के पानी की एक धार में पैर डुबाकर जगदीश खड़ा रहा। पानी का स्पर्श तो सभी ने किया होगा, पर कुएँ के ताजे पानी का स्पर्श मनुष्य को अजीब स्फूर्ति देता है, और फिर इस कुएँ में से निकलनेवाला बराबर बहता हुआ, ज़मीन को भिगोता और खेतों में प्राणों का सञ्चार करते पानी का जिसने स्पर्श नहीं किया हो; उसे कभी ख्याल ही नहीं हो सकता कि पानी सचमुच जीवन है। इस पानी में पैर डालकर जगदीश वरुण की उपासना का अर्थ समझा।

दो स्त्रियाँ पानी के बहने की नालियाँ ठीक करती थीं। जिस कियारी में पानी अच्छी तरह भर जाता, उस कियारी की नाली का मुँह फावड़े से बन्द करके पानी को रोक देती थीं। हमेशा बहना चाहनेवाला पानी दूसरी कियारियों में वह जाता था। इस पानी को नियन्त्रित करनेवाली दोनों युवतियों के मुख खुले हुए थे। उन्हें देखकर जगदीश को पता लगा कि किसानों में भी रूपवती स्त्रियाँ हो सकती हैं। उनके मुख की प्रामाणिकता और सौष्ठव देखकर जगदीश को कल्पना हुई कि यदि इन्हें कहीं सुधरे हुए ढंग की साड़ियाँ पहना दी जायँ तो ये शहरों में ठुमकती किसी भी रूप-गर्विता को ज़रूर लज्जित कर दें।

जगदीश को अपनी अफ़सरी का ख्याल आया। वह कई बार खेतों की माप कराता, और पकी खेती को जांचता था। एक बीघे में कितना गेहूँ होता है, और एक

वर्ष में कितना बाजरा बोया जाता है ; पचास बार चरस खींचा जाना हो तो बैलों को कितना समय लगेगा, और एक बीघा ज़मीन में पानी देना हो तो कितने चरस खींचने पड़ेंगे। ऐसी कई जानकारियाँ किसानों से पूछकर वह अपने ध्यान में रखता था। और इन जानकारियों के आधार पर वह अपने को इसका अच्छा ज्ञाता समझता था। उसे इस पर आज हँसना आ गया। अफ़सरी के आडम्बर में वह यह भूल गया था कि एक बीघे में कितना गेहूँ होता है। यह तो जैसी खेत की ज़मीन होगी उसमें उसी के अनुसार अन्न उपजेगा। एक चरस खिंचने में कितना समय लगेगा, यह पूछने से पता न चलेगा, यह तो जिससे चरस खिंचवाया जाता है, उसी को इसका पता चलता है।

और इसके उपरान्त किसान और ज़मीन का सम्बन्ध! यह किसान बने बिना कोई कैसे समझ सकता है ? ज़मीन के कण-कण में अपने प्राण समानेवाला किसान ही ज़मीन की और खेती की कीमत आँक सकता है। ज़मीन के लिए किसान प्राण दे देता है और प्राण लेता है। ज़मीन के लिए किसान हज़ारों रुपया खर्च कर देता है। ज़मीन के पीछे किसान फकीर बन जाता है। अपनी ज़मीन बेचते हुए किसान को किसी ने देखा है ? इन जैसा दया-पात्र, अश्रु-प्रेरक दूसरा एक भी दिखलाई नहीं देता।

जगदीश आज यह समझा कि किसानों को सुधारने का घमण्ड रखनेवाले अफ़सर और नेता मिथ्या बकवाद करते हैं। जब तक किसान का हृदय कोई नहीं समझ पाता तब तक किसान के सम्बन्ध में बोलने का भी किसी को अधिकार नहीं। उसने अफ़सरी में सुधरे ढंग की खेती करवाने के लिए खूब मेहनत की थी। अफ़सरी छोड़ने के बाद किसानों का अज्ञान दूर करने भाषण दिये थे, और सरकार तथा साहूकार बेचारे किसान को चूस खाते हैं, यह बात साबित करने के लिए कई ओजस्वी लेख भी लिखे थे। आज खेतों के वायुमण्डल में घूमते उसे यह स्पष्ट लगा कि इन दोनों समय के प्रयत्न झूठ और लड़कपन से भरे हुए थे। अफ़सरी में साहब की पोशाक में सजकर और देश-सेवा में श्वेताम्बर धारण कर, किसानों को उनकी दुर्दशा का ज्ञान करानेवाले जगदीश को हल का वज़न कितना होगा, इसकी भी खबर न थी।

भूमि उसके कानों में कोई महासंगीत गा रही थी। भूपताजी ने उसकी विचार-धारा रोककर कहा—ये दोनों मेरी लड़कियाँ हैं। इनका विवाह कर दिया है। मेरी लड़की अपने पति की घरमौजूदगी में हाल ही शहर में भाग गई है। ऐसा सुना

है कि वह किसी के यहाँ रहने लगी है। जवानी के दिनों में तो मार ही डालता; पर अब तो कुछ होता नहीं।

'क्या ?' चौंककर जगदीश बोला—उसका नाम क्या है ?

'राधी।'

'अरे, यह तो मेरे यहाँ है। उस जैसी पवित्र स्त्री तो मैंने कहीं देखी नहीं।'

'क्या कहते हो ? पिताजी जानते हैं ?'

'नहीं। महाराज से तो मेरी कल ही जान-पहचान हुई है।'

'इसकी माँ ऐसा ही कहती थी। लड़की कुँवारी रह ही नहीं सकती। माँ की तरह लड़की भी है ?'

'वह क्या तुम्हारे यहाँ से शहर पहुँची थी ?'

'नहीं। उसके गर्व का ठिकाना नहीं। उसका पति चार वर्ष से जेल में है; पर उसने एक पाई भी मेरे पास से सहायता-स्वरूप नहीं ली।'

'तुमको तो खबरगीरी रखनी थी ? उसकी शहर में कैसी दशा थी, यह जानते हो ?'

'क्या करूँ ? मेरे यहाँ वह कहाँ आती थी ? वह भली और उसका घर भला। मैंने उससे कहा था कि ऐसे नहीं निभेगा। पर उसने अपना घर छोड़ा ही नहीं। जवान लड़की, छोटा बच्चा ! अकेला कैसे रहा जा सकता है ? एक बार मुझे गुस्सा आया और मैंने कहा कि यदि तू नहीं आयगी तो फिर कभी नहीं बुलाऊँगा। फिर न मैंने उसे बुलाया और न वह ही आई। थोड़े दिनों बाद पता चला कि वह तो शहर भाग गई। छोकरी, जा-जा, अपनी माँ से कह कि राधी मिल गई है।'

दोनों लड़कियाँ अपना काम छोड़कर अपनी माँ को खुशखबरी सुनाने दौड़ीं। भूपताजी भी झोंपड़ी की तरफ़ चले गये। बीच में बँधा हुआ मचान था। उस पर भूपता का लड़का बैठा था उससे भूपताजी ने पूछा—अरे, कोई दिखाई देता है कि नहीं ?

'नहीं पिताजी !'

खेत की हरएक वस्तु आज जगदीश को आकर्षित करती थी। उसने पूछा—हम आये उस समय क्या यही लड़का गा रहा था ?

'हाँ, ज़रा मनमौजी है। ढोलक बजाना इसने सीखा है। एक बार तो भागकर

शहर में नाटक भी देख आया। और भाई, मचान की हवा ही ऐसी है। ऊपर बैठो तो मज़ा आता ही है और नीचे उतरने को तबियत नहीं होती।'

'लाओ पिताजी, उन्हें ऊपर।' लड़के ने किसान के मचान का वैभव दिखलाने की इच्छा बतलाई।

'नसैनी है ?' भूपताजी ने पूछा।

'वह तो नहीं है। रस्सी नीचे डालूँ ?'

'इससे चढ़ जायेंगे ?' भूपताजी ने कहा।

'हाँ, हाँ, चढ़ जाऊँगा।' कहकर जगदीश ने ग्रामीणों की तरह मचान के ऊपर चढ़ना पसंद किया। पेड़ की और रस्सी की मदद लेकर वह भूपताजी के पीछे-पीछे चढ़ा। मचान पर पहुँचकर उसने चारों तरफ नज़र डाली। उसे सारा वातावरण संगीतमय मालूम हुआ। नीचे ज़मीन पर फैली हुई हरियाली देख उसे ऐसा लगा मानो पोषण का अटूट भंडार भरा हो। चीचुड़-चीचुड़ करते चरस में से छलकता पानी चमकता हुआ दूर तक बह रहा था। सूर्य के प्रखर धूप को भी शीतल बनाकर अपना पारावार पोषण में रचती हुई छोटे-से जगदीश को अपनी छाती पर खिलाने के लिए हाथ लम्बा करके बुलाती उसे यह भूमि ऐसी मालूम हुई मानो कोई प्रगल्भा हो। अपनी आँखें दिखलाई न दें, ऐसे संकोच से भरे ढंग से हाथ की नाज़ुक उँगलियों को हिलाकर जगदीश को अपने पास आने के लिए आकर्षित कर शरमाती कोकिला उसे फिर दिखलाई दी। उसकी अपेक्षा यह दृश्य जुदा ही था। बहे जाते हुए वात्सल्य को पिलाने के लिए आतुर बनी बिना संकोच हाथ बढ़ाकर बुलाती अन्नपूर्णा की मूर्ति उसकी आँखों के सामने खड़ी हो गई। फिर वह संकुचित कोकिला की तस्वीर के पास खड़ी रही। जगदीश को मन्द-मन्द रोमाञ्च हुआ कि जगत् का पोषण तो स्त्रियों से ही है। फिर चाहे वह पत्नी के रूप में हो और चाहे माता के रूप में हो !

एकाएक भूपताजी ने कहा—भाई, धरती तो माता है ! इसने किसी को भूखों मारा है ?

यह सुनते ही जगदीश के हृदय की गाँठ खुल गई। कोई मन्द-मन्द प्रकाश उसके अन्तर में पड़ा, और उसे अपनी मातृभूमि अपनी आँखों के सामने दिखलाई दी। उसे ऐसा लगा कि अब तक उसने मातृभूमि की जो सेवा की, वह भूलों से भरी

हुई थी। वह सेवा नहीं थी, सेवा का भ्रम था। अब तक उसने मातृभूमि को पहचाना न था। यह मातृभूमि कल्पित चित्रों में नहीं थी, कवि की कविता में न थी और वक्ता की ओजस्वी वाणी में भी नहीं थी। यह तो आज ही उसकी खुली नज़र के सामने धरती माता के रूप में प्रत्यक्ष हुई। उसने धरती माता का, उसको आज तक न मिली मातृभूमि का—दर्शन कर अत्यन्त पूज्य-भाव से साष्टांग प्रणाम किया। उसने यह समझा कि अभी मातृभूमि की सेवा करनी तो बाकी रह गई है।

'पिताजी, नदी में एक नाव दिखाई देती है।' भूपताजी के लड़के ने कहा। जगदीश अपनी आँखों के सामने रमती हुई मूर्ति को एकाग्रता से देख रहा था। इससे उसकी एकाग्रता भंग हो गई। पर वह ऐसा मालूम होता था, मानो निर्भय बन गया हो। पुलिस का डर बिल्कुल जाता रहा था। जब भूपताजी जैसा डाकू भी धरती माता का आश्रय लेकर सुखी होता है, फिर मुझे धरती-माता सुख क्यों नहीं देगी?

किन्तु व्यवहार भूलने जैसी चीज़ नहीं। इसका भूपताजी की वृद्धावस्था ने उसे याद दिलाया।

'पिताजी को उठा देना चाहिये।' कहकर भूपताजी मचान से नीचे उतरे। तबियत न होते भी जगदीश भी उनके पीछे उतरा। झोपड़ी के पास पहुँचकर मालूम हुआ कि साधु तो उठे हुए हैं। उनसे भूपताजी ने नाव दिखलाई देने की बात कही।

'अवश्य पुलिस के आदमी होने चाहियें। मामूली सिपाही तो मुझे साधु समझते हैं, पर अफ़सर तो मुझे थोड़ा-बहुत जानते हैं न?' भूपताजी के सामने देखते हुए हँसकर साधु ने कहा। 'अब घोड़े जल्दी तैयार करो!'

भूपताजी ने अपने लड़के से घोड़े तैयार करने के लिए कहा। भीतर से भूपताजी की पत्नी घूँघट निकाले बाहर आई और दो थालियों में पंजीरी, उबले हुए आलू, अचार और मट्ठा परस गई।

'पिताजी! अभी तो समय है। इतना तो खा ही लें!'

भूपताजी का आग्रह स्वीकार कर दोनों ने पंजीरी खाई। इतने में घोड़े तैयार करके लड़का ले आया। दोनों घोड़े मज़बूत और फुर्तीले मालूम होते थे। उनका सुडौलपन, बालों की लटें और गर्दन की मरोड़ देखता हुआ जगदीश खड़ा हो गया। साधु ने भूपताजी से कहा—भूपताजी, पुलिस आये तो कहना कि मैं तो ओमकारिया पहुँच गया। दूसरी कोई बात पूछे तो कहना कि पिताजी खबर दे गये हैं कि तुम

व्यर्थ हैरान हो रहे हो। जिसके कब्जे में से रकम गई है, उसका घर तो पहले देखो। जरूर ऐसा कह देना, समझे ? और तुम्हारा खेत तथा झोपड़ा देखना चाहें तो देख लेने देना।

'अच्छी बात है पिताजी। कोई बात नहीं। पधारिये।'

साधु और जगदीश दोनों घोड़ों पर बैठ गये। साधु सहज ही आगे घोड़े पर चला। उसके पीछे जगदीश ने घोड़ा बढ़ाया। खेतों में घोड़े धीरे-धीरे चलाये। साथ में भूपताजी थोड़ी दूर तक करने गये। जगदीश को साधु की बातों से आश्चर्य हुआ—महाराज, आपको यह कैसे खबर कि चोरी गई रकम अमुक के घर में है ? मुझे भी ऐसा ही सन्देह होता है।

'यह सच बात है। तूने चोरी नहीं की, यह तो मैं तेरे कहने के पहले ही तेरे मुख को देखकर समझ गया था। उस बँगले से जाते हुए मनुष्यों की बातचीत सुनकर यह मुझे और भी अच्छी तरह समझ में आ गया था कि सचमुच तूने चोरी नहीं की है; बल्कि उसी के लड़के ने चोरी की है। यह तो बच्चा भी समझ सकता है; परन्तु पुलिस जहाँ पता नहीं होता वहीं पहले दौड़ती है।'

साधु ने घोड़े को तेज़ी से आगे बढ़ाया। जगदीश बहुत दिनों से घोड़े पर न बैठा था। इसलिए वह पीछे रह गया। साधु ने कहा—घबरा मत! बढ़ने दे!

दोनों घोड़े तेज़ी से दौड़े। जगदीश को भीगी मिट्टी का बल देनेवाली खुशबू आ रही थी, और यह महक उसके मगज़ से दूर नहीं हो रही थी।

(२६)

कोकिला पाँच मिनट तक दरवाजे पर खड़ी रही। पर जगदीश तो आया ही नहीं था। पगडंडी पर पैर बढ़ाते उसने उसे देखा था। इतनी देर क्यों लगी ? उसने आधी सीढ़ियाँ उतरकर देखा तो जगदीश वहाँ था ही नहीं। उसके बदले उसे एक ग्रामीण आता हुआ दिखाई दिया। उसका भयानक चेहरा देखकर कोकिला को डर लगा।

उसने कोकिला से पूछा—जगदीश भाई यहीं रहते हैं ?

'हाँ, क्यों ?'

इसका उत्तर दिये बिना वह मनुष्य निसंकोच सीढ़ियों पर चढ़ गया। चकित कोकिला उसके पीछे-पीछे अन्दर गई। अगले कमरे में हिंडोले पर पीयूष और

अमर गाड़ी-गाड़ी खेल रहे थे। राधा छज्जे की तरफ़ पीठ किये बैठी थी। उसकी दृष्टि उस नये मनुष्य पर पड़ी।

'देख, देख, अमर! गाड़ी खड़ी कर दे। बावाजी पकड़ ले जायगा।' पीयूष ने कहा। नये आये हुए मनुष्य में पीयूष ने बावाजी की कल्पना कर ली। उस मनुष्य ने राधा को देखा, और वह पास पहुँचकर खड़ा हो गया। उसकी और राधा की आँखें एक दूसरे को देख रही थीं। इसके बाद कोकिला पहुँच गई, पर उसकी उपस्थिति से उस दृष्टिपात में कोई अन्तर नहीं पड़ा।

कोकिला समझ गई कि यह कैद में से छूटकर आया राधा का पति है। वर्षों से एक दूसरे से बिछुड़े हुए ये ग्रामीण पति-पत्नी प्रत्यक्ष मिलने पर स्तब्ध बन गये थे। सिंह और सिंहनी की प्रेम-चेष्टा नये देखनेवाले को ऐसी लगती है कि सिंह और सिंहनी मानो एक दूसरे को फाड़ खायेंगे। कोकिला को भी ऐसा ही लगा कि यह भूखा भेड़िया जैसा दिखाई देनेवाला जंगली मनुष्य राधा को कहीं घायल न कर बैठे? उसने मृदुता से कहा—आओ भाई! तुम्हारी ही राह देखते थे। यह राधा बहिन तो तुम्हारी बाट जोहती रात को सोती भी नहीं है!

हथकड़ी, बेड़ी, अपशब्द और गालियों के वातावरण में से आये राधा के पति को यह आदर-सत्कार बड़ा नवीनता भरा मालूम हुआ। कैद में से कैदी के तौर पर छूटने पर उसे सब जगह तिरस्कार ही मिलता। अपनी पत्नी का आदर पायेगा या नहीं इसका उसके हृदय में संशय था। वह कुछ बोलने का प्रयत्न करने लगा, पर उसके मुख से शब्द नहीं निकले, और बिना कुछ उद्गार प्रकट किये वह ज़मीन पर बैठ गया।

'तुम्हारा नाम क्या है?' कोकिला ने पूछा। उसे शंका हुई कि जो नाम उसे मालूम था वही मनुष्य है या नहीं?

'बच्छराज!' उस आदमी ने उत्तर दिया। कोकिला ने राधा के पति का नाम पहले से ही मालूम कर लिया था। पति का नाम पत्नी नहीं लेती, यह रिवाज अब भी माना जाता है; परन्तु पति का नाम बताये बिना न जाना जा सके उस समय स्त्रियों को ही नाम जानने में सफलता मिलती है। कोकिला को विश्वास हो गया कि यह राधा का पति था। उसने झूले पर झूलते हुए अमर से कहा—अमर, इधर तो आ! देख, तेरे बापू आये हैं।

बाप की कल्पना किया हुआ अमर खेल छोड़कर बच्छराज के पास डरता-डरता पहुँचा। वह पिता को खोजने खुद अपनी माता के साथ चल निकला था ; इसका उसे पता था। वह पिता यही है ? पर ऐसा ? ऐसे ही कुछ अस्पष्ट विचारों से भरी आँखों से अमर ने अपने पिता के सामने देखा। बच्छराज ने आँखें एकटक कर बच्चे को देखा। उसका भयंकर चेहरा देख बालक पीछे हटता था। उसे कोकिला ने उसके बाप के पास बिठला दिया।

बच्छराज ने बच्चे को प्यार नहीं किया ; उसके सिर पर हाथ नहीं फेरा ; पर उसका गला रुँध गया और उसकी आँखों में आँसू छलक उठे। उसने बालक के सामने से मुख फेर लिया, पर ऐसा करने में उसकी दृष्टि राधा पर पड़ी। राधा नीचे देख रही थी, परन्तु इससे उसकी आँखों में उमड़े हुए आँसू बच्छराज की दृष्टि में आये बिना न रहे। कठिन पत्थर की तरह कैद में बन गये इस गुनहगार का हृदय व्यथा से चिर गया। बड़ा प्रयत्न करके उसने आँखों के आँसू आँखों में ही समा लिये, और पहचानने के स्वर में न आनेवाले स्वर में बोला—राधो, बहुत दुःख हुआ होगा, नहीं ?

पति के मुख से ये शब्द निकलने पर जैसे-तैसे हृदय पर अधिकार किये हुए राधा का मन काबू में न रह सका और वह खूब रोने लगी। उसकी आँखों से आँसुओं की झड़ी लग गई। बाहरी रास्ता यदि आबादीवाला न होता तो उसका रुदन रास्ते तक सुनाई देता। राधा से बोला भी गया तो वह भी रुदन के स्वर में ही बोली—मुझे तो कुछ भी दुःख नहीं हुआ ; पर जेल में पाँच-पाँच वर्ष किस तरह...

इसके आगे वह न बोल सकी। बच्छराज मानो मूढ़ बन गया हो, इस तरह हरएक को देखता था। कोकिला को ऐसा लगा कि पाँच वर्ष बाद मिलनेवाले पति-पत्नी को अकेला छोड़ना ज़रूरी है। उसने कहा—अमर, पीयूष ! भीतर चलो, मैं तुम्हें कुछ दूँगी।

जैसे ही तीनों अन्दर जाने लगे, वैसे ही दरवाज़े पर खड़खड़ाहट हुई। कोकिला ने पीछे फिरकर देखा, तो सात-आठ सिपाही उसने घर में घुसते देखे। वह वापस फिरी और उसने आगे आते सिपाही से पूछा—क्या काम है ?

पीछे से थानेदार ने आकर जवाब दिया—अभी बतलाते हैं। इसके पहले तुम लोग सब यहाँ पर बैठ जाओ। तुम्हारे मकान की खाना-तलाशी लेनी है।

'किसलिए ?' कोकिला ने पूछा।

'तुम्हारा पति चोरी करके भाग गया है, इसलिए ?'

पहले तो कोकिला समझी ही नहीं ; समझी तब उसने थानेदार का कथन नहीं माना।

'ऐसा हो ही नहीं सकता।' कोकिला ने कहा।

'तुम्हारे कहने से ? वह तो अभी पकड़ा जायगा। बोलो, मुजरिम को कहाँ भगा दिया है ?'

'मैं कुछ भी नहीं जानती और मुझसे मत पूछो।' गुस्सा होकर कोकिला ने कहा। थानेदार को अपनी पत्नी के गुस्से के सिवा किसी भी दूसरी स्त्री के गुस्से का पता न था। उसने कहा—ओ हो हो हो ! क्या मिजाज़ है ? एक हण्टर पड़ते ही सब निकल जायगा, तब पता चलेगा।

अपमान से कोकिला जल उठी। राधा ने यह देखा। उसे कुछ समझ न पड़ने से उसने इधर-उधर देखते हुए बच्छराज से कहा—यह तो अपने आश्रयदाता हैं।

बच्छराज खड़ा हो गया और धीमी पर भयानक आवाज़ में बोल उठा—थानेदार साहब, ज़बान सँभालकर बोलो !

विचित्र पोशाक और विचित्र दिखाई देनेवाले इस ग्रामीण की तरफ़ सबका ध्यान गया।

ईश्वर का अपमान भले ही हो, पर थानेदार का नहीं होना चाहिये इस कायदे को माननेवाले एक सिपाही ने ग्रामीण को धमकाया—ऐ वनचर ! तू कौन है ? पीछे हट ! कहकर लाठी ऊँची कर उसने मारने का भाव दिखलाया।

सिपाही की लाठी से भी अधिक चोट पहुँचानेवाले हथियार को न गिननेवाला बच्छराज आगे बढ़ा और उस सिपाही को गर्दन पकड़कर गरज उठा—लाठी मारेगा? एक झटके में ही चारों खाने चित्त कर दूँगा।

सब सिपाहियों से अधिक ऊँचे और मज़बूत बच्छराज को थानेदार कुछ देर देखता रहा। अधिकारियों में इतनी बहादुरी नहीं होती ; ऐसे समय उन्हें चतुराई से पेश आना चाहिये। थानेदार ऐसी चतुरता जानता था। उसने बच्छराज से कहा—बोल भाई, क्या तुझे मामला बढ़ाना है ?

'हम तकरार क्यों करेंगे ? तुम अपनी जीभ लगाम में रखो और कायदे से तलाशी लो।' बच्छराज ने कहा।

थानेदार हँसा—भाई, अब तो गाँव का किसान तक कानून-कायदा जाननेवाला हो गया है। ठीक, मैं तुझे अभी कायदा समझाता हूँ···अरे तू है कौन? बच्छराज तो नहीं?

'हाँ, साहब! वही। तुम्हारे ही हाथों पकड़ा गया था न?'

'हाँ, तो क्या करें? कायदे के अनुसार काम तो करना ही पड़ता है न? अरे तू कब छूटा?'

'आज ही छूटा हूँ।'

'तू यहाँ क्यों आया है? जिसके घर तू आया है उसने तो आज पन्द्रह हज़ार की चोरी की है। और तू भी कैद में से यहीं चला आया है। इसलिए और संदेह बढ़ेगा ही।'

'मैं तो अभी चला जाऊँगा। इसे लेने आया था।' कहकर बच्छराज ने राधा की तरफ़ उँगली से इशारा किया।

'ओहो ठाकुर तो स्त्रीवाला है!'

इस तरह बातें करते-करते थानेदार ने सारा घर तलाश किया। कितने ही कागज़ कब्जे में किये। कोकिला, राधा और बच्छराज के बयान लिये। घर में मुलजिम और माल तो नहीं मिला। इन दोनों को मिल जाने के विषय में कई धमकियाँ, कई चेतावनियाँ और कई समझदारी से भरी सूचनाएँ देकर थानेदार अपने सिपाहियों के साथ चला गया। मकान पर रात-दिन नज़र रखने के लिए सादी पोशाक के सिपाहियों को तैनात कर दिया गया था। पुलिस को विश्वास था कि चोरी करके भागा हुआ जगदीश जब चाहेगा तब यहीं पहले आयेगा।

थानेदार जिस समय गया तब शाम होने को जा रही थी। रोशनी जलाने के बहाने कोकिला अन्दर गई। साथ में बच्चों को भी ले गई और उन्हें कुछ खाने-पीने को दिया। अब तक की कठिनाइयों को वह सहती रही थी। ये कठिनाइयाँ उसे दुःख-रूप में लगी ही नहीं थीं। जगदीश उसकी नज़र के सामने रहता था। आज तो जगदीश चोरी करके भाग गया है, ऐसी खबर उड़ी। उससे यह बात मानी नहीं गई। जगदीश चोरी करे इस पर वह विश्वास कर ही नहीं सकती थी। रकम भारी थी। घर की तंगी से वह व्यथित था, किसी की नौकरी करना उसे पसन्द न था। ये सब बातें ठीक पर इनसे जगदीश चोरी करने के लिए प्रेरित हो, यह उसे ज़रा भी सम्भव मालूम

नहीं होता था। हाँ, संसार पर क्रोधित हुआ जगदीश पन्द्रह हज़ार की लूट भले ही करे, पर वह चोरी नहीं कर सकता।

आखिर मनुष्य ही तो है, किसी निर्बलता में चोरी कर ही डाली हो तो? यह ख्याल आते ही कोकिला चौंक उठी। जगदीश को पुलिस पकड़ेगी, उसके हाथ-पैरों में हथकड़ी-बेड़ियाँ डालेगी, अदालत में उसे हाज़िर करेगी और फिर सज़ा होगी, तब कौन जाने कितने वर्ष कैद में रहना पड़े--ये सभी कल्पनाएँ उसके हृदय में उठने लगीं। वह ग़रीबी सहन कर रही थी। वह बेइज्ज़ती सहने को तैयार थी। पर उससे जगदीश का वियोग कैसे सहा जायगा?

यह वियोग आज से ही शुरू हो गया! उसका जगदीश आज कहाँ था? जगदीश को उसने कभी अकेला नहीं रहने दिया था। यात्रा में ठहरने का स्थान हो, गाँव की शाला हो या चाहे शहर की छोटी कोठरी ही हो, पर कोकिला मौजूद रहती थी। अपने विनोदप्रिय और हँसमुख स्वभाव से पति को सदा प्रसन्न रखने का प्रयत्न करती कोकिला के अखंड संसर्ग को लेकर जगदीश कई बार अपने मित्रों की हँसी का कारण बनता था। अब जगदीश को कहाँ ढूँढ़ा जाय? कैसे खोजूँ? कोकिला व्यथित हो गई। पति की उपस्थिति में कभी आँसू न बहाने का प्रण किये बैठनेवाली पत्नी का हृदय भर आया। बच्चों को जहाँ का तहाँ खेलते छोड़कर वह ऊपर आँगन में चली गई। हृदय खोलकर उसके आँसू बहने लगे। मानो उसके पवित्र आँसू कोई देख न ले, इस तरह उसने अपनी साड़ी के छोर से ढँक लिये, और अगासी की छोटी दीवार पर वह बैठ गई।

कुछ देर में उसे ऐसा लगा कि कोई उसके पास खड़ा है; कहीं जगदीश तो नहीं आ गया? इस विचार से उसने आँखों के ऊपर का छोर हटा दिया। उसके बिल्कुल पास में ही कोई खड़ा था। जगदीश उसका हाथ छुये बिना यों क्यों खड़ा रहता, यह सोच कोकिला ने ऊँचा देखा। बढ़ते हुए अँधेरे में क्या उसने जगदीश को देखा?

नहीं। भला भावी मनुष्य की धारणा को कभी सिद्ध होने देती है? लालजी सेठ का धुँधला चेहरा उसकी नज़र में पड़ा। शंकास्पद वृत्तिवाले पुरुष के मुख पर अपने कसूर करने को तैयार हुए भाव की अजीब निर्बलता प्रकट हो जाती है। लालजी सेठ ने कौंसिल की उम्मीदवारी में प्राप्त होनेवाले शिष्टाचार का प्रदर्शन करते हुए कहा—कोकिला, यह सुनकर मुझे बहुत अफ़सोस हुआ है।

मानो अफ़सोस करने का किसी और दूसरे को अधिकार ही न हो, ऐसा मुँह बनाकर कोकिला ने पूछा—किसलिए ?

वह एकदम रोने से रुक गई थी। किन्तु लालजी सेठ अपने नित्य नियम के अनुसार अगासी के ऊपर खिड़की से कोकिला को देखने सिर निकालकर झाँका करता था। वहाँ से देखने पर उसे रोती हुई कोकिला दिखाई दी। जीवन में कई प्रसङ्ग एक ही बार आ जाते हैं। उनके सदुपयोग करने की बुद्धि जिनमें नहीं होती, उन्हें ये प्रसङ्ग हाथ की ताली देकर ऐसे चले जाते हैं कि जिससे उन्हें सारे जीवन पश्चात्ताप करना पड़ता है। लालजी सेठ ऐसे मौकों को छोड़ दे, ऐसा मूर्ख नहीं था। वह धीरे से नीचे उतरा, और कैसे बात करे, इसी उधेड़बुन में कुछ देर खड़ा रहा। आखिर जो चाहता था, वह बातें करने का मौका आ गया। उसने जबसे कोकिला को देखना शुरू किया था तभी से वह ऐसे मौके के लिए तरसता था। कौन किसके लिए इस संसार में तड़पता है, इसकी तलाश रहती हो तो ?

लालजी सेठ ने उत्तर दिया—तुम पर मुसीबत आये और फिर भला हमें सहानुभूति न हो ? मैंने जैसे ही अपनी बैठक में यह हाल सुना, तुरन्त काम छोड़कर यहाँ चला आया ; और जब पुलिस को वापस जाते देखा तब मुझे सन्तोष हुआ।

'आप जैसे पड़ोसी सज्जन को तो सहानुभूति होने की ही ठहरी ! क्या करें ?' कोकिला ने कहा।

'पहले तो मैंने उन्हें भेजने का विचार किया, पर वह घूमने चली गईं और तुम्हें मैंने ऊपर से रोतें हुए देखा। इसलिए मैं खुद यहाँ आया हूँ।' लालजी सेठ ने कहा। इसका अर्थ हिन्दू-संसार को समझाना पड़े, ऐसा नहीं है।

'ईश्वर ने जो सोचा होगा, वह होगा।' यह कहकर कोकिला ने चलने को पैर उठाया। लालजी सेठ को ऐसा लगा कि सुनहला मौका चला जा रहा है। उसने कहा—कोकिला, तुम्हें अब पैसों की बड़ी ज़रूरत पड़ेगी। पिछले महीने का किराया अभी नहीं दे सको तो कोई बात नहीं।

कोकिला को ऐसा लगा कि सेठ को सचमुच उसके प्रति सहानुभूति हुई है। उसने उपकार माना और कहा—आप ऐसी कृपा रखते हैं, यह आपकी प्रशंसा की बात है।

धैर्य का फल मीठा होता है। सेठ एक कदम आगे बढ़ा। उसने कुछ खुश होकर ...ों न तुम्हारे जैसों पर ऐसा ख्याल रखें ? दो नर्म वाक्य बोलने से कृपा-भा

दृढ़ हो जाता है, इसलिए उसने विशेष उदारता दिखलाई—तुम्हें कोई ज़रूरत पड़े और पैसों की आवश्यकता पड़े तो कहना, समझीं।

'हाँ, मैं कह दूँगी।' कोकिला को इतना अधिक आग्रह पसन्द नहीं आया। वह जाने लगी। सेठ को हाथ में से बाज़ी चली जाती मालूम हुई। उसने कोकिला का हाथ पकड़कर दो काग़ज़ उस पर रख दिये और कहा—तुम्हें तो आज से ही ज़रूरत पड़ेगी। संकोच क्यों करती हो? ज़्यादा ज़रूरत हो तो और माँग लो।

'मैंने एक बार आपसे कह दिया कि मुझे ज़रूरत पड़ेगी तो बता दूँगी, फिर क्यों आग्रह करते हैं? मुझे कुछ नहीं चाहिये।' कहकर हाथ में के काग़ज़ फाड़कर उसने अगासी के एक कोने की तरफ़ फेंक दिये।

'अरे, ये तो दो सौ रुपये के नोट हैं!' सेठ को धन का ऐसा अपमान अच्छा नहीं लगा। स्त्री पर विजय पाने के साहस में दो सौ रुपए का प्राथमिक खर्च उसके लिए बहुत था।

'मानों किसी ने दो सौ रुपए देखे ही न हों!' कोकिला बड़बड़ाई और आगे बढ़ी। सेठ झपटकर उसके सामने जा खड़ा हुआ और दरवाजे में जाने का रास्त उसने रोक लिया—अरे दो सौ का क्या हिसाब? तुम्हें कितनी ज़रूरत है? औ देखो, आज ही यह हीरे की अँगूठी तैयार होकर आई है। छः सौ का हीरा है। मैंने अभी यह पहनी भी नहीं है।

कोकिला ने सेठ के सामने देखा और पूछा—सेठ साहब, आप तो हमारे मुरब्बी हैं। बताइये यह इतनी अधिक मेहनत किसलिए कर रहे हैं?

लालजी अस्वाभाविक हँसा। इस हँसी में इस लोलुप प्राणी की वासना का स्वर सुनाई दिया।

'तुम्हारी जैसी चतुराईवाली को क्या कहा जाय? भला जब...मेरा और तुम्हार मन मिला हो...' डुबकी खाते-खाते मानो बोलता हो, इस तरह वह बोला, औ अपने दोनों हाथ फैला दिये।

'आपको मुझे अँगूठी देनी है?'

'हाँ, हाँ! लो, मेरी कसम।' सेठ को ऐसा लगा कि उसके जीवन का सफल क्षण आ पहुँचा हो। फिर उसने अपने हाथ लम्बा कर कोकिला के हाथ में अँगूठी दे दी और उसके अधिक निकट आ गया। कोकिला ने ज़ोर से अँगूठी दूर के एक छप्पर

पर फेंक दी। सन्ध्या के मन्द प्रकाश में हीरा चमकता हुआ छप्पर के ऊपर एक आवाज़ के साथ गायब हो गया।

'बस ? अब हो गया ? तुम्हारी अँगूठी मेरे पास पहुँच गई। अब पधारो, और फिर कभी बिना बुलाये मेरे सामने मत आना।'

सेठ को यह प्रेम-प्रयोग बहुत मँहगा पड़ा। पाई-पाई का हिसाब रखनेवाले साहूकार के सहने की भी कोई सीमा होती है। उसे क्रोध आया। पैसे से कोई चीज़ नहीं मिल सकती, इसकी उसे कल्पना भी नहीं थी। विजया जैसी स्वरूपवान और गुणवान स्त्री भी उसे पैसे के बल से मिल सकी थी। फिर भीख के मुँह में जानेवाली कोकिला का मिजाज़ क्या ?

'मेरा मकान अभी खाली कर दो। यह चोरों के रहने के लिए नहीं है।' लालजी ने धमकी दी।

कोकिला स्तब्ध बन गई। आवेश में वह यह भूल गई कि मेरा पति मुलजिम है, और अब किसी के घर में किराया देकर रहना भी उसके लिए अपने ऊपर उपकार करने के बराबर ही था। यह घर छूट जायगा तो वह फिर कहाँ जाकर रहेगी ? सेठ को ऐसा लगा कि वह ठीक दाव चला है। उसे अपनी बुद्धि का जो मान था, वह बढ़ गया।

'क्यों, दो अब जवाब ?' कोकिला को शान्त होते देखकर आवेश में सेठ बोला; और कई मौकों पर स्त्रियाँ बल द्वारा वश में होती हैं, ऐसा अपनी जवानी के अनुभव के आधार पर उसने कोकिला का हाथ पकड़ा।

इसी तरह, जिस समय विजया जगदीश को मोहित हो जाने मना रही थी, उसी समय लालजी कोकिला को राजी करने के लिए मना रहा था।

अपना हाथ पकड़े जाने के साथ ही कोकिला ने लालजी को एक धक्का मार दिया; और वह ज़ोर से चिल्ला पड़ी—पीयूष ! अमर ! कोई है क्या ?

अगासी के दरवाजे पर बच्छराज के डीलडौल की आकृति आकर खड़ी हो गई। कितनी ही देर से गई कोकिला वापस नहीं आई थी। इसका राधा को ख्याल हुआ। बच्चे तो खेलते-खेलते अगले हिस्से में आ गये थे। अँधेरा बढ़ रहा था, कोकिला क्यों नहीं आई, इस फिक्र में राधा भीतर आई। कोकिला को वहाँ न देखकर वह बहुत घबराई। विपत्ति में पड़ी युवती को अकेला छोड़ देने के लिए राधा को

पश्चात्ताप हुआ। कौन जाने वह क्या कर बैठे ? इस विचार से डरकर वच्छराज को साथ लेकर अगासी पर उसे देखने गई। उसी समय कोकिला की पुकार सुनाई दी और दो-तीन छलांग में वच्छराज अगासी में पहुँच गया।

वच्छराज को देखते ही लालजी के मुख का रंग उड़ गया। वच्छराज के पास कोकिला आ खड़ी हुई। इतने में राधा भी उसके पास आ पहुँची।

'क्यों सेठ ! अभी तक तुम्हारी आदत नहीं गई, ठीक ?' लालजी से वच्छराज ने पूछा। लालजी ने एक भी शब्द मुँह से नहीं निकाला। वच्छराज ने आगे कहा—झटका तो तुम्हारे लगता, पर बच गये और तुम्हारा भाई झपेट में आ गया। तब नहीं तो अब मौक़ा मिल गया। अब आज नहीं छोड़ने का।

'मैंने तो तुमसे कुछ भी नहीं कहा। गिरधर सेठ ने पैसे माँगे और तुमने दिये नहीं। ज़रा सख्ती की तो ठाकुर का मिजाज़ बिगड़ गया। पैसे खर्च करके तुम्हें चोरी से हमने बचाया। उसका तुमने यह बदला चुकाया है !' हिम्मत करके लालजी सेठ ने कहा। वच्छराज के साथ अपना पुराना लेन-देन का सम्बन्ध उसने बतलाया।

'चोरी से तुमने मुझे बचाया ? पर सेठ, चोरी करने के लिए तुमने मुझे लाचार कर दिया था। रुपए को दुगुना या चौगुना बताकर ज़मीन छीन ली। घर रहा था, वह भी तुमने लिखा लिया। इसके बाद भी हरामी बताया। याद है न ?'

'क्या है ? नहीं भाई, मुझे कुछ याद नहीं।'

लालजी ने 'नहीं' तो कह दिया, पर वच्छराज को देखते ही उसे थोड़े वर्ष पहले घटी एक घटना याद हो आई। गिरधर सेठ का दिमाग़ तेज़ी से काम करता था; परन्तु उसकें अपना फिर विवाह करने की इच्छा प्रकट करने पर लालजी ने बड़ा विरोध करके विवाह रुकवा दिया। आखिर गिरधर सेठ ने चेतावनी दिलवाई कि यदि मेरे कार्य में मेरा छोटा भाई बाधा देगा तो मैं उससे सारे जीवन भर नहीं बोलूँगा। इतना ही नहीं ; वह सम्बन्ध भी तोड़ देगा। भाई के सारे सम्बन्ध तोड़ने की लालजी की इच्छा नहीं थी, केवल वह गिरधर सेठ का विवाह ही रुकवाना चाहता था। वह खुद अपने भाई के पास आया ; और विवाह रुकवाने में उसका ज़रा भी हाथ नहीं है, यह विश्वास कराने का उसने सोचा। गिरधर सेठ गाँवों में उगाही के लिए गया था। खबर पड़ते ही उसने अपने एक किसान वच्छराज को गाड़ी के साथ लालजी को ले आने के लिए भेजा। गाड़ी में बैठे-बैठे वच्छराज ने गिरधर के विरुद्ध लालजी से

फरियाद की—बड़ा सेठ तो मारे ही डालता है। घर में अनाज तक नहीं रहने देता। विवाह के बाद खेती-बारी कर ठिकाने लगने का विचार किया और खेती करनी शुरू की, पर कौन जाने कहाँ से अपना कर्ज़ निकाल बैठता है, जिससे हमारी सारी मेहनत-मज़दूरी धूल में मिल जाती है। मेरे बाप-दादा के समय के कागज निकालता है और अपनी थैली भरता जाता है।

'बड़े भाई का काम ही ऐसा है न! फिर उन्हें विवाह करना है। इसलिए पैसे का पानी…।' लालजी ने किसान के पास भाई के विरुद्ध शिकायत की।

'बापा, तुम्हें तो ईश्वर ने दिया है, इसलिए उस पैसे का पानी करते हो। पर यह तो मुझे फिर डाकू बनाने का काम करते हो। सिर्फ घर बचा था, वह भी अब लिख लोगे तो फिर हम रहेंगे कहाँ?' रास्ते में ही वच्छराज का घर पड़ता था। उसने उसे लालजी सेठ को बतलाया और कष्ट भरी आवाज़ में अपनी दीनता बतलाई। चार-पाँच पीढ़ियों से गाँव के मालिक माने जानेवाले वच्छराज के पूर्वजों ने लूट-पाट करने और धावा बोलने में बहुत नाम कमाया था। वच्छराज का दादा तो पिण्डारियों के एक दल का सरदार भी था। अंग्रेज़ी राज्य में पिंडारी लुप्त हो गये। वच्छराज के दादा की ज़मीन-जायदाद सरकार द्वारा छीन ली गई। यह सच था कि इन लोगों ने लूट-मार का धन्धा अख़्तियार कर लिया था। ऐतिहासिक दृष्टि से ऐसा धन्धा अच्छा समझा जाता है या नहीं, यह जुदी बात है; किन्तु इतना तो स्पष्ट है कि इन लड़नेवाली कौमों के राजसी स्वभाव में राजा को शोभा देनेवाले अंश मौजूद थे। पन्द्रह-बीस मनुष्यों की टोली को खिलाने-पिलानेवाला लुटारू 'बापू' और 'ठाकुर' बनने के स्वप्न देखता, भाट-चारण तथा अन्य आश्रितों के एक समूह का गुज़ारा चलाता, मेहमानदारी में अपनी जोड़ी हुई सम्पत्ति खर्च कर देता, स्त्री-बालक तथा गौ-ब्राह्मण का रक्षक रहता और शरणागत की प्राण रहते रक्षा करता था। अलबत्ता उसमें आडम्बर बढ़ जाता था। शौक और व्यसन उसे आकर्षित करते तथा प्रतिष्ठा का घमण्ड उसमें हो जाता था। किन्तु नीति-अनीति की एक ऐसी स्पष्ट भावना इस वर्ग में विकसित हो उठती थी कि जिसका उल्लंघन होने पर वे प्राणों तक की बाज़ी लगाने तैयार रहते थे। उन्होंने रक्षण और संहार की भौगोलिक सीमा निर्धारित कर ली थी। डाकू ने जिस सीमा तक डकैती अपनाई हो, उस सीमा में से वह इच्छानुसार पशु लाता, पर अपने आश्रय की हद में से एक भी पशु जाने की ज़िम्मेदारी उस पर

होती थी। दूसरे की सीमा के किसानों के खेत जला डालने में उन्हें ज़रा भी दया नहीं आती थी। परन्तु उसके आश्रित किसानों का कोई वाल भी बाँका नहीं कर सकता था। उसके दुश्मन का एक ही वार से दो टुकड़े कर देने को हाथ तड़पते रहते थे। किन्तु किसी स्त्री, बालक या वृद्ध को देखते ही खून के प्यासे इन लुटेरों के हाथ ठिठिया जाते थे।

गाँव-जायदाद खोये वैठा बच्छराज का दादा अन्याय की चोट से मर गया था। इस अन्याय का असन्तोष उसके अपने पुत्र में भी शेष रहा था। बच्छराज का बाप अपने पिता की प्रतिष्ठा और वैभव को अपनाये हुए आधा लुटारू और आधा किसान बन गया था। अब गाँव उसका न रहा था। वह अब किसी का भी रक्षण करने को अपना कर्त्तव्य समझता, इसका कोई कारण नहीं था। इसलिए उसने लूट तथा चोरी से तोवा की। शिक्षा से बचने और आजकल के जमाने की प्रतिष्ठा के कारण उसे थोड़ी-बहुत ज़मीन मिल गई। साहूकार तथा किसानों को डराकर पहले अपने पिता की मानी कुछ ज़मीन वह कब्जे में कर बैठा था। परन्तु अभी उसमें 'ठाकुर' की गंध होने से खुशामदखोरों को, आश्रितों तथा मेहमानों को पालने की प्रवृत्ति तीव्र ही थी। चोरी और लूट से घटी हुई आमदनी और पहले जैसा खर्च और फिर उस पर ऋण भी बहुत था। अपनी पुश्तैनी खुमारी में वह दूसरे की ज़मीन भी अपनी मान लेता और उस ज़मीन को साहूकार के पास गिरवी रख देता था। थोड़ा-बहुत रुपया देकर बहुत-सी ज़मीन रख लेनेवाले साहूकारों के विरुद्ध ठाकुर के डर से लोग कुछ कह नहीं सकते थे। गिरधर सेठ ने बच्छराज के पिता की वृद्धावस्था में उसकी मिल्कियत कई बार उधार रुपए देकर बहुत-सी ज़मीन अपने कब्जे में कर ली थी।

बच्छराज बचपन में 'ठाकुर' के पुत्र के रूप में ही पला था। शर्त बदकर घोड़े को दौड़ाना, तीर कमान, तलवार चलाना और बाप को उसके कार्य में मदद कर लूटपाट की शिक्षा प्राप्त करना, उसका खास काम था। उस पर वर्तमान संस्कारों की सहज ही छाप पड़ी थी। वह थोड़ा-बहुत लिखा-पढ़ा भी था, भाट-चारणों के पास बैठकर अपने पूर्वजों की अतिशयोक्ति भरी कहानियाँ सुनता, बाँसुरी बजाता जंगलों में घूमता-फिरता और दिखाव के लिए खेती करता था। अपनी ही कौम में अपने दिखाव और शौर्य की प्रशंसा सुनता था। एक बार उसने अकेले ही एक चीते को लाठी से एक झपट में ही मार डाला था।

एक वार उसके बाप का पुराना मित्र भूपताजी उससे घर पर मिलने आया। भूपताजी भी पहले एक प्रसिद्ध डाकू था। उनकी एक दूसरे की कार्य-कुशलता के कारण यह मित्रता किसी प्रकार टिकी रही थी। भूपताजी खेती में पड़ गया था, और मेहनत करने की वृत्ति को लेकर उसे खेती से अच्छा फ़ायदा होने लगा था। वच्छराज के बाप से खेती नहीं हो सकी, और उसकी आर्थिक स्थिति किसी तरह ही चल पाती थी। भूपताजी समझाता, पर 'ठाकुर' को खेती करना जँचता ही नहीं था।

ठाकुर ने भूपताजी की बहुत खातिरदारी की। नशा किया और नशे में बातों का रंग जमते ही दोनों मित्र अपने दिमाग़ और ज़बान पर का क़ाबू खोने लगे। वच्छराज भी वहाँ उस समय किसी काम से आया। उसे देख भूपताजी बोला—ठाकुर, लड़का तो बड़ा हो गया है। अब तो इसका विवाह कर दो।

'हाँ, सोचता तो हूँ, पर कोई योग्य लड़की तो मिले।'

'योग्य और अयोग्य क्या, इस समय जो मिल जाय वही सही।'

नशे की धुन में भी ठाकुर अपना महत्त्व भूला नहीं था। उसे भूपताजी का यह कथन ठीक नहीं लगा। उसने कहा—भूपत, तुम्हारी लड़की भी तो बड़ी हुई न? उसका वच्छराज से सम्बन्ध कर दो तो मुझे दूसरी जगह कुल-आबरू देखने की परेशानी तो न उठानी पड़ेगी।'

'पर अरे ठाकुर, मेरी लड़की के गुजारे लायक पहले अन्न तो अपने पास पैदा कर लो।'

यह सुन ठाकुर का नशा पूरे तौर से उतर गया। वह सिर से पैर तक गर्म हो उठा। उसका मन हुआ कि यदि पास में कोई हथियार होता तो भूपताजी को मार ही डालता। पर उसे मौके का खयाल हुआ और कुछ बोला नहीं। भूपताजी को भी ऐसा लगा कि कुछ भूल हो गई है। मनुष्य ग़रीबी सहन कर सकता है, पर ग़रीबी की हालत में किसी का पोषण करने की अशक्ति का प्रकटीकरण उसे सहन करना मुश्किल होता है। वच्छराज को अपनी लड़की देना भूपताजी को पसन्द नहीं होता, ऐसी कोई बात न थी। पर उसे नशे के ज़ोर में ठाकुर की ग़रीबी मज़ाक करने के योग्य या उपहास के रूप में ताना देने के योग्य मालूम हुई।

शाम को ही भूपताजी चला गया। वच्छराज ने पिता के पास आकर पूछा—
–ी, कहो तो इसकी लड़की भगा लाऊँ?

पिता ने गुस्से में कहा—इसमें मुझसे क्या पूछता है ?

रात ही रात वच्छराज घोड़े पर चढ़कर राधी को भगा लाया। भूपताजी का लड़का वच्छराज का मित्र था। उसके इस कार्य में उसकी सहानभूति मिली। वच्छराज को राधी के प्रति प्रेम था; राधी ने वच्छराज को देखा था; और उसके शारीरिक वल की वात भी सुनी थी। उसे भी वच्छराज का आकर्षण था; इसलिए कोई अधिक कठिनाई नहीं पड़ी। परन्तु भूपताजी का गुस्सा शान्त नहीं हुआ था। उसके अपमानित करने के जवाब में वच्छराज ने राधी को भगाकर विवाह कर लिया, और राधी ने बिना विरोध किये प्रसन्नता से विवाह करवा लिया। यह भूपताजी को भारी अपमान मालूम हुआ, और उसने अपना यह निश्चय प्रकट किया—राधी आज से मेरी लड़की नहीं।

वच्छराज का वाप थोड़े समय वाद मर गया। लड़की और दामाद के साथ मेल कर लेने के लिए राधी की माँ और उसके भाई ने भूपताजी से वहुत आग्रह किया। उसका हृदय भी पिघला। आखिर एक शूरवीर से तो लड़की का विवाह हुआ न ? इस विचार ने भूपताजी को नम्र वना दिया, किन्तु वह अभी अपने अपमान का समाधान नहीं कर सका था। उसने कहा—लड़की भीख भी माँगेगी तव भी मैं उसकी तरफ़ देखने का नहीं।

राधी भी आखिर भूपताजी की ही लड़की थी। उसकी माँ भी इसी तरह हरण करके लाई हुई एक ठाकुर की लड़की थी। उसने भी निश्चय किया कि पिता के घर मेरी छाया भी नहीं जायगी।

इस तरह वच्छराज तथा राधी का प्राचीन पद्धति के अनुसार प्रेम-विवाह हुआ था। यह प्रेम-विवाह आजकल के प्रेमी, वियोगी, उपन्यास और कविता में व्यक्त होनेवाला प्रेम-सम्वन्ध जैसा नहीं था। इस प्रेम-लग्न में तलवार की धार चमकती और गर्वीले घोड़े का हिनहिनाना सुनाई देता था।

(२७)

वच्छराज के पिता का स्वर्गवास होने के वाद राधा की सलाह के अनुसार उसने खेती में मन लगाया। जिस खेत में से दो मन अनाज भी पैदा नहीं होता था, उसमें से वारह मन अनाज पैदा हुआ। ठाकुर के समय में नौकर और

आश्रितों के हाथों में सार-सम्हाल की गई गाय-भैंसें दुबली हो गई थीं। वे राधा का हाथ फिरते ही अच्छी और तन्दुरुस्त हो चलीं। वच्छराज को ऐसा लगा कि कोई मनुष्य पचास रुपए का माल लूट लाये इसकी अपेक्षा जमीन में से पचास रुपए का माल पैदा करना अधिक सरल और कम जोखिम का कार्य है। धरती की जैसी सेवा हो वैसा ही उसका बदला धरती की तरफ़ से मिलता है।

पर ज्योंही वच्छराज खेती में से अधिक उपज पैदा करने लगा, वैसे ही उसे मालूम हुआ कि उसके सिर पर ऐसी जवाबदारियाँ बढ़ती जा रही हैं, जिसका उसने खयाल भी नहीं किया था। विकराल वाणिज्य खेती को चूसता ही आया है। वच्छराज बारह मन अनाज पैदा करता तो गिरधर सेठ पुराने कागज निकालकर कर्ज में बारह मन पर ही अपना कब्जा जमा लेता। जब भैंस के दूध में से घी निकालकर बेचने को राधा सोचती और घी निकालकर उसे बेचने का प्रबन्ध करती तब उसे पता चलता कि भैंस और उसका घी तो गिरधर सेठ के यहाँ गिरवी रखा है। यहाँ तक ही बात नहीं थी। व्याज और व्याज पर भी व्याज चढ़ता था, वच्छराज चार जन्म ले तो भी रुपए न पट सकें, ऐसी हालत उसे मालूम हुई। इसमें क्या ठीक है और क्या ठीक नहीं, ऐसा नहीं कहा जा सकता था। सेठ के कागजात ठीक साबित होते। वच्छराज खेती करके अपना खर्च चला सकता है, यह जानकर गिरधर सेठ उसे अदालत के झगड़ों में फँसाये ही रहता था। घोड़े पर घूमने और वंसी बजानेवाला ठाकुर का लड़का सीधी-सादी खेती कर सकता था; किन्तु व्याज-बट्टा, रुपए, पैसे, पाई, मुद्दत, समन्स और दावा-अर्जी, वकील, गुमाश्ते और मुख्तार, मुन्सिफ, नाजिर और मुन्शी—इन उलझनों से भरी सृष्टि उसे भूलभुलैया जैसी और चोरी तथा डाकूपन की अपेक्षा अधिक भयंकर लगती थी। आधीरात के समय बाघ-भेड़ियों से भरे जंगल में घूमते हुए उसे डर नहीं लगता था, किन्तु दिन में सिपाहियों से रक्षित, स्वच्छ, भड़कदार और दिखावटी लोगों, तथा प्रभावशाली मैजिस्ट्रेटों से शोभित अदालतों में खड़ा होने पर वच्छराज के पैर डगमगाते थे। उसे ज़रा भी समझ नहीं पड़ता कि अपनी ज़मीन और मिल्कियत के अणु-अणु में गिरधर सेठ का पक्ष न्याय की अदालत किस तरह उचित ठहरा देती है। इतना ही नहीं, वच्छराज देखता रहता और गिरधर सेठ सारा माल उठवा ले जाता।

वच्छराज को यह खटका। उसे ऐसा लगा कि इसकी अपेक्षा तो डाँग मारकर

सेठ की जायदाद लूट लेना सहज़ है। पर राधा उसे रोकती और खेती में ही लगे रहने को तैयार करती थी।

'सेठ की पाई-पाई हमें चुका देनी है, समझे!' यह राधा रोज कहती थी।

एक दिन गिरधर सेठ मिला और उसने कहा कि घर गिरवी रखने की मियाद पूरी हो गई है। इसलिए वच्छराज या तो कर्ज पटा दे और या दूसरी दस्तावेज कर दे।

'पिताजी ने यह कभी नहीं कहा कि घर भी गिरवी रख दिया है। यह नया अड़ंगा कहां से निकाला?' वच्छराज ने पूछा।

'तुझे नया लगता है, पर यह दस्तावेज कोई नई है?' गिरधर सेठ ने कहा।

'देखूँ, मेरे पिता के दस्तखत हैं क्या?'

'सही का क्या करना है? अँगूठे की छाप है न? वह जब बीमार पड़ा उस समय उसने घर गिरवी रख दिया था। देख, यह साक्षी भी है। उससे तो सही हो नहीं सकती थी। इसलिए दूसरे के पास से करा ली थी।'

वह सचमुच चिन्ता में पड़ गया। गिरधर सेठ का छोटा भाई लालजी, जो शहर में रहता था, इसकी अपेक्षा अधिक उदार माना जाता था। वच्छराज गाड़ी लेकर उसे लिवा लाने गया और लालजी को अपनी स्थिति समझाई। उसे अपने घर के सामने से होकर ही लालजी को ले जाना था। घर आया तो उसकी तरफ़ उँगली बताकर कहा—यह मेरा घर है। अब इतनी रहने लायक जगह तो बाकी रहने दो!

'मैं भाई से कहूँगा। वह तेरे घर के सामने कौन है?' लालजी ने पूछा। उसकी चकोर आँखें चांदनी को तुरन्त खोज निकालती थीं। वच्छराज के दरवाजे के पास एक सुडौल सुन्दर स्त्री को देखकर लालजी ने उसका परिचय पूछा। ज़रा शर्माकर वच्छराज ने कहा—यह तो मेरी स्त्री है।

'ठीक-ठीक, एक बार तो तूने कभी यह कहा था कि मैं किसी की लड़की भगा लाया हूँ, वह क्या यही है?' लालजी ने वच्छराज की विजय का प्रकरण खोला।

ज़रा हँसकर वच्छराज ने सिर हिलाकर स्वीकार किया।

'वच्छराज, अपने स्वभाव के कारण तू इसे ठोकता-पीटता तो नहीं?' स्त्रियों की बातचीत में रस लेनेवाले लालजी ने पूछा।

'नहीं साहब, मारपीट क्यों करूँगा?'

'अरे भाई, बनती नहीं तो ऐसा ही होता है, पर ऐसा लगता है कि तुम्हारी खूब

बनती है। तुम्हें पत्नी अच्छी मिली है, समझे! बहुत खूबसूरत मालूम होती है।' लालजी सेठ की वाचालता बढ़ गई।

पराई पत्नी के सौंदर्य का उसके पति के सामने बखान करना अभी तक गाँववालों को पसन्द नहीं होता। बच्छराज बिना बोले बैठा रहा। इसलिए यह प्रश्न अभी बातचीत करने के लिए खुला ही है, यह मानकर लालजी सेठ घर गया।

बच्छराज का गाड़ीवान लालजी का सरोसामान लेकर घर में गया। ऐसे नौकरों के सामने अपने मन-पसन्द उद्‌गार प्रकट करने में बहुत सावधानी और डाहपन रहता है। मौका आये भी तो 'नौकर झूठ बोलता है' कहकर अलग हुआ जा सकता है। और नहीं तो वह अपना विचार तो इधर-उधर फैला ही देगा।

लालजी ने गाड़ीवान के सामने बच्छराज की भाई से सिफ़ारिश की--बच्छराज के घर के बारे में कोई झगड़ा है?

'उसे तकरार के बिना और क्या सूझता है?' गिरधर सेठ ने कहा।

'घर गिरवी रखा है और छुड़ाने के लिए उसके पास पैसे नहीं हैं।'

'पैसे नहीं हैं तो भीख माँगे।' गिरधर सेठ ने सहल उपाय बताया।

'नहीं तो उसकी स्त्री को गिरवी रख लो।' सभ्यतापूर्ण सुधार सुझाते हुए लालजी खूब हँसा। लेनेवाला साहूकार देनदार किसान का मन-चाहा मज़ाक कर सकता है। किसान समझदार बनकर मज़ाक में हुआ सुझाव सह ले तो उसे देना पटाने का एक रास्ता मिल जाता है।

नौकर ने सामान रखकर बाहर गाड़ी में ही बैठे हुए बच्छराज से ये सारी बातें कहीं। यह वृद्ध गाड़ीवान बच्छराज के कुटुम्ब के जितना ही अभिमान रखता था। यह सुनते ही बच्छराज का पुश्तैनी खून खौल उठा। उसकी आँखों में खून उतर आया, और गाड़ी में से कुल्हाड़ी लेकर घर में घुसा।

गिरधर सेठ और लालजी एक ही गद्दी पर तकीये से टिके हुए बैठे थे। बच्छराज ने आकर पूछा--क्यों लालजी सेठ, तुमने क्या कहा? मेरी स्त्री को गिरवी रखने की बात कही है?

हाल ही बच्छराज के विरुद्ध एक दावा जीतकर निडर बने गिरधर सेठ ने भाई की तरफ़दारी से मिज़ाज बिगाड़कर उत्तर दिया--हाँ, हाँ, क्या है? डराने आया है? पैसा न देने पर औरत भी गिरवी रखनी या बेच देनी तक पड़ती है।

फ़ौरन वच्छराज ने कुल्हाड़ी उठाई और गिरधर सेठ के गले पर ज़बर्दस्त आघात किया। कुल्हाड़ी उठाने के साथ ही गिरधर सेठ घबड़ा गया और बचने के लिए तकिये के नीचे लुढ़क पड़ा। यदि वह वैसा ही बैठा रहता तो एक ही आघात से उसका सिर धड़ से अलग हो जाता। मोटा तकिया बीच में आ गया और उसने चोट का वेग झेल लिया। तकिया कटने पर गद्दी पर पड़ा गिरधर सेठ का हाथ और पसली का हिस्सा कुल्हाड़ी की चोट से खूब घायल हो गया। कलम-कागज़ से लड़नेवाला नाज़ुक बनिया कुल्हाड़ी की झड़प झेल न सका। उसने डरकर ज़ोर से चीखना शुरू किया और इस चीखने के साथ ही उसने अपने दिमाग का काबू खो दिया।

वच्छराज ने देखा कि अभी आघात की ज़रूरत है। उसने फिर कुल्हाड़ी उठाई, किन्तु वह चोट करे; इसके पहले ही उस वृद्ध मनुष्य ने आकर उसका हाथ पकड़ लिया और उसे सेठ का खून करने से रोक लिया। वच्छराज लालजी को तो छोड़ता ही नहीं। पर यह चालाक आदमी अपने भाई पर आक्रमण होते ही भाग खड़ा हुआ और इस घटना की खबर घर में और बाहर फैलाने लगा। लोग इकट्ठे हो गये। वच्छराज ने ज़रा भी भागने का प्रयत्न नहीं किया। वह पकड़ा गया। उसने अपना कसूर मान लिया। उसने साफ़ बतला दिया कि वह लालजी को मार डालने के इरादे से ही घर में घुसा था। बीच में गिरधर सेठ बोल उठा। इसलिए लालजी पर होनेवाला आघात उसके भाई पर पड़ा। अपनी पत्नी के प्रति गन्दे वाच्य कहनेवाले को वह मार डालनेवाला था और किसी तरह अगर वह बच गया है तो उसे फिर मारे बिना न रहेगा।

ऐसा प्रकट करनेवाला गुनहगार भाग्य से ही न्यायाधीश की दया पाता है। पत्नी की हँसी के सम्बन्ध की बात अदालत में साबित न हो सकी; क्योंकि यह कहनेवाला तो उसका अपना ही आदमी वृद्ध गाड़ीवान था। इसलिए उस पर अदालत में विश्वास नहीं किया गया। फरियादी पक्ष ने इस खूनी हमले का कारण उस पर अपना कर्ज लेना बतलाया और यह साबित भी हो गया। खून करने के इरादे से हमला करनेवाले मुजरिम को सपरिश्रम लम्बी सजा हुई।

राधा अपने बाप के घर नहीं गई। अपने छोटे पुत्र के साथ पति के घर में ही पड़ी रही और उसके छूटने की आशा में दुःख भरे दिन बिताने लगी। वह अकेली खेती नहीं कर सकती थी। गाय-भैंस से उसने अपनी गुज़र की। घर छीन लेने की

लालजी ने धमकी दी ; परन्तु राधा का भाई कभी-कभी उसके पास आता था, और उसने लालजी को चेतावनी दी कि यदि घर का फिर कभी नाम लिया तो गिरधर सेठ से भी बुरी हालत में मारा जायगा। यह धमकी काम कर गई। उसे गाँव की जायदाद की ज़्यादा ज़रूरत नहीं थी। गिरधर सेठ के लिए तय की गई लड़की से लालजी ने खुद विवाह कर लिया और शहर में आकर अपना धन्धा-रोजगार बढ़ाने लगा।

कोकिला को ललचाने और उस पर बल का प्रयोग करने के परिणाम में उसने उसी बच्छराज को सामने खड़े देखा। बच्छराज ने ऊपर वर्णन किये प्रसंग की याद दिलाई। हक्का-बक्का लालजी सेठ खिड़की से होकर घर जाने की तजबीज़ में पड़ा और एक बार तो भागकर खिड़की तक पहुँच गया, पर उसे बच्छराज अगासी के बीच में घसीट लाया। मार का डर अच्छे-अच्छे आदमियों का भी घमण्ड घटा देता है।

एकाएक पास के मकान में बन्द गिरधर सेठ ने जंगलों में से देखकर भयानक चीख मारी। इसी तरह वह पहले मारते समय चिल्लाया था, बच्छराज को खयाल हुआ। इसी तरह वह जगदीश के मकान में राधा को देखकर चीखा था, ऐसा राधा को और कोकिला को याद आया। फिर इसी तरह से वह चिल्लाया। सबने उस तरफ़ देखा।

'बच्छराज, मार इसे, जिन्दा न छोड़ना। मैं तुझे निहाल कर दूँगा।' गिरधर सेठ पागल हो गया था, पर इस पागलपन में इतनी बुद्धि और ईर्ष्या तो थी ही कि उसकी अपने भाई से शत्रुता बढ़ गई थी। उसके मन में यह बात बैठ गई थी कि लालजी ने ही उसका खून करने के लिए बच्छराज को पैसा देकर खड़ा किया था। अपने साथ विवाह करने निश्चित की गई लड़की के साथ लालजी ने विवाह किया। इसलिए उसका यह विचार दृढ़ हो गया और अपने प्रति बर्ताव के आधार पर उसे इन्हीं विचारों का पोषण मिला। पागल हुए उसके दिमाग़ में भाई पर शत्रु-भाव की ग़लतफ़हमी रहती ही।

बच्छराज को लालजी सेठ के साथ जूझता देखकर गिरधर सेठ को पिछली घटना याद आ गई। ज्यों-ज्यों खुद घायल होने की याद उसे आती त्यों-त्यों मानो हाल ही में ज़ख्म हुए हों—ऐसी चीख उसके मुँह से निकल पड़ती। राधा ने उसे पहचान लिया था ; परन्तु बिना किसी खास कारण को सूचित करने के सिवा वह कभी उसकी नज़र के आगे नहीं आई थी। आज तो चीख के साथ में गिरधर सेठ का पागलपन

मिट गया, और इस शत्रुता की वृत्ति भड़क उठी और ऊपर लिखे वाक्य उसने बच्छ-राज को पहचानकर कहे।

बच्छराज ज़रूर लालजी को मारता, पर कोकिला बीच में पड़ गई। उसे विजया याद आई, और उसने सेठ को छोड़ देने के लिए बच्छराज से आग्रह किया। बच्छ-राज ने जैसे ही उसे छोड़ा वैसे ही वह खिसककर खिड़की में से गुज़र गया और दरवाज़ा लगाकर ऊपर सोने की बरसाती की खिड़की पर आकर उन सबको धमकाने लगा—कल से इस घर में मैं किसी को भी न देखूँ। भाड़ा चुकाकर चले जाना।

'अभी शर्म नहीं आई, ठीक! आऊँ क्या ऊपर? खिड़की पर चढ़ते मुझे देर न लगेगी।' बच्छराज बोल उठा।

भड़ाभड़ दरवाजे के किवाड़ बन्द हो गये। बच्छराज हँसा और बोला—अब ज़रा भी बोला तो सारे घर में आग लगा दूँगा।

आखिरी वाक्य दरवाज़ा बन्द होने के बाद लालजी ने सुना। अँधेरा बढ़ गया था, और कोकिला, राधा तथा बच्छराज अगासी में से वापस आये। कोकिला की परेशानी का कोई ठिकाना न रहा। थोड़े घण्टों में उसकी ज़िन्दगी भर का संकट बीत गया और जगदीश के बिना भविष्य तो सामने खड़ा ही था। उसके मुख का मुसकान का बाल्यभाव इस समय लुप्त हो गया था। कोकिला का निर्दोष नेत्र-चापल्य उसके सौन्दर्य का खास अंग था। वह चापल्य घटकर उसमें फीकापन आ गया।

'भाभी, मुख ऐसा क्यों हो गया?' उससे राधा ने पूछा।

मुख पर चंचलता लाकर हँसता हुआ चेहरा बनाकर कोकिला ने उत्तर दिया—ना, ना, कुछ नहीं, यह देखो न?

यह वाक्य पूरा करते न करते इसके पहले ही उसकी मुस्कान लुप्त हो गई और राधा ने उसकी आँखों में आँसू चमकते देखे।

'आफत तो आ पड़ी है। अब सहना आना चाहिये। कुछ नवीनता नहीं?' राधा ने आश्वासन दिया। पर इस आश्वासन ने कोकिला के हृदय को और अधिक आन्दोलित कर दिया। वह खुले तौर पर आँसू बहाने लगी और बोली—विपत्ति को तो मैं कभी समझी ही नहीं। उनकी नज़र थी तो सब कुछ था। आज तो मैं उनके बिना पहली ही बार रहूँगी। अब मुझे मुसीबत मालूम होती है।

'भाभी! मेरी क्या हालत हुई होगी? बाप के विरुद्ध होकर विवाह किया।

दो-चार वर्ष कुछ-कुछ सुख देखा। फिर इनके नसीब में कैदखाना लिखा। ऊपर आकाश और नीचे धरती थी। मुझे भटकती देख भाई को दया आई और उसने आश्रय दिया। अब ईश्वर ने इन्हें मिलाया तो भाई का पता नहीं। अब भाई को लाये बिना चैन थोड़े ही लूँगी ?'

बच्छराज छज्जे पर खड़ा-खड़ा जेल के चित्रों को ताज़ा कर रहा था। वह ये बातें सुन कमरे में आया। उसने राधा की तरफ़ देखकर कहा—भाभी को तो अपने साथ रखेंगे, समझी ! घर पहुँचकर मैं साहब को, जहाँ होंगे, वहाँ से खोज लाऊँगा।

जेल में उससे मुलाकात करने एक दिन जगदीश पाँच-छः मिनट के लिए आया था, तबसे उसे साहब के रूप में जानने का बच्छराज का मन हुआ।

'ठीक है। साथ रखे बिना नहीं चल सकता। अब तुम आ गये। इसलिए दो महीने के लिए भाई और भाभी को अपने घर ले जाना है।'

'ना-ना, राधा बहिन ! मैं तो यहीं रहूँगी।' कोकिला ने कहा।

'मैं मर जाऊँ जो तुम मना करो तो ! अपने एक मात्र अमर की सौगन्ध !' राधा ने कहा।

'मैं भी सौगन्ध खाता हूँ।' बच्छराज ने कहा।

'अरे, अरे, ऐसा नहीं कहते। किसी की सौगन्ध न खाओ। ईश्वर तुम्हें सकुशल रखे।' कोकिला ने इन ग्रामीण पति-पत्नी के भाव जानकर कहा।

'साहब के बिना अकेला तो नहीं रहने दूँगा। ज़रूरत पड़ेगी तो चोरी मैं अपने सिर ले लूँगा। इसमें क्या ? चार वर्ष और सही !' बच्छराज ने कहा।

'तुम क्या कहते हो ?' आज कोकिला आश्चर्य ही आश्चर्य देख रही थी। एक दिन जगदीश जेल जाकर बच्छराज से मिल आया था। और थोड़े दिन राधा को अपने यहाँ रखा तो इस ज़रा से उपकार के लिए बच्छराज खुद फिर कैद में जाने को तैयार है। कोकिला ने आश्चर्य से बच्छराज की तरफ़ देखा तो उसे दिखाई दिया कि बच्छराज में बेढंगा गाँवपन नहीं रहा। उसकी जगह किसी रूपवान शूरवीर और दानेश्वरी का राजसी तेज प्रकट हो उठा है। राधा बच्छराज को प्रेम दृष्टि से देख रही थी। यह कोकिला समझ गई थी। कोकिला ने आगे कहा—ना-ना ! ऐसी भूल मत करना ! अभी तो तुम कई आशाओं से भरे हो। मेरे लिए किसी की आशाएँ भंग नहीं होनी चाहियें।

'अब बातें छोड़ो। कल सवेरे ही हमारे साथ चलो। मुझ ग़रीब की गढ़ी देखना। तुम्हें ज़रा भी दुःख न होगा।' कैद में हो आने पर भी बच्छराज को अपनी गढ़ी के प्रति गर्व था। अपने पूर्वजों के वैभव चिह्न की जर्जरित निशानी के तौर पर टूटी-फूटी चहार दीवारी 'गढ़ी' नाम से कही जानेवाली हो, उसका केवल मकान था। पर वह भी गिरवी रखा है, ऐसा गिरधर सेठ ने कहा था।

कोकिला को दूसरा रास्ता न मिला। जगदीश था नहीं। लालजी सेठ की दृष्टि खराब हो गई थी। वह अब शायद ही अपने मकान में रहने देगा। उसने बहुत कुछ विचार कर बच्छराज का गाँव चलने का आग्रह स्वीकार कर लिया।

रात बढ़ती जाती थी। कोकिला ने कहा—मैं यहीं बाहर सो रहूँगी। अन्दर मुझे डर लगेगा।

'मुझे किसी का डर नहीं। मैं अन्दर सो रहूँगा।' बच्छराज ने कहा। वह सादा और भोला पुरुष जेल के पत्थर पर सोनेवाला; यह भूल गया था कि किसी समय सोने की व्यवस्था करने में घर-धनी को बहुत चतुराई और नाज़ुकता बतलानी पड़ती है। राधा समझी और उसने केवल आँख से कोकिला को इशारा किया। कोकिला हँसी और बच्छराज की दृष्टि से बचाकर, उसने राधा के सामने उँगलियों और अँगूठे को मिलाकर 'वाह-वाह!' का अभिनय किया।

राधा ने चिढ़कर अपना बिछौना कोकिला के पास बिछाया। थका हुआ बच्छराज अन्दर जाकर सो रहा। थोड़ी देर में कोकिला ने कहा—न जाने मुझे क्यों आज बहुत थकावट मालूम हो रही है।

'तो सो जाओ! मैं दाब दूँ?' राधा ने पूछा।

'ना-ना, मेरा एक काम करो! अन्दर मेरा शाल पड़ा है, उसे लाकर मुझे उढ़ा न दो?' कोकिला कभी ऐसा काम राधा को बताती नहीं थी, इसलिए सचमुच कोकिला को थकावट होगी। नहीं तो वह ऐसा कहती ही नहीं, यह समझ राधा ने कहा—इसमें क्या? लाओ ले आऊँ।

राधा उठकर अन्दर गई। शाल लेकर वापस आते उसे मालूम हुआ कि कोकिला ने बाहर से दरवाज़ा बन्द कर दिया है। वह और बच्छराज घर के एक ही भाग में बन्द हो गये थे। वह बन्द कर दी गई है, ऐसा राधा को लगा। यह उसे कुछ अंशों

में अच्छा भी लगा। फिर भी उसने आवाज़ दी—भाभी, शाल लाई हूँ। दरवाज़ा खोलो !

'दरवाज़ा नहीं खुलेगा, मुझसे उठा नहीं जाता।' कोकिला ने उत्तर दिया।

'खोलती हो कि नहीं ? ऐसा भी क्या मज़ाक ?'

'तुम्हारे पति ताकतवर हैं। उनसे कहो कि दरवाज़ा तोड़कर तुम्हें बाहर कर दें।'

'नहीं खोलोगी तो मैं तुमसे बोलूँगी नहीं।'

'अब आज की रात तो मैं भी तुमसे नहीं बोलूँगी। राधा बहिन, पधारो ! कल आना, हो !' कह कोकिला खिलखिलाकर हँस पड़ी।

राधा को लगा कि कोकिला दरवाज़ा न खोलेगी। निरुपाय शरमाती वह वापस हुई।

प्रेमी-दम्पति को वर्षों के वियोग के बाद उन्हें एकान्त में मिलने का कार्य पूरा कर कोकिला हिंडोले पर आकर बैठ गई।

(२८)

इसी हिंडोले पर कोकिला रोज़ जगदीश के साथ बैठती थी। जगदीश झूलता होता तो वह एकाएक मज़ाक में झूला रोक देती थी। जगदीश के पैर पर पैर रख उसे झूलने में बाधा देती थी ; जगदीश की अपेक्षा खुद में अधिक ज़ोर है, यह कहकर उसकी उँगलियाँ और हाथ मरोड़ती थी। जगदीश के सुन्दर मुड़े हुए बालों को सीधा करने के बहाने वह उन्हें बिखरा देती थी। कौन अधिक समय तक आँखें खुली रख सकता है, ऐसी शर्त करती ; और एकटक जगदीश की तरफ़ देखती रहती थी, जगदीश के काले गाल पर गोराई लाने के लिए वह अपना गाल उसके गाल से भिड़ा रखती, और अन्त में परेशान हुए जगदीश को झूले पर लिटा एकाध गीत सुनाकर निद्रित कर देती। इस प्रकार प्रेमी पति-पत्नी ने क्या-क्या खेल न खेले होंगे ?

रात के अंधकार में जैसे असंख्य तारे चमक उठते हैं, वैसे ही अकेली पड़ी कोकिला के हृदय में असंख्य प्रसंग उठ खड़े हुए। आज यह हिंडोला और कोकिला दोनों खाली-खाली हो गये मालूम होते थे। जगदीश के सिर पर हाथ फेरकर उसे सुला देने खुद गाई हुई किसी समय की पंक्तियाँ-कोकिला को इस समय याद आ गईं—ऐसे इस दिन भी प्रियतम, बहक गये।

बाहर की तरफ़ दरवाजे पर कोई धक्का दे रहा था। उसे भय हुआ कि कहीं लालजी सेठ फिर तो नहीं आ गया। उसने पूछा—कौन है?

'यह तो मैं हूँ।' विजया की आवाज़ सुनाई दी।

पत्नी की उपस्थिति से पति कई विषयों में संयम सीखता है। अकेले पुरुष की अपेक्षा स्त्री सहित आया हुआ पुरुष कम भयंकर होता है। लालजी का डर विजया की उपस्थिति से बहुत कम हो गया, और कोकिला ने तत्काल दरवाज़ा खोला। उसने देखा कि विजया अकेली ही थी। विजया ने अंदर प्रवेश करते ही कहा—तुम्हारा पति सकुशल है, यह मुझे कहने भेजा है।

खबर सुनते ही आनन्द-विभोर पत्नी ने पूछा—कहाँ हैं?

'तुम्हें तो 'कहाँ हैं' की ही बात!' कहकर कोकिला का हाथ पकड़कर विजया हिंडोले पर बैठ गई, और उसने कोकिला को भी पास बैठा लिया। अब कोकिला को भी आश्चर्य लगा कि जगदीश की खबर विजया को कहाँ से लगी?

'तुमने कैसे जाना?' कोकिला ने पूछा।

'क्या तुम यह मानती हो कि तुम्हारे सिवा और किसी से खानगी बात नहीं करते?' जगदीश के सान्निध्य से प्रसन्न हुई, विजया ने मजाक किया—देखो, इतने में ही मैं उन्हें अपनी मोटर में उड़ा ले गई और उन्हें नदी किनारे भगा आई हूँ।

'ठीक कहती हो? वे वापस कब आयेंगे?'

'मैं झूठ बोलूँगी? और इस समय?' विजया ने उत्तर दिया। 'और कब आयेंगे, यह तो कहा ही नहीं जा सकता। अभी तो उन्हें छुपे रहने की ज़रूरत है। तुम्हें खबर तो पड़ी ही होगी।'

'तुमने कहा नहीं कि उन्हें कहाँ रहना है?' वह यह समझती थी कि साधारण तौर पर उन्हें किसी के मकान में छिपाने की तजवीज़ हुई होगी।

'नहीं, वह खुद नहीं जानते कि अब आगे क्या करना है। मैं मोटर में जा रही थी कि वे मुझे रास्ते में मिल गये। इसलिए फौरन मैं उन्हें शहर के बाहर नदी किनारे छोड़ आई। उन्होंने सचमुच चोरी नहीं की है, इसलिए कोई अधिक दिक्क़त नहीं पड़ेगी।'

कोकिला कुछ नहीं बोली। उसने केवल निःश्वास छोड़ा। विजया उसके सामने

ही देख रही थी, जगदीश के हृदय पर जिसे साम्राज्य मिला था वह स्त्री विजया की दृष्टि में बहुत आकर्षक मालूम हो रही थी।

'तुम कोई चिन्ता न करना। तुम्हें मैं कोई कष्ट नहीं होने दूँगी।' विजया ने आश्वासन दिया।

कोकिला को नवीनता मालूम हुई। थोड़ी देर पहले तो लालजी सेठ ने मकान खाली करने को कहा था और यह उनकी पत्नी कष्ट न होने देने की बात कहती हैं। लालजी ने कहीं इसे सिखाकर तो नहीं भेजा?

'मैं तो कल जानेवाली हूँ।'

'कहाँ?'

'राधा बहिन के पति जेल से छूट आये हैं। उनका आग्रह है, इसलिए उनके यहाँ जा रही हूँ।'

'कैसी पागल जैसी बातें करती हो? उनके यहाँ भला जाना चाहिये? उनका खुद का ही तो ठिकाना नहीं, फिर तुम उनके यहाँ जाकर क्या करोगी? व्यर्थ दुखी होने की क्या ज़रूरत है?' विजया ने कहा।

'फिर मैं रहूँ कहाँ?'

'यहाँ रहने में क्या हुआ? जगदीश भाई तो देखते-देखते आ जायेंगे। मैं कल ही १५ हज़ार रुपए मिलवालों को दे दूँगी। और अदालत में किसी की ज़मानत दिलवा दूँगी, फिर जगदीश भाई के भाग जाने का कोई कारण नहीं रहेगा।'

पड़ोसी के लिए इतना भारी खर्च करने भाग्य से ही कोई तैयार होता है। कोकिला को कुछ समझ नहीं पड़ा। उसने पूछा—तुम्हें ऐसा जोखिम लेने की क्या ज़रूरत है? लालजी सेठ ने तो मुझसे घर खाली करने के लिए कहलवाया है। असली बात छिपाकर उसने कहा।

'क्या?' चौंककर विजया बोल उठी। 'ऐसा नहीं होगा।'

'मैं ठीक कहती हूँ। कल सवेरे ही खाली कर देने को कहा है।'

'ऐसा कहा सेठ ने! ऐसे समय उन्हें इस तरह कहलाते शर्म नहीं आई? कोकिला बहिन, तुम इस घर में से हट नहीं सकतीं। उन्होंने किसके द्वारा कहलाया?' विजया गुस्सा होकर बोली।

'जाने दो, जो हुआ सो हुआ। पर तुम क्यों कठिनाइयों में पड़ती हो? तुम तो

उन्होंने चोरी नहीं की, यह मानकर सहायता करो। और शायद यही साबित हो जाय कि उन्होंने ही चोरी की है तो फिर क्या?'

'कोकिला, तुम्हें बुरा न लगे तो एक बात पूछूँ?' प्रश्न का उत्तर न देते विजया ने प्रश्न पूछा।

'कहो, क्या पूछना है?'

'तुम्हारे गहने गिरवी रखे गये तब तक जगदीश तुम्हें प्यारा ही लगता था। अब तुम बताओ, इस चोरी की बात सुनने के बाद तुम्हें जैसे का तैसा ही वह प्यारा रहा है?'

कोकिला का रक्त गर्म हो उठा; उसकी भौंहें तन गईं, जिसके मुख पर क्रोध का आभास तक कभी दिखलाई नहीं दिया था उसी कोकिला के मुख पर सहज ही क्रोध की छाया छा गई। किन्तु उसके शब्दोच्चार में ज़रा भी अन्तर नहीं पड़ा। स्वर ज्यों का त्यों मधुर ही रहा। केवल उसमें स्पष्टता और भार विशेष था। उसने कहा—उतने का उतना ही नहीं, बल्कि और भी अधिक।

'कारण?'

'कारण मुझसे न पूछो। मुझे यह कारण नहीं मिलता। यह मैंने कई बार सोचा, पर वह मुझे मिला नहीं।'

'तुम पगली तो नहीं? कोई कपटी मनुष्य ऐसा करता है?'

'मैं पगली ही हूँ। उन पर ही पगली हूँ। विजया बहिन, संसार जैसा चाहे वैसा उन्हें देखे, पर मेरा जगदीश निराला ही है। वह मेरा है और मैं उसकी हूँ। फिर भले ही वह चाहे चोरी करे या लूट-मार करे!' कोकिला कुछ उत्तेजित होकर बोली।

विजया ने एकदम हँसकर कोकिला के गले में हाथ डाला और उसे चूमा। हाथ गले में ही डाले हँसते-हँसते विजया ने कहा—अब बहुत हुआ! यों बार-बार नाम लेकर तू-तू न करो। जरा शर्म रखो!

कोकिला सचमुच शरमा गई। उसने अपनी आँखें दोनों हाथों से ढँक लीं। विजया इस सुन्दर युवती को देख रही थी। उसके प्रेम में कोई भी कमी नहीं मालूम होती थी। मुख के अणु-अणु से इस प्रेम का प्रकाश झलक रहा था। स्त्री को भी चूम लेने का मन होनेवाला उसमें प्रकाश भरा था। जगदीश अपने हृदय में दूसरे को किस तरह स्थान दे सकता है? विजया को जगदीश की बात ठीक लगी। कोकिला का

केवल मुख ही सुन्दर नहीं था। यह मुख समप्रमाण से गठा हुआ सौष्ठव-पूर्ण प्रतिविम्ब मात्र न था, शायद सौन्दर्य-परीक्षक उसमें कमी भी निकाल सकता ; कोई कलाकार इससे भी अधिक सौष्ठवपूर्ण मुख चित्रित कर सकता है, पर इस मुख के सौन्दर्य को भी सुन्दर बनानेवाला तेज चमकता रहता था। विजया ने इस तेज को पहचाना। इसमें आडम्बर नहीं था, अशुद्धि नहीं थी, विषय न था। कञ्चन-सा स्वच्छ सुन्दर सारे मुख के अणु-अणु को सुन्दर करनेवाला यह प्रकाश था। विजया उसके मुख के सामने देखती रही। कोकिला के गाल उसे पूर्ण चन्द्र जैसे मालूम हुए, आँखें उँगलियों से ढँकी देखकर उसे गुलछड़ी का परदा जैसा लगा ; और उँगलियाँ हटाने पर आँखों में दृष्टि डालते उसे अनेक सूर्य-चन्द्र को चमकते आकाश का दृश्य याद आया।

'यह प्रेम है या सौन्दर्य ?' विजया के हृदय में प्रश्न उठा – शायद दोनों ! समय पर प्रेम और सौन्दर्य अलग न हो तो ? यह प्रश्न मन में ही रख विजया रुकी।

ये विचार करती विजया कोकिला के गले से हाथ हटाये बिना देख रही थी। कोकिला ने पूछा – मेरे सामने क्यों देख रही हो ?

'तुम्हारे सामने देख रही हूँ तो इससे तुम्हें क्या होता है ?'

'मुझे डर लगता है।'

'ठीक, मैं तुम्हें डर लगने जैसी ही हूँ। मैं बहुत भयानक हूँ न ?'

'नहीं, नहीं, मैं तो हँसती हूँ। तुम तो बहुत सुहावनी हो। तुम्हारा रूप देखकर मुझे कई बार ईर्ष्या होती है।' कोकिला ने कहा।

कुछ क्षण तक विजया नहीं बोली। फिर कोकिला का हाथ पकड़कर उस पर अपना हाथ फेरते उसने कहा—कोकिला, मुझे तुम्हारी ईर्ष्या होती है।

'वाह, वाह ! मुझ पर ईर्ष्या हो, ऐसा मुझमें है क्या ?'

विजया ने कोकिला की छाती पर हाथ रखकर कहा—मुझे इसकी ईर्ष्या होती है।

कोकिला ने विजया की छाती पर लटकते हार और लाकेट की तरफ उँगली से इशारा करते हुए कहा—मेरे पास तो कुछ भी पहनने को नहीं। तुम्हारा तो यह कैसा अच्छा हार है ?

'कोकिला, इसमें मेरा हृदय है। बताऊँ ?' मुख गम्भीर कर विजया ने पूछा।

'हाँ, हाँ, देखूँ तो सही !'

विजया ने लाकेट उघाड़ा। कोकिला देखकर चौंकी। लाकेट खाली था।

'क्यों, यह तो खाली है? इसमें फोटो नहीं?'

'जैसा मेरा गहना वैसा ही मेरा हृदय! दोनों खाली हैं! किसका फोटो रखूँ?'

कोकिला को बहुत समय से लगा करता था कि विजया जैसी सुघड़ स्त्री को लालजी कैसे पसन्द होगा? किन्तु उसने अपना दृष्टान्त लेकर सन्तोष माना। जगदीश मुझे पसन्द है, इसलिए सभी को पसन्द होगा, भला ऐसा हो सकता है? और कइयों को पसन्द नहीं है, वही खुद के लिए अत्यन्त भला है, यह मान, वह विजया और लालजी के सम्बन्ध का अपना असन्तोष सुधार लेती थी। आज उसे प्रत्यक्ष हुआ कि विजया लालजी को नहीं चाहती। तो भी वह मानो खुद न समझी हो, इस तरह कहने लगी—भला ऐसा होता है? जो पसन्द हो वह चित्र रखो। भगवान् का ही कोई चित्र रखो।

'मुझे तो भगवान् की अपेक्षा अधिक जीवित चित्र चाहिये। कोकिला, तुम्हारे पास चित्र है, पर तुम्हें चाहिये नहीं; और मुझे चाहिये तो मिलता नहीं। फिर क्यों न मुझे ईर्ष्या हो?' विजया के शब्दों में हृदय को विदीर्ण करनेवाला असन्तोप प्रकट हो रहा था। कोकिला ने कैसा भी उत्तर नहीं दिया। बिना बोले ही उसकी आँखों से सहानुभूति बरसती थी। कुछ रुककर विजया ने पूछा—कोकिला, तुम जगदीश भाई का चित्र पास नहीं रखतीं?

दूर दीवाल पर टँगे एक फोटो की तरफ फुर्ती से दृष्टि फेरकर कोकिला बोली—नहीं।

'तो फिर एक फोटो उन्हीं का मुझे दे दो न?' विजया कह तो गई, परन्तु मानो वह स्वप्न में बोलती हो, ऐसा उसे लगा। कोकिला के मुख पर क्या प्रभाव होता है, यह देखने को वह आतुर हुई।

कोकिला चौंकी। यह चौंकना विजया की आँखों में प्रत्यक्ष दिखलाई दिया। एक क्षण वह विजया के सामने एकटक देखती रही। खुद जो सुना, वह ठीक था तो क्यों, इसका विश्वास करने उसने पूछा—तुमने उनका चित्र माँगा है?

हाँ, दोगी न?'

'क्यों नहीं दूँगी? किन्तु...किन्तु, फिर मुझसे ईर्ष्या तो नहीं करोगी?'

विजया हँसी। उसने कोकिला की ठुड्डी पकड़ ली। जगदीश का बार-बार स्पर्श

पाये हुए कोकिला के मुख का स्पर्श करने से विजया को भी मानो एक तरह का सन्तोष मालूम हुआ। उसने कहा—कोकिला, तेरी ईर्ष्या तो मुझे जिन्दी रहने तक आया ही करेगी।

'मैं क्या करूँ कि जिससे तुम्हें सन्तोष हो?'

'यह तू ही कहती है. तू ही खोज निकाल।' प्रिय को प्यारी लगनेवाली वस्तु सदा प्यारी ही लगती है। जगदीश को प्रिय लगनेवाली कोकिला इस समय विजया को इतनी प्यारी लगी कि उसने उसके लिए अनजाने ही एकवचन का व्यवहार करना प्रारम्भ कर दिया।

'उन्हें तुम्हारे हस्तक सौंप दूँ तो?' कोकिला बोली और खिलखिला कर हँसने लगी। किन्तु इस हास्य में आनन्द नहीं था; घायल मनुष्य. देखनेवाले को दुःख न हो, इसलिए दुःख होते हुए भी हँसता मुख रखे, ऐसा कोकिला का हास्य था, विजया को मालूम हुआ।

'झूठ क्यों हँसती है? तेरे प्राण तो काँप रहे हैं!' विजया ने कहा।

'नहीं, नहीं, इसमें प्राण क्यों कांपें? मैं किसी दिन मांगूँ, उस दिन मुझे ज़रा धैर्य देना...फिर बस!' हँसता मुख रखकर कोकिला बोली।

'तू जिसे चाहे उसे जगदीश को सौंपे भी तो वह ऐसा कहाँ है जो तेरे पास से अलग हो जाय? उसका हृदय तो तूने विजय कर लिया है।'

कोकिला के मुख पर गर्वपूर्ण आत्मसन्तोष झलक उठा। उसने कहा—मैंने हृदय जीता होगा तो मैं शासन करूँगी ही।

'ठीक कहती है? मैं कोकिला होती तो जगदीश को कभी किसी से धैर्य न देने देती!'

'मुझे तो जगदीश की ज़रूरत है! वह कहाँ जाता है, यह जानने की ज़रूरत नहीं।'

विजया को ऐसा लगा मानों हृदय से नवीन सत्य प्रकट हो रहा हो। उसने कोकिला की उदारता का पारावार देखा। इस उदारता के प्रकाश में ही प्रेम की प्रफुल्ल उमंग शक्य है। शंका और वहम की छाया में प्रेम कुण्ठित हो जाता है, मर जाता है।

'कोकिला, जगदीश को दूसरी स्त्री के साथ प्रेम करते पाये तो तुझे क्या हो?' विजया ने पूछा।

'मुझे हँसना आयगा।'

'तेरा जगदीश के प्रति प्रेम तो न घटेगा?'

'किसलिए? मैंने कोई ऐसी तुच्छ शर्त थोड़े ही की है कि मुझे वे चाहें तभी मैं उन्हें चाहूँ?'

शायद इसी समय जगदीश नाथबाबा को अपनी प्रेम-फिलासफ़ी समझाते हुए ऐसे ही कुछ शब्द कह रहा था। एक हुए हृदयों में विचार भी एक ही उठते हैं। विजया ये शब्द सुनकर दिङ्मूढ़ बन गई। फिर एकाएक बोल उठी—कोकिला, तेरे जगदीश को जो तेरे पास से छीने उसे स्त्री-हत्या का पाप!

'ऐसा क्यों कहती हो?'

'मुझे शपथ लेने की ज़रूरत है। नहीं तो मैं ही तेरे जगदीश को छीन लूँगी।'

'अब इतनी मसखरी? तुम तो बड़ी हो, उनकी तरह ही। भला ऐसा कहना चाहिये?' कोकिला ने कहा। अलबत्ता वह जान गई थी कि विजया वास्तविक सत्य बात कह रही है।

'मैं मसखरी नहीं करती। अब तू समझ कि किसलिए मैं जगदीश के लिए इतनी अधिक मेहनत करूँगी?'

कोकिला ने बात बदलकर पूछा—विजया बहिन, लालजी सेठ तुम्हें बुलाते होंगे तो?

सुन्दर चाँदनी एकाएक किसी काले बादल में अदृश्य हो जाती है, ऐसे ही विजया का स्वप्न अदृश्य हो गया। उसने निरुत्साह होकर कहा—वे तो घर में नहीं हैं। नाटक देखने गये हैं।

'तुम नहीं गईं?'

'मुझसे कहा था, पर नाटक देखने के बजाय तेरे पास आना मुझे अधिक अच्छा लगा।'

सामान्य बातचीत में उतरकर दोनों ने बात बदल दी। विजया ने कोकिला से रहने के लिए अधिक आग्रह नहीं किया। सर-सामान खुशी से घर में ही छोड़कर थोड़े दिन हो आने की उसने भी कोकिला को सम्मति दी। फिर उसने कोकिला से कहा—कोकिला, कागज़ पर अपने दस्तखत करके न दोगी?

'मेरे दस्तखत का क्या करोगी?'

'तुम्हारे नाम से ही सब प्रबन्ध होगा। वकील करके जमानत देनी पड़ेगी। और ज़रूरत पड़ने पर रकम भी भर देनी पड़ेगी। जगदीश भाई तो हैं नहीं, इसलिए उनकी तरफ़ से तुम्हारे ही नाम से मैं कुछ कर सकूँगी।'

कोकिला ने तुरन्त उठकर अपने दस्तखत कर विजया को कागज सौंप दिया। उसने अपने भाग्य का बखान किया। विजया जैसी मानिनी, जिसके लिए इतना कर सके वह उसका ही अपना पति है। इस बात ने उसे ज़रा गर्विष्ठ बना दिया और विजया का प्रेम ? यह शुद्ध या अशुद्ध ? जगत चाहे जो कहे, फिर भी उसमें आत्म-भोग का अंश है। जहाँ-जहाँ आत्मा के बलिदान करने की तैयारी होती है, वहाँ-वहाँ महत्ता ही है। फिर भले ही वह सबको भूल भरा हुआ मार्ग मालूम हो।

कागज़ लेकर विजया खड़ी हो गई। प्रेम का भूखा हृदय सहारा के रेगिस्तान की अपेक्षा भी अधिक तप्त होता है। कोकिला को विजया पर दया आ[illegible]। समृद्धि से भरपूर घर में विजया को आकर्षित करनेवाला कुछ भी नहीं था। पराये में अपनापन देखने का मिथ्या प्रयत्न करती—यौवन की निरर्थकता अनुभव करती—यह अबला दयापात्र थी। कोकिला को बहुत दया आई। जाते-जाते विजया बोली—वे यहाँ आयेंगे, तो ज़रूर उन्हें तेरे पास भेज दूँगी। समझी !

दया-आर्द्र हुई कोकिला ने भी उचित उत्तर दिया—और वे वहाँ आयेंगे तो ज़रूर उन्हें यहाँ भेज दूँगी।

विजया ने कोकिला के गाल पर एक धीरे से चपत लगाई और कुछ बोले बिना चली गई। प्रगल्भ स्त्री ने मुग्धता अनुभव की।

(२९)

सवेरे कोकिला जल्द उठ बैठी। राधा और बच्छराज भी जागते ही थे। उसे मालूम हुआ और उसका वश चलता तो वह राधा से पूछती कि रात में नींद आई या नहीं ? पर उसने यह प्रश्न भविष्य के लिए रहने दिया। जाने की सारी तैयारी कर डाली। इस समय कोकिला सादगी से रहती थी। इसलिए घर में अनावश्यक वस्तुएँ वह शायद ही कुछ रखती होगी। विजया ने बहुत-कुछ सर-सामान छोड़ जाने के लिए कहा था। इसलिए सफर में ज़रूरी चीजें ही साथ में लेनी थीं। राधा ने बक्स सिर पर ले चलना स्वीकार किया—भाभी, खेत में से भारी से भारी वज़न ले [illegible] थे तो इस बक्स का क्या ?

दूसरी चीज़ें बच्छराज ने हाथ में लीं। दोनों बालक तो खुशी में थे ही। यात्रा उनके लिए शौक़ की चीज़ थी। घर बन्द करके सभी नीचे उतरे। ताला लगाने कोकिला पीछे रह गई थी। उसने ताला लगाया। बिना जगदीश के निराधारता अनुभव करती इस युवती के पैर घर छोड़ते ही भारी हो गये। मानो उससे चलते न बनता हो, इस तरह उसके पैर आगे नहीं पड़ते थे। सभी के साथ हँसती कोकिला से अपना दुःख सहा न गया। उसने घर के बन्द दरवाजे पर सिर टिका दिया और फिर वह दिल खोलकर रोई। इस रुदन में जड़ वस्तु को भी पिघलाने का सामर्थ्य था। उसे ऐसा लगा कि दरवाज़ा खुल गया हो। पर नहीं, यह तो बगल का दरवाज़ा खुला था। विजया ने इसमें होकर प्रवेश किया और कोकिला के कन्धे पर हाथ रखकर उसे चुप किया।

'कोकिला, मेरी बहिन नहीं? मेरी एक माँग कबूल नहीं करेगी?' सिसकती हुई कोकिला से विजया ने कहा।

'क्या माँग है?'

'तू स्वीकार कर ले, फिर मैं बताऊँगी।'

'पर बिना जाने भी?'

'मेरे ऊपर अभी विश्वास नहीं है, अच्छा?' दुखी होकर विजया ने कहा।

'कहो, कहो, क्या माँग है?'

'माँग कबूल कर लेगी, पहले यह कह दे, फिर मैं बताऊँगी।'

'कबूल, तुम्हारी जो भी माँग होगी वह मुझे स्वीकार होगी।'

'यह अपने पास रख। मेरी तरफ़ से भेंट है।' यह कहकर उसने एक छोटा मनीबेग उसे दे दिया।

'पर मैं तो विदेशी चीज़ का उपयोग नहीं करती।' कोकिला ने एतराज़ किया।

'कल यदि तुम्हारा पति विदेश में रह आयेगा, तो क्या तुम यह कहोगी कि यह भी विदेशी चीज़ है, ठीक है न? भेंट में देशी-विदेशी क्या?' यह दलील विजया ने दी। कोकिला को यह दलील ठीक लगी तो क्यों, यह तो पता नहीं चला। परन्तु उसने पहले से ही यह माँग मंजूर कर ली थी, इसलिए यह भेंट भी स्वीकार कर ली। कई वर्षों में उसने विदेशी माल पहली ही बार स्वीकार किया।

'और देखो, नीचे गाड़ी तैयार खड़ी है, उसमें तुम्हें जाना है।' विजया ने

कहा और वह कोकिला के साथ नीचे उतरी। बग्घी जुतवाकर उसमें सबको बैठा दिया और बच्छराज का पता मालूम कर लिया।

बच्छराज के गाँव को दो रास्ते जाते थे। एक रेलवे मार्ग और दूसरा नदी-मार्ग से। रेल हो जाने से नदी के मार्ग का व्यवहार कम हो गया था। फिर भी यह मार्ग थोड़ा-बहुत चालू ही था और इस मार्ग से जाने पर वे सीधे गाँव उतर सकते थे। किन्तु रेलवे-मार्ग लम्बा होने पर भी नाव की अपेक्षा जल्दी गाँव पहुँचाता था। नदी-मार्ग से जाने में भूपताजी से भेंट हो जाना सम्भव था। इसलिए यह बात राधा और बच्छराज को अनुकूल नहीं मालूम हुई। अपने गाँव से स्टेशन दो कोस दूर होने पर भी उसने रेल ही पसंद की और स्टेशन पहुँच, तीसरे क्लास का टिकट लेकर सब ट्रेन में बैठ गये। नौकरी छोड़ने के बाद जगदीश ने तीसरे क्लास में यात्रा करने की आदत डाल ली थी। इसलिए इस अपमान-पूर्ण क्लास में कोकिला को कोई संकोच नहीं हुआ।

ट्रेन छूटने की तैयारी हुई। रमेश बहुत तेज़ी से ट्रेन के डब्बे तलाशता दिखलाई दिया। उसने कोकिला को देखा और एकदम वहाँ दौड़ आया। ट्रेन चलना शुरू हो गई। रमेश डब्बे के पायदान पर से ऊपर चढ़कर अंदर बैठने गया। एक टिकट कलेक्टर ने उसका हाथ पकड़कर कहा—मालूम नहीं, गाड़ी चल रही है ! उतरो। टिकट है ?

'नहीं, टिकट नहीं है। पर रवाना हुए बिना नहीं रह सकता।' रमेश ने कहा।

'बिना टिकट लिये जाओगे तो सजा होगी।'

'फाँसी पर तो नहीं चढ़ा दोगे ?' कहकर रमेश गाड़ी के अन्दर बैठ गया। गाड़ी चल ही रही थी। वह तेज़ी पकड़ रही थी। कोकिला के सामने जगह करके रमेश बैठ गया और कोकिला ने पूछा—रमेश भाई, तुम यहाँ कहाँ से ?

'अरे क्या, तुम यहाँ कहाँ ? कुछ खबर नहीं पड़ी ? तुम कहाँ जा रही हो ? यह भी कोई बात है ?' रमेश ने उत्तर दिया।

'इस तरह गुस्सा होने का कोई कारण ?'

'यह तो ठीक है कि गाड़ी मिल गई। नहीं तो तुम्हें कहाँ खोजता ? कहो, कहाँ जा रही हो ?'

'इनके साथ।' कहकर कोकिला ने राधा की तरफ़ इशारा किया। डब्बे में दूसरे नहीं थे और गाड़ी की आवाज़ में दूसरा कोई बात सुन भी नहीं सकता था।

'रमेश तो मर गया है न !' रमेश ने बुरा मानकर कहा।

'भला ऐसा बोलना चाहिये ? रमेश भाई का मार्कण्डेय ऋषि का आयुष्य हो।' कोकिला ने कहा।

'इस जबान की मिठाई से ही सबको मारती हो। रमेश तो चाहे जब तक जियें, पर मुझे बतलाया भी नहीं, यह ठीक कहा जा सकता है ? एक ने चोरी की आफ़त खड़ी की। दूसरे तुम गुम हो रही हो ! सारी दुनिया में हमें खोजने फिरने के लिए यहाँ तक हुआ !'

'तुम्हें चोरी के विषय में क्या मालूम होता है ?' कोकिला ने पूछा।

'इस चक्र को क्या कहा जाय ? कौन जाने उसने क्या किया होगा ? किसी ने चोरी की हो और अपने सिर पर ओढ़ ले, ऐसा भी हो सकता है ! और मुझे तो ऐसा ही लगता है। कल सारी रात उसी की तलाश में मैं फँसा रहा। दो-चार जगहों में वह हो सकता है, यह समझ मैं पुलिस के साथ-साथ हो गया। शायद पकड़ा जाय और जमानत की ज़रूरत पड़े, और दूसरी तजवीज करनी पड़े तो यह सब कौन करेगा ? यह सोच सारी रात मैं उसके लिए फिरा, पर कोई पता न चला। इसीलिए मुझसे रात को तुम्हारे पास आते नहीं बना। सवेरे जल्दी उठकर जब तुम्हारे यहाँ पहुँचा तो पता लगा कि तुम तो स्टेशन पर चली गई हो। पीछे-पीछे दौड़ता आया हूँ। अब अगले स्टेशन पर तुम उतर पड़ो। हम वापस फिरेंगे। तुम्हें इस तरह न जाने दूँगा।'

वापस फिरने के लिए रमेश ने बहुत आग्रह किया। खर्च की तङ्गी न होने देने, दूसरा घर लेकर रहने या अपने ही घर में रहने, खबरगीरी रखने आदि अनेक कारण और आश्वासन रमेश ने कोकिला से प्रकट किये; अपने मित्र के तौर पर अपना हार्दिक दावा उपस्थित किया। तथापि कोकिला ने शहर में वापस जाना स्वीकार नहीं किया। उसे अब गृहस्थों की अपेक्षा गुनहगारों की सोहबत अधिक पसन्द आई। दूसरे के यहाँ उसे आश्रित के तौर पर रहने जैसा लगा। वह अपने पर किसी की भी कृपा नहीं चाहती थी, और रमेश या विजया का आग्रह मोटे तौर पर भी निराला, सच्चा और वास्तविक था; फिर भी हाल ही कैद से छूटे कैदी की पत्नी की सोहबत उसे अधिक पसन्द आई। कई बहाने निकालकर, अपनी हवा-पानी बदलने की ज़रूरत बताकर, उसने रमेश का आग्रह न माना।

आखिर रमेश निराश होकर वापस जाने अगले एक स्टेशन पर उतर गया।

उसने कोकिला से कहा कि थोड़े समय में वह इस तरफ़ अपनी ज़मीन की व्यवस्था के लिए आयगा तब कोकिला की भी खवर ले जायगा। कोई न देख सके, इस प्रकार वह अत्यन्त आरज़ू से कुछ रुपए उसे खर्च को देने लगा। पर कोकिला ने उनकी ज़रूरत न होने के कारण वे नहीं लिये।

'उस दिन उन्होंने तुमसे क्या कहा था?'

'क्या पता! यह सब छोड़कर मुझ ग़रीब की वात मानो और इतनी रकम अपने पास रखो।' रमेश ने कहा।

'तुम्हें तो हमने अपना अन्तिम साधन मानकर रख छोड़ा है।'

'अभी मेरा उपयोग हो सके, ऐसा प्रसङ्ग नहीं आया है। ठीक!'

'तुम विवाह कर लो। फिर हम तुम्हारे घर से कभी हटेंगे भी नहीं।'

'वहाने की बात न करो।'

'मैं ठीक कहती हूँ। इस समय तो अपने पास एक-एक पैसा इकट्ठा करके रखो; और विवाह करने के वाद जो वचे, वह हमारे लिए रखना।'

कोकिला के लिए अधिक आग्रह व्यर्थ था। कोकिला की ट्रेन आगे चली गई। दोपहर को सब उतर गये। स्टेशन पर एक भी सवारी-गाड़ी न थी। कोकिला भले ही चाहे जितनी ग़रीब हो गई हो फिर भी दोपहर वाद की तेज़ धूप में वह दो कोस कैसे चल सकेगी, इसकी राधा को चिन्ता हुई। कोकिला ने तो उत्साह से कहा कि मुझे दूर तक चलने की आदत है, इसलिए कोई फ़िक्र नहीं।

'पर भाई कैसे चल सकेगा?' राधा ने पूछा।

ठीक मध्यम-वर्ग, चालू ज़माने को देखने की अपेक्षा, अधिक नाज़ुक वन गया है। स्त्रियों को सेविका या मज़दूरिनी मानकर उससे मेहनत न कराने में मनुष्यता है। किन्तु इस मनुष्यता का लाभ लेकर वच्चे को लेकर आधे कोस भी न चलते बने, यदि मौका आने पर दस सेर वज़न लेकर गाँव की यात्रा पैदल चलकर न हो, ऐसी स्थिति उत्पन्न करने से भी स्त्रियों को सचमुच लाभ है क्या, यह भी विचारने की बात है। गाँव की स्त्रियों में स्त्रीत्व का जोश पैदा करने का प्रयत्न करनेवाली स्त्री-नेता दो कोस चलने में ही चार जगह वैठेगी। और अपने कार्य को वहुत अधिक कीमत वतलायगी तो फिर यह जोश ग्रामीणों में लाने के पहले उनके शरीर मेहनती होने की ज़रूरत है, कोकिला को ऐसा लगा।

आखिर उसने हिम्मत की और पीयूष को अपनी उँगली पकड़ा दी। राधा ने सन्दूक सिर पर रख लिया। बच्छराज ने भी एक-दो पोटलियाँ उठा लीं और गाँव का रास्ता पकड़ा। स्टेशन बनवानेवाले अफसर स्टेशन का लाभ लेने में लोगों को अधिक से अधिक कठिनाइयाँ क्यों पड़ती हैं, इसका अच्छा प्रयोग करते हैं। स्टेशन के आस-पास मीलों तक एक भी गाँव न था।

कोकिला ने शुरूआत में तो तेज़ी रक्खी, पर बाद में अपने आप उसके पैर धीमे पड़ गये। पीयूष को भी सड़क पर चलने की आदत न होने से पैदल चलने से ऐतराज था। इसलिए वह दलीलें देने लगा कि पैरों में धूल लगती है, जूता लगता है, रास्ते में कंकड़ बहुत हैं, पेड़ पर बन्दर बैठे हैं। सियार या भेड़िये आना सम्भव है, इस तरह उसने चलने के विरुद्ध जितना सोच सका, उतने कारण बताये। तन्दुरुस्त बच्चे को गोद में लेकर दूर तक चलने की हिम्मत कोकिला में नहीं थी। उसने कहा—थोड़ा सुस्ताकर हम चलेंगे। पीयूष ज़िद करता है।

'आओ भाई, मैं ले लूँ ?' बच्छराज ने कहा।

कोई लेकर चले, यह खेल बच्चों को बिल्कुल खेलने की तरह ही लगता है। पीयूष ने 'हाँ', कहा। झट पोटली नीचे रख बच्छराज ने पीयूष को कन्धे पर चढ़ा लिया, और पोटली लेकर चलने लगा। कोकिला को बहुत शर्म मालूम हुई। उसने मना किया, पर अब पीयूष उतरनेवाला न था, बच्छराज के ऊँचे कन्धे पर आसन मिलने से पीयूष को खुली हवा का लाभ मिला। बच्छराज ने कहा—भाई, मेरा सिर पकड़कर बैठे रहना, समझे।

इस तरह धीरे-धीरे रास्ता तय होने लगा। बीच-बीच में कोकिला राधा के पास से बक्स और बच्छराज से पोटली लेने का आग्रह करती थी, पर वे ग्रामीण दम्पति ऐसे मूर्ख न थे जो कोकिला का आग्रह मान उसे वज़न देकर कठिनाई में डाल देते। शहर के रहनेवालों की उच्चता का हर विषय में ग्रामीण खयाल रखते ही हैं। मज़दूरी न करने में भी बड़प्पन है, ऐसा ग्रामीण लोग शहर में रहनेवालोंके प्रति विश्वास कर लेते हैं। केवल इन ग्रामीणों की सोहबत में किसी समय यात्रा करने का मौका आ जाय, तब किसी-किसी समय समझदार शहरियों को पता चल जाता है कि बड़ेपन का कितनी ही बार 'अशक्ति' जैसा अर्थ होता है।

'माँ', गढ़ी दिखाई देने लगी !' अमर बोल उठा।

वच्छराज और राधा की दृष्टि भी उसी तरफ़ थी। आधे कोस से गाँव दिखाई देता था। शायद अमर की अपेक्षा अधिक आनन्द, गढ़ी देखकर दोनों पति-पत्नी को हुआ होगा। घर का आकर्षण भी अनोखा होता है।

लो, वह घर भी आ गया।

(३०)

घर के आगे पहुँचते ही कितने ही मनुष्य एकत्र हो गये। सभी ने प्रसन्न होकर कुशल-समाचार पूछे। ऐसा मालूम होता था, मानो वच्छराज के घर के आगे एक छोटा-सा मेला भरा हो। सजा खतम होने के बाद सब दोषी का दोष भूल जाते हैं; और उसके प्रति केवल सहानुभूति ही रह जाती है। वच्छराज इतने वर्ष बाद आया, यह सभी को अच्छा लगा। गाँव के प्रतिष्ठित कुटुम्ब का वह वारिस था और उसे देखते ही सबको अपने सुख के दिन याद हो आये। घर ठीक करने और सफाई करने में कई पड़ोसियों ने सहायता की। पर सबके मन में यह प्रश्न उठ रहा था कि वच्छराज के साथ यह नई स्त्री और बालक कौन है? वच्छराज के रिश्तेदारों में से कोई हो, ऐसा मालूम नहीं होता। गाँववालों से जुदी पोशाक, दिखाव और रँग-ढँग-वाली कोकिला के प्रति सबके हृदय में कुछ न कुछ तर्क-वितर्क चल रहा था। राधा को उसे अपनी 'भाभी' के रूप में पहचानते हुए भी किसी ने उसकी बात को न माना।

वच्छराज ने घर का कोना-कोना देखा। चाँदी की मूठवाली तलवार अभी खूँटी पर लटकी हुई थी, उसका भाला, गिलोल और तीर-कमान अपनी-अपनी जगह पर थे। एक ताक में उसकी थैली रखी थी; वह भी उसने देखी। इन सबको उसने अपने हाथ में ले-लेकर देखा और परम सन्तोष का अनुभव किया। झोपड़ी में जाकर एक भैंस और दो गायों को भी देखा जो उसी की थीं और उसने उनपर अपना हाथ फेरा। प्रसन्न होकर उन्होंने सिर और कान हिलाये। दो छोटे-छोटे बछड़े थे। उसके पास वच्छराज गया और उन्हें प्यार से खिलाने लगा। उन्हें नीचे उतारते ही वे पूँछ ऊँची उठाकर कूद-फाँद करने लगे। सब पशु उसकी तरफ़ देखने लगे। प्रत्येक के साथ वच्छराज ने बातें भी कीं। गाय के सिर पर हाथ फेरते हुए वच्छराज बोला—मैं जब गया था, तब तू छोटी-सी थी।

गाय के रोंगटे खड़े हो गये।

'बेटा ! बेटा ! भूखों मर गई, ठीक है न ?'

मनुष्य की भाषा गाय समझती होगी या नहीं, यह यदि उसके ज़बान न होने से ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता, तो भी मनुष्य की आँख की तरह पशु की आँखें भी भाव प्रदर्शित कर सकती हैं, यह तो प्रत्येक जानवर के पालक समझते ही हैं। गाय सामने देख रही थी, और बच्छराज उसे सहलाना जारी रखे, उसकी ऐसी इच्छा मालूम होती थी।

राधा ने बड़ी फुर्ती से कूड़ा निकाल डाला, बिछाने की दरी झटक- कर बिछा दी। और एक पुराना गदेला निकालकर बिछा दिया, उस पर कोकिला को बैठा दिया। फुर्ती से सारे बर्तन माँज डाले, पानी भर डाला, और देखते-देखते गन्दे मकान को चन्दन की तरह उज्ज्वल कर दिया। जीर्ण और मैली ठाकुर की गढ़ी साफ और आबादीवाली बन गई।

कोकिला भी इन सब कामों में सहायता करने को होती, पर राधा और बच्छाराज दोनों उसे कुछ नहीं करने देते। उसे अच्छा लगता है कि नहीं, यह वे बार-बार पूछते थे। उसे कोई कमी न अखरे इसका वे ध्यान रखते, और उसके आसपास फिरा करते। पीयूष को पानी पीना था। कोकिला उठकर प्याले में पानी देने लगी। बच्छराज ने यह देख लिया, और वह राधा से कहने लगा—भाभी को आग्रह करके लाई है, और फिर मेहनत कराती है?

राधा ने दौड़कर प्याला ले लिया और खुद जाकर पीयूष को पानी पिलाने लगी।

'मेरे पैर चलने दोगी या नहीं?' कोकिला ने हँसकर कहा—बड़ी मुश्किल से तुमने खाना बनाने दिया।

रात सोते समय अच्छे-से-अच्छे बिस्तर इकट्ठे कर कोकिला के लिए बिछौना तैयार किया। कोकिला ने भी युक्ति से देखा कि बच्छराज तथा राधा को मेरे लिए इतना प्रबन्ध करने में कोई बाधा तो नहीं होती? एक कमरे में उसने मोटा बिछौना बिछा हुआ देखा। कोकिला ने पूछा—ओ हो! कितना मोटा बिस्तर! कितने मन रुई इसमें भरवाई होगी?

राधा हँसी और बोली—बहुत ज्यादा है। चलो, वह तो पुराने समय का है।

कोकिला इस बिछौने के पास ही थी। उसे वहाँ से चले जाने की आतुरता राधा ने बताई, किन्तु मोटे फूले हुए गद्दे के एक छोर पर पैर रखकर देखने का कोकिला

का मन हुआ। पैर रखते ही वह नीचा हो गया और मानो उसमें घास भरी हो, ऐसी आवाज़ हुई।

'राधा बहिन, यह क्या?'

'यह तो हमारा बिछौना है। गाँवों में ऐसा ही होता है।' राधा ने कहा।

'तुमने घास बिछाया है और ऊपर गोदड़ी है। तुम ऐसे में क्यों सोती हो?'

'यह घास नहीं होता। यह तो पुआल है। रेशम जैसा चिकना और ऊन जैसा यह गर्म होता है। हमें तो यही अच्छा लगता है।'

'कल से मैं भी इस पर ही सोऊँगी।'

'भाभी, तुम्हें यह पसन्द न आयेगा।'

'तुम्हें पसन्द है तो फिर मुझे क्यों नहीं पसन्द आयेगा? मेरे पास कपड़ों का ढेर है, वह कल निकाल लेना।'

'ऐसी नादानी न करो। अपने घर में हम जैसा कहें वैसा करो।'

कोकिला कुछ न बोली; किन्तु उसने दूसरे दिन पुआल के ही बिछौने पर सोने का निश्चय किया।

रात ज्यादा होने पर कोकिला बिछौने पर बैठ गई। राधा ने पास आकर धीरे-धीरे कोकिला के पैर दबाना शुरू किया। कोकिला ने पैर खींच लिये और कहा—यह क्या करती हो? तुम्हारे साथ क्या इस सबके लिए मैं आई हूँ?'

'भाभी, यह कोमल शरीर। सिर पर विपत्ति और फिर हमने दोपहरी में दो कोस की मंजिल कराई। मेरा तो हृदय काँप गया, पर क्या करूँ? दूसरा कोई चारा ही न था। पैर तो थक ही गये होंगे। ज़रा दाब देने दो, कुछ थकावट मिट जायगी।'

राधा का कहना ठीक था। कोकिला के पैर सचमुच दुख रहे थे। पर उसने हरगिज राधा को पैर न दाबने दिये। वैभव और सत्ता की अतिशयता में विलास और स्वच्छन्दता की पराकाष्ठा पर पहुँचा समाज गुलामी को भी निमन्त्रित करता है। इस गुलामी के अवशेष की तरह पैरचप्पी को जगदीश और कोकिला दोनों ही बड़े तिरस्कार से देखते थे। अस्वस्थता और वास्तविक ज़रूरत की बात अलग है: पर निरर्थक पैरचप्पी की आदत या शौक, यह मनुष्य के ऊँच-नीच को स्पष्ट कर देती है।

बच्छराज वापस आकर खबर पूछने बैठा—'तू कहती थी कि भाभी तो बहुत ...। गाती हैं।' यह खूनी ग्रामीण संगीत का रसिक मालूम हुआ।

'हाँ, उनका गाना सुनो तो पास से उठने की भी तबियत न होगी।' राधा ने कहा।

'तो फिर तू कुछ सीखी या नहीं?'

'नहीं, वह तो इन्हीं का सुनना चाहिये।'

आखिर धीरे-धीरे आग्रह करके कोकिला से दोनों ने गाने के लिए विनती की। दुःख भुलाने को ये पति-पत्नी युक्तियाँ निकालते जाते थे। कोकिला में खुशामद कराने की आदत नहीं थी। उसने स्वाभाविक रूप से कबीर का एक गीत गाया:—

माया रंग बादली रे!
जामें चन्दा दीखत नाही!
माया रंग बादली रे!
काम-क्रोध के बदरा बनाये!
गरज रह्यो अहंकार!
लोभ-मोह की बूँद परत हैं!
भींज रह्यो संसार!
माया रंग बादली रे!

रात की शान्ति में चाँदनी शोभा देती है या संगीत। एक आँख को पसन्द है, इसलिए हृदय को पसन्द है। दूसरा हृदय को पसन्द है, इसलिए आँख को पसन्द होता है, ऐसा नवीन चाँदनी-मय वातावरण न हो तो भी वह पैदा हो जाता है। सारे सौन्दर्य में थोड़ा-बहुत पार्थिव अंश रहता है; संगीत का ही केवल सौन्दर्य ऐसा है कि जिसमें पार्थिवपन भी पिघलकर अति विशुद्ध, अकलंक और अविच्छिन्न रस-प्रवाह बहता है। बिना दोष जो कोई भी सौन्दर्य भोगता है तो वह संगीत ही है।

'वाह, वाह माँ! यह किसने गाया? धन्य है इस कण्ठ को!' पड़ोस में रहने-वाला एक वृद्ध मीर कह उठा। उससे अपने स्वभाव के अनुसार प्रशंसा किये बिना न रहा गया।

'मीर, मेरी भाभी आई हैं, उन्होंने ही गाया है!' संगीत के विषय में मीर की प्रशंसा बड़े से बड़ा प्रमाणपत्र मानकर प्रसन्न होती राधा बोल उठी।

'बेटा, अपने भाई को कहना कि उसके घर में पार्वती प्रसन्न है।' मीर बोला। जाति का मुसलमान होने पर भी ठाकुर-ठाकुरात में वह कहानियाँ कहता; कविताएँ

और भजन सुनाता था। इस मीर के रूप में परिचित मुसलमान-वर्ग हिन्दू-मुस्लिम के संयोगीकरण के प्रयोग जैसा परिचय भी कई जगह मिल जाता है। शिव-पार्वती के सम्बन्ध का ज्ञान उसे इतना था कि कोई भी हिन्दू सुनकर लज्जित होता।

'मीर, यह तो पार्वती जैसी ही है न!' मीर की प्रशंसा में राधा ने सुधार किया।

संगीत के विषय में, महिलाओं के विषय में, पार्वती के विषय में कई-कई कविताएँ मीर कह गया।

रात अधिक होने पर सभी सो गये। सवेरे जल्दी उठकर राधा ने घर की सफाई और जानवरों की चाकरी करना शुरू किया। कोकिला ने सूर्योदय होने से पहले आकर आँगन की शोभा बढ़ा दी। सारे मोहल्ले में 'गढ़ी' का आंगन चौक पूरने से देदीप्यमान बन गया। कौन जाने कहाँ से चौक और साथिया पूरने की शैली, मिट्टी, चूना और पत्थर कोकिला ने खोज निकाला। एक भजन भी उसने गाया :—

निर्मल गंगा को नीर पियो जिसने,
कूप को नीर पियो न पियो!
नाम निरंजन जो हिरदे में,
और को नाम लियो न लियो!

वृद्धावस्था के कारण नींद और आंख खोये हुए मीर सवेरे हुक्का पीने बैठा ही था। बहुत दिनों से स्वच्छ संगीत सुनाकर उसे मस्त करनेवाला कोई न मिला था। वह आनन्द में आ गया। पटिये पर बैठे-बैठे उसने संगीत समाप्त होने पर पूछा—बाई कोयल का स्वर लेकर जन्मी हुई मालूम होती है! तेरा नाम क्या है?

'मेरा नाम कोकिला है।'

'ओ हो हो, नाम रखनेवाले की धारणा तूने सार्थक कर दी। रोज इतने सवेरे ही उठती हो?' मीर ने पूछा।

'हां!'

सूर्योदय होने तक अस्वच्छ रहता आँगन लीप देना चाहिये। सूर्योदय होने तक अस्वच्छ रह सकनेवाला मनुष्य भी दर्शनीय नहीं है। मीर ने खूब बातचीत की, कोकिला के अन्दर गये बाद भी उसने बोलना जारी रखा। आंखें खो जाने के बाद बातें करने के लिए सामने मनुष्य की बहुत ज़रूरत नहीं रहती।

रसोई करने का काम भी कोकिला ने अपने सिर लिया। सारे मोहल्ले में, बल्कि गाँव में, इस नवीन स्त्री के प्रति कोई अजीब मोहिनी मालूम हुई। कोकिला सबसे अलग मालूम होते हुए भी सबके साथ बहुत सरलता से हिल-मिल गई थी। गाँव को अज्ञान स्त्रियों को उनका अज्ञान और ओछापन मालूम होने लगे, ऐसा वह कभी नहीं करती थी। उसे भी इस ग्राम्य-जनता का भोला सरल स्वभाव पसन्द आया। जैसे नागरिकों की स्वच्छता उनमें नहीं होती, वैसे ही नागरिकों का द्वेष भी उनमें नहीं होता। नागरिकों की स्वच्छता और ग्रामीणों की सरलता, इन दोनों का मिश्रण कैसा सुन्दर लगता है! कोकिला को विचार आया। राधा से मिलने के लिए और साथ ही कोकिला को देखने के लिए आनेवाली स्त्रियों के साथ बालक भी आते थे। इन बच्चों के न तो बालों का ठिकाना, न कपड़ों का ठिकाना, सारे शरीर पर स्वच्छता का संपूर्ण अभाव देखने में आता था। फिर भी इन बालकों में से कइयों का मुख और शरीर अच्छा कहा जा सकनेवाला था। एक बालक को पास बुलाकर कोकिला उसे खिलाने लगी। माँ-बाप को उनके बालक के द्वारा जीता जा सकता है। संसार में खुले में खुला पक्षपात माँ-बाप का अपने बच्चे के प्रति ही होता है, और इस दोष में एक भी अपवाद न होने से वह क्षन्तव्य ही है। बालक को कोकिला के साथ खेलता देख उसकी माँ बहुत प्रसन्न हुई। कोकिला ने पानी लाकर बालक का मुख धोया और ज़रा बाल ठीक किये। बादल में ढँका चन्द्रमा बाहर निकल आता है, वैसे ही बालक का मुख उसकी माँ को लगा।

'कैसा सुघड़ बालक है!' कोकिला ने प्रशंसा की। उसकी माँ को यह प्रशंसा ठीक लगी। केवल गन्दा कुरता उसे बुरा मालूम हुआ। माता ने निश्चय किया कि ऐसे सुन्दर बालक को घर जाकर साफ कपड़े पहनाऊँगी।

पशु की तरह बालक भी सच्चा प्रेम पहचान सकता है। मनुष्य भले ही दिखाव करे, पर हरएक बालक-प्रेमी नहीं बन सकता। किसी के घर जाने पर माँ-बाप अपने बालक को आगे लेकर चलते हैं। इसलिए शिष्टाचार के कारण बालक का नाम पूछकर, उसे खिलाने का दिखाव सबको करना पड़ता है। पर बालक तो तुरन्त परख जाता है कि बाहर निकलकर वह अपने को 'बनचर' जैसा है, कहकर हँसनेवाला कौन है, और बनचर जैसा होने के बाद भी अपने चाहनेवाले को पहचानकर उनके ही पास जाता है।

और भजन सुनाता था। इस मीर के रूप में परिचित मुसलमान-वर्ग हिन्दू-मुस्लिम के संयोगीकरण के प्रयोग जैसा परिचय भी कई जगह मिल जाता है। शिव-पार्वती के सम्बन्ध का ज्ञान उसे इतना था कि कोई भी हिन्दू सुनकर लज्जित होता।

'मीर, यह तो पार्वती जैसी ही है न!' मीर की प्रशंसा में राधा ने सुधार किया।

संगीत के विषय में, महिलाओं के विषय में, पार्वती के विषय में कई-कई कविताएँ मीर कह गया।

रात अधिक होने पर सभी सो गये। सवेरे जल्दी उठकर राधा ने घर की सफाई और जानवरों की चाकरी करना शुरू किया। कोकिला ने सूर्योदय होने से पहले आकर आँगन की शोभा बढ़ा दी। सारे मोहल्ले में 'गढ़ी' का आँगन चौक पूरने से देदीप्यमान बन गया। कौन जाने कहाँ से चौक और साथिया पूरने की शैली, मिट्टी, चूना और पत्थर कोकिला ने खोज निकाला। एक भजन भी उसने गाया :—

निर्मल गंगा को नीर पियो जिसने,
कूप को नीर पियो न पियो!
नाम निरंजन जो हिरदे में,
और को नाम लियो न लियो!

वृद्धावस्था के कारण नींद और आँख खोये हुए मीर सवेरे हुक्का पीने बैठा ही था। बहुत दिनों से स्वच्छ संगीत सुनाकर उसे मस्त करनेवाला कोई न मिला था। वह आनन्द में आ गया। पटिये पर बैठे-बैठे उसने संगीत समाप्त होने पर पूछा—बाई कोयल का स्वर लेकर जन्मी हुई मालूम होती है! तेरा नाम क्या है?

'मेरा नाम कोकिला है।'

'ओ हो हो, नाम रखनेवाले की धारणा तूने सार्थक कर दी। रोज इतने सवेरे ही उठती हो?' मीर ने पूछा।

'हाँ!'

सूर्योदय होने तक अस्वच्छ रहता आँगन लीप देना चाहिये। सूर्योदय होने तक अस्वच्छ रह सकनेवाला मनुष्य भी दर्शनीय नहीं है। मीर ने खूब बातचीत की, कोकिला के अन्दर गये बाद भी उसने बोलना जारी रखा। आँखें खो जाने के बाद बातें करने के लिए सामने मनुष्य की बहुत ज़रूरत नहीं रहती।

रसोई करने का काम भी कोकिला ने अपने सिर लिया। सारे मोहल्ले में, बल्कि गाँव में, इस नवीन स्त्री के प्रति कोई अजीब मोहिनी मालूम हुई। कोकिला सबसे अलग मालूम होते हुए भी सबके साथ बहुत सरलता से हिल-मिल गई थी। गाँव की अज्ञान स्त्रियों को उनका अज्ञान और ओछापन मालूम होने लगे, ऐसा वह कभी नहीं करती थी। उसे भी इस ग्राम्य-जनता का भोला सरल स्वभाव पसन्द आया। जैसे नागरिकों की स्वच्छता उनमें नहीं होती, वैसे ही नागरिकों का द्वेष भी उनमें नहीं होता। नागरिकों की स्वच्छता और ग्रामीणों की सरलता, इन दोनों का मिश्रण कैसा सुन्दर लगता है! कोकिला को विचार आया। राधा से मिलने के लिए और साथ ही कोकिला को देखने के लिए आनेवाली स्त्रियों के साथ बालक भी आते थे। इन बच्चों के न तो बालों का ठिकाना, न कपड़ों का ठिकाना, सारे शरीर पर स्वच्छता का संपूर्ण अभाव देखने में आता था। फिर भी इन बालकों में से कइयों का मुख और शरीर अच्छा कहा जा सकनेवाला था। एक बालक को पास बुलाकर कोकिला उसे खिलाने लगी। माँ-बाप को उनके बालक के द्वारा जीता जा सकता है। संसार में खुले में खुला पक्षपात माँ-बाप का अपने बच्चे के प्रति ही होता है, और इस दोष में एक भी अपवाद न होने से वह क्षन्तव्य ही है। बालक को कोकिला के साथ खेलता देख उसकी माँ बहुत प्रसन्न हुई। कोकिला ने पानी लाकर बालक का मुख धोया और ज़रा बाल ठीक किये। बादल में ढँका चन्द्रमा बाहर निकल आता है, वैसे ही बालक का मुख उसकी माँ को लगा।

'कैसा सुघड़ बालक है!' कोकिला ने प्रशंसा की। उसकी माँ को यह प्रशंसा ठीक लगी। केवल गन्दा कुरता उसे बुरा मालूम हुआ। माता ने निश्चय किया कि ऐसे सुन्दर बालक को घर जाकर साफ कपड़े पहनाऊँगी।

पशु की तरह बालक भी सच्चा प्रेम पहचान सकता है। मनुष्य भले ही दिखाव करे, पर हरएक बालक-प्रेमी नहीं बन सकता। किसी के घर जाने पर माँ-बाप अपने बालक को आगे लेकर चलते हैं। इसलिए शिष्टाचार के कारण बालक का नाम पूछकर, उसे खिलाने का दिखाव सबको करना पड़ता है। पर बालक तो तुरन्त परख जाता है कि बाहर निकलकर वह अपने को 'बनचर' जैसा है, कहकर हँसनेवाला कौन है, और बनचर जैसा होने के बाद भी अपने चाहनेवाले को पहचानकर उनके ही पास जाता है।

कोकिला के आस-पास बालक एकत्र हो जाते। उनकी योग्यता के अनुसार वह उनसे कहानी कहती या उन्हें खिलाती।

मुख में फूल आँख में हीरा !
देव पूजूँ या तुमको वीरा !
देव रूठ मन्दिर में बसे !
मेरा वीर खड़खड़ हँसे !
हँसते-हँसते मोती गिरा !
बहिन ने जा आँचल भरा !
मोती का इक्यावन हार !
बहिन के पूरे श्रृङ्गार !
हँसते बन्द न होना वीर !
भाभी माँगे रेशम चीर !

इस प्रकार बच्चों के गीत सुनाकर वह उन्हें रिझाती थी। बड़ी लड़कियाँ उन्हें सहज में ही सीख लेती थीं।

सबको कोकिला के पास गन्दे कपड़े और गन्दे बालकों के साथ में आते शर्म मालूम होती थी। इसलिए कोकिला को देखकर वे साफ़ कपड़े और साफ़ शरीर रखने लगीं। नहा-धोकर साफ़ कपड़े पहिन बाहर निकलती ग्रामीण स्त्रियाँ रानी की तरह मालूम होती थीं। 'इस ग्रामीणता में कैसे-कैसे रूप ढँके हुए हैं।' कोकिला को विचार आया। वह कभी-कभी पड़ोस के मकानों में जाती। ग़रीब स्त्रियों को यह भारी मान लिया हुआ मालूम होता। वे अपने झोपड़े स्वच्छ कर डालतीं। आँगन में पड़े कंडे, घास, कचरा वगैरह जहाँ तक हो कम-से-कम दिखलाई दे, इसकी वे कोशिश करती थीं। कोकिला उनके घर जा बैठती थी; उनके सुख-दुःख की बात सुनती, उनके काम-काज में थोड़ी-थोड़ी सहायता देती, उनके आँगनों में चौक पूरती और उत्सुक स्त्रियों को चौक पूरना सिखाती। चार-पाँच दिनों में सारा गाँव उसने मोह लिया।

एक दिन मीर सवेरे उठकर कोकिला के गीत की बाट जोहने लगा। परन्तु सूर्योदय होने पर भी कोकिला की कुहुक सुनाई न दी। गढ़ी के आँगन में किसी की आवाज़ राह जोहता मीर बोल उठा—माँ, क्यों ! आज इतनी देर ? कुशल तो है न ?

वृद्ध मीर अब कोकिला को 'माँ' शब्द बिना सम्बोधित नहीं करता था। आँगन में खड़े बच्छराज ने जवाब दिया—यह तो मैं हूँ, भाभी नहीं हैं मीर!

'वह अभी जागी नहीं?'

'कल रात से उन्हें बुखार आ गया है।'

'हरि! हरि! वह जागती है?'

'हाँ!'

'बापू, मुझे ले चल। देखूँ तो उसे क्या हो गया है!' वृद्ध हरएक विद्या जानता मालूम हुआ। वैद्यक का भी वह जानकार था। लम्बी उम्र में क्या-क्या सीखने में नहीं आ जाता?

बच्छराज मीर को घर में लिवा ले गया। ज़रा भी न देख सकनेवाले मीर ने आँख खोलने का प्रयत्न किया। कोकिला अस्वस्थ थी। यह उसे खबर पड़ गई थी। इसलिए आँख खोलने की चेष्टा और कल्पना के बल उसने कोकिला को सोते देखा। हिन्दू देव-देवी तथा मुस्लिम ओलियापीर इन सबकी आशीष बरसाते उसने एक कवित्त कहा, और बिछौने के पास बैठकर वह कोकिला की नब्ज़ देखने लगा।

'कुछ नहीं, साहब ठीक कर देगा।' मीर बोला। वह थोड़ी देर बैठा; और फिर अपने पटिये पर आकर बैठ गया, फिर बाहर निकलते बच्छराज से मीर ने कहा—बच्छराज, प्रभु सब ठीक करेगा। पर इसकी तबियत खराब है।

'ऐसा? अब क्या करूँ?'

'किसी अच्छे वैद्य-डाक्टर के बिना काम न चलेगा।'

'यहाँ कहाँ से वैद्य या डाक्टर को बुलाऊँ?'

'नाथबाबा के पास धागा बँधाओ न?' पास खड़ा एक आदमी बोला।

'पर वहाँ ले कैसे जाया जाय? बुखार तो तेज़ है।' कहकर परेशान हो बच्छराज आँगन में आ खड़ा हुआ। उसे ऐसा लगा कि इस शहर-निवासिनी सुकोमल अबला को यहाँ तक लाकर परेशानी में डालने से ही उसे बुखार आ गया है।

(३१)

मिल-मज़दूर जोश में आकर कुसुम की मोटर पर पत्थर फेंके बिना न रहे, इससे उनके नेता सुखपाल, शान्तिप्रिय और मनोहर को बहुत बुरा लगा। वह समझौता

होने का दिन था, इतना ही नहीं, किन्तु कुसुम का वह जन्म-दिवस था। उपरान्त कुसुम के जन्म-दिवस के उपलक्ष में मेहमानी का निमन्त्रण भी उन्होंने स्वीकार किया था, उसमें वे उपस्थित भी हुए थे। इन सब ओर देखा न जाय तो भी सद्गृहस्थ के रूप में, एक स्त्री पर उनके ही पक्ष की तरफ से इस तरह पत्थर फेंके जायँ, यह ज़रूर नीचा दिखाई देनेवाला मामला था। और यह स्त्री कौन? मिल-मालिक की ही लड़की, जिसके प्रति तीनों नेता बहुत कोमल भाव अनुभव करते थे। सुखपाल को तो लगा कि जुगलकिशोर ने ही पीछे से पत्थर फिकवाये थे, पर यह केवल उसका भ्रम था। ऐसा दूसरे दोनों मनुष्यों ने कहा। नेताओं का समझाना, सिंधियों की बन्दूकें, प्राणलाल की धमकी और जुगलकिशोर की युक्ति से लोग थोड़े शान्त पड़े और कुसुम सकुशल बँगले के अन्दर प्रवेश कर सकी।

मज़दूरों की गड़बड़ की खबर फौरन पुलिस को दी गई और सर बिहारीलाल के बँगले पर भी खबर पहुँचाई गई। सर बिहारीलाल ने रमेश को भेजने की खबर दी। रमेश फुर्ती से उस जगह पर आ पहुँचा। पुलिस की टुकड़ी भी इसी अर्से में आ पहुँची। रमेश लोगों की गर्द में से बाहर निकलना चाहता था, पर कोई किसी की भी सुनने इस समय तैयार न था। दङ्गे में भी एक तरह की नशे जैसी मस्ती और मज़ा मालूम होता है; यह मज़ा यदि मण्डली समेत हासिल किया जाय तो वह एकदम बढ़ जाता है। मज़दूरों की ऐसी बड़ी भीड़ से भी अधिक बड़ी भीड़ कहाँ हो सकती है? दङ्गे की मस्ती एकदम कैसे छोड़ी जा सकती है? आध घण्टे भारी उलझन में बिताने के बाद रमेश ने जुगलकिशोर को देखा। जुगलकिशोर रमेश के पास आया। उसने कहा— अरे, क्या कहते हो? तुम्हारी कौन सुननेवाला है? भला इस तरह लोग व्याख्यान देने से समझेंगे?

'मुझे तो उनके लाभ की बात कहनी है। कुसुमकुमारी अपने को आज मिली पिता की तरफ से भेंट की रकम मज़दूरों को बख्शीश करती हैं।' रमेश ने कहा।

'ऐसा? कितनी रकम है?'

'बीस हज़ार रुपया। देखो यह कागज़।' कहकर रमेश ने कुसुम का पत्र जुगलकिशोर को पढ़ सुनाया।

कुसुम के आसपास विचरते सुखपाल, शान्तिप्रिय और मनोहर उसके पीछे बँगले ... गये। अब बाहर क्या होता है, इसकी इन्हें अधिक आवश्यकता नहीं थी। उन्हें

प्राणलाल के सामने सुलह की शर्तें भी पेश करनी थीं, इसलिए वे इस महत्त्व के काम में रुक गये थे।

बाहर रमेश और जुगलकिशोर उक्त बातें कर रहे थे। कई लोग न समझने के मज़े के लिए आवाज़ करते थे; कई लोग मालिक को गाली देते थे; कई नेताओं को गालियाँ देते और कितने ही अन्दर-अन्दर से ऊपरी बातें कर कइयों को अपनी आलोचना में शामिल करते; इस तरह तमाम बातचीतों की आवाज़, वातावरण में एक अजीब कोलाहल उत्पन्न करती थी। जुगलकिशोर ने अपने पास के पाँच-सात मनुष्यों को बता दिया कि अब शान्त हो जाओ, तुम्हें बीस हज़ार रुपए मिलेंगे। उसने यह बात फैलाई, और इसका श्रेय जुगलकिशोर ने लेने ज़ोर की आवाज़ के साथ सबको शान्त किया। जुगलकिशोर के कार्य का अनुमोदन करने भीड़ के हर तरफ़ कोई न कोई लोग थे ही, ऐसा लगा; कारण उसकी आवाज़ के साथ ही चारों तरफ शान्त रहने के लिए लोग चिल्लाने लगे। मज़दूर शान्त हुए इसलिए जुगलकिशोर ने रमेश को जो कहना था, वह कहने के लिए इशारा किया। रमेश ने स्वाभाविक स्वर से कुछ ऊँची आवाज़ में कहा—तुम सभी अपने मालिक के सामने शरारत करने आमादा हुए हो, पर उनकी लड़की ने अपनी भेंट में से बीस हज़ार रुपए तुम्हें दिये हैं।

भीड़ में से मानो हरएक को बीस हज़ार रुपया मिला हो, इस तरह हरएक ने अपनी खुशी चिल्लाकर प्रकट की। मज़दूरों को अधिकार और न्याय की अपेक्षा रकम मिलने की सीधी-सादी बात अधिक पसन्द आई। लोग शान्त हो गये, इसलिए रमेश ने कहा—यह पैसा तुम्हारे ही लाभ के लिए है। इसका तुम्हारे बाल-बच्चों के लिए उपयोग होगा।

लोग फिर खुशी से चिल्लाने लगे।

हरएक प्रसंग को विपरीत रूप में रखने की वृत्तिवाले जुगलकिशोर ने धीरे से कहा—अब तुम्हारा नेता यह है या जो अन्दर मौज उड़ाता है वह?

नेताओं के विषय में टोलीबन्द मनुष्य बहुत निष्पक्ष रहते हैं। उनका हृदय जो पसन्द कर सके, वही उनका फौरन नेता बन सकता है। लोगों ने रमेश को नेता के रूप में मान लिया। कई उत्साही और जोशीले मनुष्यों ने खुशी में आकर रमेश को उठा लिया और सब बँगले के पास दौड़े। अपने लिए बीस हज़ार रुपए की रकम देनेवाली कुसुम का दर्शन कर पत्थर फेंकने के बदले पाप का प्रायश्चित्त करने की उन्होंने

इच्छा प्रकट की। लोग शान्त थे, इसलिए पुलिस बीच में नहीं पड़ी थी। मज़दूरों का चिल्लाना सुनकर अन्दर से सब लोग बाहर देखने निकल आये थे। मनुष्य का कंधा और हाथ यह बालक को बैठने के लिए भले ही अच्छे साधन माने जायँ, किन्तु ऐसे युवक के लिए इसमें कठिनता और परतन्त्रता मालूम होना स्वाभाविक ही है। मज़दूरों के सिर पर से रमेश नीचे उतरता दिखलाई दिया।

यह देखकर शान्तिप्रिय हँसा—रमेश तो नाचता मालूम होता है।

सब हँस उठे। किन्तु कुसुम की दृष्टि रमेश की तरफ़ थी। उसने शान्तिप्रिय की आलोचना और दूसरों का हास्य नहीं सुना था। वह चिल्ला पड़ी—रमेश भाई को यहीं पर बुला लो न।

कुसुम को देखकर लोग अधिक खुशी से चिल्लाने और हाथ हिलाने लगे। कुसुम को बड़ा डर लगा। भीड़ का आनन्द और क्रोध दोनों सहज ही रुक सकें, ऐसा नहीं था। रमेश ने बड़ी मेहनत से जेब में से काग़ज़ निकाला। इसमें क्या होगा, यह जानने की इन्तज़ारी में लोग कुछ शान्त पड़ गये। इसलिए जुगलकिशोर ने एकदम चिल्लाकर कहा—उस बहिन ने तुम्हें रुपए दिये और उसके बदले यह लिखा काग़ज़।

लोग फिर ताली बजाकर ज़ोर से चिल्लाये; और ऐसा दिखाव किया, मानो वे कुसुम को नमस्कार करते हों। इस बीच रमेश नीचे उतर गया था। सुखपाल और शान्तिप्रिय के मुख पर भीड़ के प्रति तिरस्कार झलक उठा। पास का ही मनुष्य सुन सके, इस प्रकार जुगलकिशोर ने कहा—और वे तुम्हारे नेता। 'चढ़ जा बेटा शूली पर' कहकर उन्होंने तुम्हें इतने दिन भूखों मारा। और वह अब छज्जे पर खड़ा-खड़ा तुम्हारा तमाशा देखता है।

यह सुनकर लोगों ने पहले के अगुवाओं के प्रति तिरस्कार के भाव प्रकट किये। कुछ समझदार मनुष्यों ने रमेश और जुगलकिशोर को ही समझौते के कार्य में अपना पक्ष रखने बँगले में भेजा।

शान्तिप्रिय ने तीक्ष्णता से रमेश से कहा—रमेश, तू तो बड़ा आदमी बनकर आया है।

'बड़ा बनने का रोज़गार तुम्हारा है। मैं तो जिसकी नौकरी करता हूँ, उसका काम करता हूँ।'

'वह काग़ज़ किसका था? और दान किसने दिया?' सुखपाल ने पूछा।

'तुम्हें खबर नहीं होगी ? मज़दूरों का नेतृत्व करते हो और कुसुम बहिन के मित्र बने फिरते हो !' जुगुलकिशोर ने कहा। यह भयंकर मनुष्य मित्र की तरह ही दुश्मन के तौर पर भी—दोनों में किसी भी प्रकार पसन्द करने योग्य न था। किसी भी समय आलोचना के मौके पर उसका मुख ऐसा भयंकर बन जाता था कि भले-भले बदमाशों को भी जवाब देने में सोचना पड़ता था। संस्कारी सुखपाल और शान्तिप्रिय उसे उत्तर न देते, यह ठीक था। सुखपाल ने उत्तर नहीं दिया, इतना ही नहीं, किन्तु जुगलकिशोर के प्रति मुख पर उपेक्षा का भाव प्रकट किया। जुगलकिशोर यह देखकर हँसा। रमेश ने काग़ज़ में लिखी बात बतलाई। मनोहर ने कुसुम की तरफ़ देखकर पूछा—मुझे पहले से ही क्यों न बताया ? यहाँ तक नौबत तो न आती ?

'तुम्हें बतलाने का समय कहाँ था ? मैं आई हूँ, यह सुनकर भी तो तुम्हें सुनाई नहीं दिया था।' कुसुम ने उत्तर दिया।

'इस बहिन को यहाँ किसलिए साथ लाये हो ?' जुगलकिशोर को कोई उत्तर नहीं देता, यह जानते हुए भी उसने पूछा।

'इनकी उपस्थिति से समाधान जल्दी होगा और लोगों पर नियन्त्रण रहेगा, यह समझकर वकील साहब इन्हें यहाँ ले आये।' मनोहर ने कहा।

'पर जोखिम का भी किसी को ख़्याल है !' जुगलकिशोर ने हँसकर कहा।

एकाएक प्राणलाल ने प्रवेश किया। दुनिया में प्रलय होने की सूचना देनेवाले अभागे जैसी अशान्ति, घबराहट, गुस्सा और चिन्ता आदि उसके मुख और चाल से मालूम हो रही थी।

'क्यों, प्राणलाल भाई, क्या है ? अब फ़ुरसत हो तो हम शर्तें तय कर लें।' शान्तिप्रिय ने पूछा।

'अरे, तुम्हारी फ़ुरसत और तुम्हारी शर्तें पड़ें भाड़ में। लोगों ने क्या कर डाला ?' प्राणलाल तेज हो गया।

'क्या हुआ, यह तो बताओ ?'

'मेरे मेज़ में से पन्द्रह हजार रुपए के नोट गुम हो गये हैं।'

यह सुन सब एक दूसरे की तरफ़ देखने लगे। प्राणलाल अपनी सचाई के लिए दुश्मनों में भी सम्मानित था। यह सभी को विश्वास था कि वह कभी झूठ नहीं बोलता।

'तुमने आखरी बार उन्हें कब देखा था ?' सुखपाल ने पूछा।

'अरे क्या कब देखे थे ? जब तुम सब लोग आये, और लोगों ने हल्ला मचाया उसी समय बंद करके नीचे आ गया था। और कभी नहीं, किन्तु आज ही कौन जाने कैसे मैं चाबी वहीं रखकर उठा चला आया।'

'उस समय वहाँ कोई बैठा था ?'

'अरे, हाँ ! इस रमेश का परिचित वह कौन है ?...वह जगदीश बैठा था।'

'फिर कहाँ गया ?'

'इसका पता ही नहीं !' प्राणलाल ने कहा—वह फिर पिछला दरवाज़ा चन्द्रकांत से खुलवाकर चला गया।

जुगलकिशोर ने तुरन्त उठकर बाहर जाकर प्रकट किया कि अभी समझौता न होगा। किसी के सिर चोरी लगेगी। इसकी सूचना अपने मालिक को भी कर दो।

लोगों ने खूब तर्क और अनुमान किये और भीड़ का एक बड़ा भाग सर बिहारी-लाल के बँगले की तरफ़ दौड़ा। वे कई जगह देखने गये। पुलिस के लोग थोड़ी दूर भीड़ के साथ गये ; किन्तु भीड़ द्वारा कोई गड़बड़ पैदा होने की सम्भावना न पाकर पुलिस के लोग वापस चले गये। जुगलकिशोर ने इस तरह कहा जिसे कम लोग सुन सकें—सभी नामर्द इकट्ठे हुए हैं ! लगा दो आग !

इतना कहकर जुगलकिशोर गायब हो गया।

प्राणलाल ने पुलिस को खबर दी। उसे जगदीश पर ही शक हुआ था। सुखपाल और शान्तिप्रिय ने इस सन्देह को बढ़ाने में सहायता दी। जगदीश की तङ्गी, उसका स्वभाव, उसकी प्रवृत्ति का वर्णन कर, मानो जगदीश ने ही चोरी की हो यह बतलाया। रमेश बहुत पूछताछ करने लगा। जगदीश ऐसा कार्य नहीं कर सकता, इस तरह की वह दलीलें भी देने लगा। यह सबने हँसी में उड़ा दीं।

'अपने दोस्त पर बहुत दया आती है, ठीक है न ?' सुखपाल ने पूछा।

'दया ? मेरा दोस्त ऐसा नहीं कि मेरी दया चाहता हो।' रमेश ने कुछ कड़ाई से उत्तर दिया।

'किसलिए दया माँगेगा ? जब मुफ्त के पन्द्रह हज़ार रुपए मिलते हों तो फिर उसे दया माँगने की ज़रुरत क्यों होने लगी ?' शान्तिप्रिय तिरस्कारपूर्वक बोला।

'क्या ? क्या कहते हो ? जगदीश ने चोरी की ? यह अगर तुम साबित कर दो

तो मैं ये पन्द्रह हज़ार रुपए इकट्ठा करने तैयार हूँ।' रमेश ने कहा। कुसुम उसके सामने देखने लगी।

'पहले अपने पास इतने रुपए इकट्ठे तो हो जाने दे!' सुखपाल ने हँसकर कहा।

'मैं सारे जीवन विना तनख्वाह नौकरी करूँगा और पन्द्रह हज़ार रुपए भर दूँगा।'

'अब यह सब तो पुलिस साबित करेगी। तुम्हें क्या?' प्राणलाल ने कहा।

'मुझे तो पहले ही विश्वास है कि मेरा मित्र चोरी कर ही नहीं सकता।' रमेश ने कहा।

'तुम्हारा मित्र तो क्या, पर तुम भी समय आने पर चोरी कर सकते हो। मनुष्य के स्वभाव को कौन पहचान सका है?' सुखपाल ने कहा।

अधिक क्रोध करने से कोई लाभ नहीं होता। इसलिए रमेश कुछ न बोला। पुलिस-अधिकारियों ने आकर घटना-स्थल की जांच की। जवाब लिये और सन्देह किये लोगों को पकड़ने के लिए हुक्म दिया। रमेश पुलिस के साथ ही रहा। शायद जगदीश पकड़ा जाय और किसी की ज़रूरत पड़े तो उसे सारी दुनिया में रमेश के सिवा कोई भी नहीं था, यह रमेश जानता था। उसे विश्वास था कि जगदीश विना भागे एकदम हाज़िर हो जायगा। किन्तु पुलिस का उसे खोजने का प्रयत्न निष्फल गया। रमेश को भी नवीनता लगी। जगदीश कहाँ गया होगा? रात लगभग दस बजे तक उसने और पुलिस के आदमियों ने जगदीश के मिलने की कई जगहें देख डालीं। आखिर पुलिस के अफसरों ने उससे पूछा—शकंदार तुम्हारा मित्र है न?

'हाँ, मेरा मित्र है।'

'तुमने सभी जगहें बताईं, पर एक जगह खास देखने को रह गई है।' अफ़सर ने कहा।

'कौन-सी जगह?'

'तुम कहाँ रहते हो?' अफ़सर ने पूछा। रमेश चौंका। मेरे मकान के प्रति पुलिस को शक क्यों हुआ? पुलिस को शक होना सम्भव था। रमेश को भी डर लगा कि कहीं जगदीश उसके मकान में ही शायद न छिपा हो? यह अशक्य था, पर असम्भव भी नहीं कहा जा सकता था।

'मैं तो सर विहारीलाल के बँगले में ही रहता हूँ।' रमेश ने कहा।

'इससे कुछ नहीं। हम वह जगह भी देख लें। चतुर मनुष्य कम-से-कम शकवाली जगह में ही छिपते हैं।' यह कहकर दो-तीन सिपाही साथ लेकर पुलिस-अफ़सर सर विहारीलाल के बँगले की तरफ़ गया। रमेश साथ ही था। पुलिस-अफ़सर को सहायता देने के बहाने, उसकी सहानुभूति पाने और उसका उपयोग जगदीश के लिए करने की उसकी वृत्ति थी ही। किसी ने पुलिस-अफ़सर से कहा था कि शकदार रमेश का मित्र है। सहानुभूति के बदले इस बात का पुलिस ने उपयोग करना निश्चय किया।

बँगले के पास आने पर रमेश को लगा कि बँगले के एक भाग में से धुआँ निकल रहा है। उसने पुलिस का ध्यान खींचा। अफ़सर ने देखा।

'ठीक! तुम्हारा चोर इसी में है। या तो पकड़े जाने की तैयारी में होगा और या सर विहारीलाल से बदला लेने उतारू हो गया होगा।' यह कहकर उसने अपने दोनों सिपाहियों से कहा—दो बाहर खड़े रहो। कोई निकले, उसे पकड़ रखना। एक आदमी मेरे साथ चलो। क्यों, मेरा शक ठीक हुआ न? रमेश से अफ़सर ने कहा। अपनी योग्यता पर इस अफ़सर को पूर्ण विश्वास था ही। अब यह विश्वास और भी बढ़ गया।

रमेश तो विमूढ़ हो गया। 'क्या होगा? जगदीश क्या यहीं पकड़ा जायगा? उसने क्यों आग लगाई? और उसे विहारीलाल से वैर क्यों होगा?'

धुएँ के बदले दो-तीन जगहों से रोशनी उठने लगी। पुलिस-अफ़सर और रमेश दोनों दौड़े।

(२२)

विहारीलाल को आज बहुत परेशानी हुई थी। जन्म-तिथि होने पर भी हर वर्ष जैसा उत्साह उनमें दिखाई न देता था। उनका संस्कारी और रसज्ञ हृदय उम्र के साथ-साथ शान्ति के मार्ग पर बढ़ता जाता था। मुख्य तौर पर वाचन और स्वाभाविक संगीत, यही उनके शौक के विषय थे। संसार से ध्यान खींचनेवाले राजर्षि की तरह उनका बर्ताव था। हठ या आग्रह से नहीं, किन्तु सारी वस्तुओं का सार और सौंदर्य देख और अनुभव कर उसमें के स्वर को देखने की वृत्ति रखनेवाले निवृत्तिपरायण वानप्रस्थ

की तरह बह रहते थे। ऐसा भी अफ़वाह थी कि वे कभी-कभी योग और प्रेतावाहन के भी प्रयोग करते थे।

किन्तु उनसे उन्हें दिलचस्पी न थी ; उन पर दुःख-सुख का असर न होता हो, ऐसा भी नहीं कहा जा सकता। कोई संकट आकर, वृक्षों को जड़-मूल से उखाड़कर विनाश छोड़ जाता है, ऐसे संकट के स्वरूप की उनकी वृत्ति न थी। समुद्र के बीच में स्थित कोई उतुङ्ग शिलाखंड लहरों के साथ खेलते हुए भीगने पर भी जैसे का तैसा रहता है, ऐसा ही उनका हृदय की तरंगों से सम्बन्ध था। शोक या हर्ष उनके चरणों को अस्थिर नहीं बना सकता था।

फिर भी आज किसी चिन्ता की छाप उनके मुख पर दिखलाई देती थी। यह दिखाई न दे, इसका उन्होंने बड़ा प्रयत्न किया। कुसुम अपनी जन्म-तिथि की विशिष्ट अभिलाषाओं और स्वप्नों में लीन थी। इसलिए वे उससे अपनी उदासी छिपा सके थे। पर सबके चले जाने के बाद वे अकेले रह गये तब उनके मुख पर स्पष्ट रूप में बेचैनी दिखलाई दी।

रमेश सबके साथ नहीं गया था। हड़ताल के समाधान में भाग लेने उससे किसी ने न कहा था। केवल कुसुम ने ठीक समय पर भेंट की रकम प्रकट करना बतलाया था। इसलिए उसे जाने की उतावली नहीं थी। उसने सर बिहारीलाल से पूछा—आप समाधान के सम्मेलन में नहीं जायेंगे ?

'नहीं, मेरा क्या काम है ? प्राणलाल को मैंने सूचना दे ही दी है।'

'कल की पुस्तक अपूर्ण रही है, यदि आपकी इच्छा हो तो पढ़ूँ।' रमेश ने पूछा। उसे ऐसा लगा कि बिहारीलाल रोज़ की तरह आज शान्त नहीं हैं।

'कौन-सा प्रकरण चल रहा था ?' उन्होंने पूछा।

'जंगली जातियों में 'नरमेध' वाला प्रकरण पढ़ना है।'

सर बिहारीलाल कुछ हँसे और बोले—सभ्य जातियों के नरमेध सम्बन्धी प्रकरण इसमें शामिल करने जैसा लगता है। आज कुछ नहीं पढ़वाना। आप मिल में जाकर कुसुम की भेंट जाहिर कर आना।

'जी हाँ !' कहकर रमेश वहाँ से चला गया।

सर बिहारीलाल अकेले रह गये। उन्होंने आँखें मींचीं और कोई पाँच क्षण बन्द

रखीं। आँखें खोलते ही जुगलकिशोर उन्हें सामने दिखाई दिया। इस नापसन्द पुरुष को देखकर विहारीलाल ने पूछा—क्यों? क्या है?

'नाथबाबा आये हैं। मुझे रास्ते में मिल गये। इसलिए मुझे गाड़ी में बैठा लिया और आपको खबर कर देने के लिए कहा।'

'तुम कहाँ से पहचानते हो?' विहारीलाल ने पूछा।

'मेरा बहुत पुराना सम्बन्ध है। पर आप कहाँ से जानें? वे कभी शहर नहीं आते।'

'मैंने भी उन्हें देखा नहीं। मैं जब ज़मीन लेने गया तब उनकी तरफ़ से ज़मीन रखने कई मनुष्य आये थे। फिर उन्होंने मुझे पत्र लिखा था।'

'आपको कुछ योग सीखने की इच्छा है, ऐसा बाबाजी कहते थे।'

'उन्होंने एक पुस्तक भेजी थी। वह मुझे पसन्द आई, इसलिए मैंने सहज इच्छा की थी। बुलाओ उन्हें।'

जुगलकिशोर बाहर गया। कम्पाउण्ड के बाहर एक बन्द मोटर खड़ी थी। जुगलकिशोर ने दरवाज़ा खोला और उसने पैर छुए। खिड़की से यह देखकर सर विहारीलाल आकर अपनी कुर्सी पर बैठ गये। नाथबाबा अन्दर से उतरा नहीं, इसलिए जुगलकिशोर मोटर में अन्दर गया। पाँच-सात मिनट बाद नाथबाबा मोटर से उतरा और खड़ाऊँ पर खटाखट करता सर विहारीलाल के बँगले में दाखिल हुआ। दूर से साधु को आता देख विहारीलाल सभ्यता के नाते खड़े हो गये और दरवाज़े तक गये। साधु का मुख झुका था। विहारीलाल ने नमस्कार किया, इसलिए आशीर्वाद देने के ढँग से नाथबाबा ने अपना एक हाथ पसारा और उनके सामने देखा। भूत को देखकर जैसे मनुष्य चौंकता है, वैसे ही विहारीलाल चौंके और बोल उठे—रश्मि?

'हाँ, तुम्हारी प्रेतावाहन-विद्या सफल हुई। रश्मि का भूत तुम्हारे सामने ही है।' नाथबाबा ने कहा।

सर विहारीलाल ज़रा स्थिर हुए और बोले—'आओ, बैठो यहाँ पर।' कहकर नाथबाबा को पास पड़ी कुर्सी पर बैठाया।

'अभी तुम्हें मालूम नहीं हुआ कि मैं रश्मि हूँ कि नहीं?' अपनी तरफ़ स्थिरता से देखते विहारीलाल से नाथबाबा ने कहा।

'नहीं, किस तरह ठीक लगेगा? बीस वर्ष से तुम गुम रहे। तुम्हारा कुछ भी नहीं।'

'तुम सब लोगों के बीच में ही घूमता-फिरता था। तुमने मुझे पहचाना नहीं।'

'तो तुम क्यों प्रकट नहीं हुए?'

'मैं क्यों गुम हुआ था, यह सुना है?'

'अपनी मूर्खता के कारण।'

'इसी मूर्खता ने मुझे अब तक गुप्त रखा।'

'अब तुम बाद में प्रकट हो गये हो। कहो, अब यह मूर्खता चली गई न?'

'अब आज चली जायगी।'

'आज ही क्यों? इसकी मियाद रखी है क्या?' सहज हँसी में बिहारीलाल ने कहा।

'हां, आज की ही मुद्दत है। अपने प्रिय से प्रिय दो मनुष्यों की आज मैं जान लूँगा। मेरे इन दोनों हाथों में उन दोनों की जान खेलेगी, इसलिए मेरी अधिकांश मूर्खता अब दूर हो जायगी।' नाथबाबा ने भयंकर मुखाकृति करके कहा।

'ये दो मनुष्य कौन हैं?'

'बिहारी, तुम्हें खबर नहीं? बीस वर्ष बीत गये, इस बीच तुमने कुछ नहीं सुना होगा? निर्दय मनुष्य भूतकाल को मज़े में भूल जाता है। पर मैं यह सुधार देता हूँ। एक शान्ता और दूसरा तू।'

'पहले मेरी जान लेनी है या शान्ता की?'

'तुम्हारी। यह खबर शान्ता को दे दूँगा, इसलिए मरने के पहले का उसका तड़फड़ाना बड़े आनन्द से देख सकूँगा।'

'रश्मि!' सहज हँसकर बिहारीलाल ने कहा—तुझे अभी यह पता नहीं कि भूल ही भूल में तूने अपना समस्त जीवन उजाड़ डाला?

'भूल?' सर बिहारीलाल को फाड़ खाने की तैयारी करता हो, इस तरह चिल्लाकर नाथबाबा बोल उठा—आँखों देखी और कानों सुनी बात को तू भूल कहता है!

'तूने क्या आँखों से देखा, क्या कानों से सुना है!'

'मैंने देखा तुम्हारा प्रेम! कानों से जो सुना वह तो मुझसे सात जन्म तक भी नहीं छूट सकता। 'इस बालक का मुख तुम्हारे जैसा हो तो कैसा?' यह शान्ता के शब्द! क्यों तुम्हें तो बराबर याद हैं न?'

'ठीक। पर तुमने यह देखा कि इस बालक का मुख किस तरह का है?'

'क्या, वह तुम्हारे जैसा नहीं ?' ज़रा रुककर नाथबाबा ने पूछा।

'जब किसी को भ्रम होता है तब दीवाल की उपटी हुई पपड़ियों में भी अमुक मनुष्य को वह मौजूद पाता है।'

'मुझे भ्रम हुआ है ?'

'बेशक! इस भ्रम होने में तुम्हारा दोष था, मैं ऐसा नहीं कहता।'

'क्यों ?'

'मुझे शान्ता चाहती थी।'

'और तुम ?'

'शान्ता के प्रति मेरा समभाव था ; प्रेम नहीं।'

'मरने के नज़दीक आये, इसलिए बहाना सूझ रहा है, ठीक ?' तिरस्कारपूर्वक नाथबाबा ने कहा।

'रश्मि! मुझे मरने का ज़रा भी डर नहीं। मैं तुम्हारी तरह नहीं हूँ कि बात-बात में बहक जाऊँ! पत्नी पर सन्देह, मित्र पर सन्देह, सारे संसार पर सन्देह। मुझे तो मृत्यु के प्रति भी सम-भाव है। जीवन के ये अन्तिम क्षण मेरी दृष्टि में तो रसमय हैं, समझे!'

'वह रस मैं तुझे चखाता हूँ। इसके पहले मुझे दो बातें नक्की कर दे। कुसुम का मनोहर के साथ विवाह करता है कि नहीं ?'

'वह कुसुम की इच्छा की बात है। मैंने शान्तागौरी को इसका उत्तर भेज दिया है। मनोहर का मुख किस तरह का है, इसका तुम दोनों में से किसी को विश्वास हो जायगा तो उसका नतीजा निकल सकता है। शान्तागौरी मुझे चाहती थी, इसलिए उसके बालक का मुख मेरे जैसा हो, ऐसी इच्छा वह रखती थी, यह तुम जानते हो। तुम्हें तो उसका मुख मेरे जैसा है, ऐसा भ्रम है ही। ऐसे संयोगों में कुसुम मनोहर को नहीं सौंपी जा सकती। फिर कुसुम की मर्जी भी मुख्य बात है।'

'तुम क्या सोचते हो ?'

'ओ मूर्ख! मेरा सोचना तुम्हारे किस काम का ? ज़िन्दगी को बर्बाद कर भटकते फिरनेवाले तेरे जैसे पति को पत्नी मिलनी ही नहीं चाहिये थी। तुझे उसका प्रेम न मिल सका, यह तेरी ही भूल है। वह मुझे चाहती थी, इसमें मेरी भूल नहीं थी; क्या कर सकता था ?'

'तू मुझसे यह कहलाना चाहता है कि तू सदा पवित्र ही रहा है?'

'यह अभिमान मैंने कभी नहीं किया। इतना ही नहीं, पर इतनी पवित्रता मैंने अपने मित्रों और सम्बन्धियों में कभी नहीं चाही। यह बात मैं याद रखता हूँ।'

'यह मैं मानता हूँ कि दस वर्ष से तू शान्ता से मिला ही नहीं।' कुछ संकुचित होकर नाथबाबा ने कहा।

'मैं यह बात नहीं कहता। मेरा और शान्ता का सम्बन्ध कैसा था, यह तो मैं और शान्ता ही जानते हैं। मैं तो तेरी एक ही बात कहता हूँ कि भ्रम ही भ्रम में तूने मुझसे बदला लेने, मेरी पत्नी के प्रति कैसे नीच प्रयत्न किये थे? फिर भी मैंने तुझसे कुछ नहीं कहा और न अपनी पत्नी से ही कुछ कहा। वह तो पवित्र थी ही। पर मैं इतना नीच उदार नहीं था।'

चौंककर नाथबाबा ने कहा—तू जानता था?

'खैर, यह बात जाने दे। दूसरी क्या बात करनी है?'

'मेरी सारी जायदाद मुझे वापस सौंप दे। मेरे पैसों से तू इतना धनी हुआ है।'

'यह बात ठीक है। पर तेरी जायदाद में से मैंने एक भी पाई न ली।'

'फिर किसे दी?'

'शान्तागौरी और तेरे वारिस को। जितनी रकम मैंने तेरे पास से ली थी, वह सभी ब्याज के साथ दे दी इतना ही नहीं, पर तू न सोच सके, इतना और धन मनोहर के लिए अब उसमें से पैदा होता रहता है।'

'मैं उन लोगों को दी गई सम्पत्ति को नहीं जानता। बल्कि मैं तो तेरी सभी मिल्कियत को अपनी मानता हूँ।'

'तेरा वेदान्त मैं नहीं समझा।'

'मेरी सम्पत्ति नहीं होती तो तू कहाँ से इतनी पैदा कर लेता? जो इस समय है, उसकी पूँजी तो मेरी ही सम्पत्ति थी न?'

बिहारीलाल विचार में पड़े। मित्र की थोड़ी-बहुत रकम लेकर व्यापार की शुरूआत कर उसमें से वह आज लखपती की स्थिति में पहुँच गये थे। यह सारा क्रम उनकी दृष्टि के सामने आ गया। वह अपनी बुद्धि से दूसरे तरीके से भी इतनी सम्पत्ति पा सकते थे, ऐसी उन्होंने कोई दलील नहीं की, और कहा—मंजूर है। तेरी सारी

मिल्कियत तुझे वापस सौंपता हूँ। मुझे ग़रीबी का डर नहीं और यदि तू मुझे ज़िन्दा रखेगा तो मेरी मामूली गुज़र हो ही जायगी।

'यों नहीं। लिखकर दे!'

'किस तरह ? दान-पत्र ? या विक्रय-पत्र ?'

'सारा धन दान कर दे, बस।'

'बहुत अच्छा, मिल्कियत के अधिकांश भाग का लिखा हुआ काग़ज़ यह है। अब कुसुम के लिए रखी मिल्कियत भी दे दूँ।' कहकर खड़े हो मेज के एक खाने में से उसने दस्तावेज निकाली और नाथबाबा के हाथ में रखकर कहा--तेरे लिए ग़रीब बनने में मुझे देर न लगेगी। अब बोल, तेरे लिए मरने को भी तैयार हूँ। यदि इससे तुझे सुख पहुँचे तो अपने प्राणों की कीमत नहीं गिनूँगा।

नाथबाबा खड़ा हो गया। उसके मुख से क्रोध झलकने लगा। वह बोला—ठीक, तू यह समझता है कि मुझ पर उपकार कर रहा है। तुझे एक ही आघात से नहीं मारूँगा। धीरे-धीरे कष्ट दे-देकर मारूँगा।

इतना कहकर वह दरवाज़े की तरफ़ जाने लगा। सर बिहारीलाल पीछे-पीछे गये और नाथबाबा का हाथ पकड़कर बोले—रश्मि, रश्मि! तू ज़रा उदार हो। किस लिए दुखी होता है ?

'मैं दुखी हुआ हूँ और तुम सबको, सारी दुनिया को दुखी देखने का प्रयत्न करता हूँ।'

'उदारता की एक बूँद कड़े रोगों का इलाज है, समझे!'

'उदारता ? नामर्द का बल और कमज़ोर की हिम्मत है। मुझे नहीं चाहिये।' यह कह वह हाथ खींच तेज़ी से आगे बढ़ गया। लबादे में से खन-खन आवाज़ करती एक तलवार पत्थर पर पड़ी और उसके दो टुकड़े हो गये। नाथबाबा ने उसे उठा लिया और बाहर चला गया।

वह मोटर में बैठ गया। पर जब मोटर चलने को हुई तब उसमें केवल जुगल-किशोर ही बैठा दिखलाई दिया। सर बिहारीलाल को यह कई वर्षों में मिला विचित्र मित्र, कहां गुम हो गया था यह समझ न पड़ा। महा प्रयत्न से छिपाया गया भूतकाल आज प्रत्यक्ष हुआ।

... को कुसुम तीनों आगन्तुकों के साथ वापस हुई। उसके साथ ज्यादा बातें

करने की किसी की इच्छा नहीं थी। केवल सर विहारीलाल ने मनोहर को बार-बार देखा। उसे बुलाकर बातें भी कीं और जब वह चला गया तब बिहारीलाल बोले— रश्मि की तरह ही मुख और लक्षण हैं।

'भाई! रश्मि कौन? मनोहर का पिता रश्मिकान्त तो नहीं?' कुसुम ने पूछा।

'हाँ, वही। मेरा खास मित्र था। उसी के कारण यह सारा धन हमें मिला।'

'यह किस तरह?'

'किसी दिन बतलाऊँगा। पर कुसुम, आज तेरी जन्म-तिथि के ही दिन तुझे पसन्द न आनेवाली एक बात कहूँ?'

'क्या बात है?'

'मनोहर के साथ यदि तेरा विवाह न होगा तो रश्मिकान्त की सहायता से इकट्ठी हुई यह सारी सम्पत्ति धर्मादा कर डालने की शर्त है। अब तू क्या पसन्द करती है?'

'जायदाद धर्मादा कर डालिये। मेरी ग़रीब होने की तबियत हुई है।'

'कारण?'

'यों ही!' उसे रमेश याद आया। स्वाभाविक बातचीत में उसने रमेश से कहा था—'यदि मैं तुम्हारी तरह ग़रीब होऊँ तो?' यह प्रसंग वह भूली न थी।

'तब तो हमें सचमुच ग़रीब होना पड़ेगा, समझी!' सर बिहारीलाल ने दबाव डालते हुए कहा।

'नुकसान क्या है? आप कहते थे न कि मेरी माँ ग़रीबी में रही थी। फिर भी वह सुखी थी। फिर मैं भी क्यों न वैसी होऊँ?'

सर विहारीलाल कुछ बोले नहीं। वे विशेष चिन्तित मालूम होते थे। कुसुम भी थकी हुई थी। फिर ग़रीब बनने के रमणीय स्वप्न देखने की भी उसकी वृत्ति हो गई थी। दोनों ही आज जल्दी सो गये। सोने के कमरे में एक कपड़े का पर्दा दोनों के बीच में रहता था।

दस-सवा दस बजे का समय होगा; उस समय विहारीलाल को धुआँ फैलता मालूम हुआ। कहीं लैम्प तो तेज़ नहीं जल रहा, यह सोच उन्होंने लैम्प की तरफ़ देखा। पर वह उस रोज़ काफ़ी धुँधला जल रहा था। वह फिर सो गये, पर उनसे सोते नहीं बना। धुएँ से उन्हें घबराहट हुई। परदे के पीछे कुसुम भी जागती थी। उसने कहा—भाई, इतना ज़्यादा धुआँ कहाँ से आ रहा है?

मिल्कियत तुझे वापस सौंपता हूँ। मुझे ग़रीबी का डर नहीं और यदि तू मुझे ज़िन्दा रखेगा तो मेरी मामूली गुज़र हो ही जायगी।

'यों नहीं। लिखकर दे!'

'किस तरह? दान-पत्र? या विक्रय-पत्र?'

'सारा धन दान कर दे, बस।'

'बहुत अच्छा, मिल्कियत के अधिकांश भाग का लिखा हुआ काग़ज़ यह है। अब कुसुम के लिए रखी मिल्कियत भी दे दूँ।' कहकर खड़े हो मेज के एक खाने में से उसने दस्तावेज निकाली और नाथबाबा के हाथ में रखकर कहा-- तेरे लिए ग़रीब बनने में मुझे देर न लगेगी। अब बोल, तेरे लिए मरने को भी तैयार हूँ। यदि इससे तुझे सुख पहुँचे तो अपने प्राणों की कीमत नहीं गिनूँगा।

नाथबाबा खड़ा हो गया। उसके मुख से क्रोध झलकने लगा। वह बोला—ठीक, तू यह समझता है कि मुझ पर उपकार कर रहा है। तुझे एक ही आघात से नहीं मारूँगा। धीरे-धीरे कष्ट दे-देकर मारूँगा।

इतना कहकर वह दरवाज़े की तरफ़ जाने लगा। सर बिहारीलाल पीछे-पीछे गये और नाथबाबा का हाथ पकड़कर बोले—रश्मि, रश्मि! तू ज़रा उदार हो। किस लिए दुखी होता है?

'मैं दुखी हुआ हूँ और तुम सबको, सारी दुनिया को दुखी देखने का प्रयत्न करता हूँ।'

'उदारता की एक बूँद कई रोगों का इलाज है, समझे!'

'उदारता? नामर्द का बल और कमज़ोर की हिम्मत है। मुझे नहीं चाहिये।' यह कह वह हाथ खींच तेज़ी से आगे बढ़ गया। लबादे में से खन-खन आवाज़ करती एक तलवार पत्थर पर पड़ी और उसके दो टुकड़े हो गये। नाथबाबा ने उसे उठा लिया और बाहर चला गया।

वह मोटर में बैठ गया। पर जब मोटर चलने को हुई तब उसमें केवल जुगलकिशोर ही बैठा दिखलाई दिया। सर बिहारीलाल को यह कई वर्षों में मिला विचित्र मित्र, कहाँ गुम हो गया था यह समझ न पड़ा। महा प्रयत्न से छिपाया गया भूतकाल आज प्रत्यक्ष हुआ।

शाम को कुसुम तीनों आगन्तुकों के साथ वापस हुई। उसके साथ ज्यादा बातें

करने की किसी की इच्छा नहीं थी। केवल सर विहारीलाल ने मनोहर को बार-बार देखा। उसे बुलाकर बातें भी कीं और जब वह चला गया तब बिहारीलाल बोले—रश्मि की तरह ही मुख और लक्षण हैं।

'भाई! रश्मि कौन? मनोहर का पिता रश्मिकान्त तो नहीं?' कुसुम ने पूछा।

'हाँ, वही। मेरा खास मित्र था। उसी के कारण यह सारा धन हमें मिला।'

'यह किस तरह?'

'किसी दिन बतलाऊँगा। पर कुसुम, आज तेरी जन्म-तिथि के ही दिन तुझे पसन्द न आनेवाली एक बात कहूँ?'

'क्या बात है?'

'मनोहर के साथ यदि तेरा विवाह न होगा तो रश्मिकान्त की सहायता से इकट्ठी हुई यह सारी सम्पत्ति धर्मादा कर डालने की शर्त है। अब तू क्या पसन्द करती है?'

'जायदाद धर्मादा कर डालिये। मेरी गरीब होने की तबियत हुई है।'

'कारण?'

'यों ही!' उसे रमेश याद आया। स्वाभाविक बातचीत में उसने रमेश से कहा था—'यदि मैं तुम्हारी तरह गरीब होऊँ तो?' यह प्रसंग वह भूली न थी।

'तब तो हमें सचमुच गरीब होना पड़ेगा, समझी!' सर बिहारीलाल ने दबाव डालते हुए कहा।

'नुक्सान क्या है? आप कहते थे न कि मेरी माँ गरीबी में रही थी। फिर भी वह सुखी थी। फिर मैं भी क्यों न वैसी होऊँ?'

सर बिहारीलाल कुछ बोले नहीं। वे विशेष चिन्तित मालूम होते थे। कुसुम भी थकी हुई थी। फिर गरीब बनने के रमणीय स्वप्न देखने की भी उसकी वृत्ति हो गई थी। दोनों ही आज जल्दी सो गये। सोने के कमरे में एक कपड़े का पर्दा दोनों के बीच में रहता था।

दस-सवा दस बजे का समय होगा; उस समय बिहारीलाल को धुआँ फैलता मालूम हुआ। कहीं लैम्प तो तेज़ नहीं जल रहा, यह सोच उन्होंने लैम्प की तरफ़ देखा। पर वह उस रोज़ काफ़ी धुँधला जल रहा था। वह फिर सो गये, पर उनसे सोते नहीं बना। धुएँ से उन्हें घबराहट हुई। परदे के पीछे कुसुम भी जागती थी। उसने कहा—भाई, इतना ज्यादा धुआँ कहाँ से आ रहा है?

देखते-देखते कमरे में धुएँ की अधिकता हो गई। विहारीलाल और कुसुम दोनों उठकर दरवाज़ा खोलने लगे। दरवाज़ा बाहर से बन्द था। विहारीलाल को शंका हुई कि नाथबाबा ने मकान में आग लगा दी। दूसरा दरवाज़ा खोलने गये। वहाँ भी धुआं भरा था और दरवाज़ा बन्द था। फिर दूसरी दो-तीन खिड़कियों में से आग दिखाई देने लगी। ऊपर देखा, नीचे देखा, पर एक भी रास्ता बाहर निकलने का नहीं रहा था।

'कुसुम, किसी ने मकान में आग लगा दी है!'

'मज़दूर होंगे। कोई कह रहा था कि जुगलकिशोर ने मज़दूरों को यह सलाह दी थी।'

'निकलने का रास्ता नहीं।'

'भाई, आप कहीं से निकल जाओ!'

'तुझे छोड़कर? और वह भी कहाँ से?'

'भाई, क्या करूँ?' धुएँ से घबराती हुई कुसुम बोली।

स्थिर बुद्धिवाले विहारीलाल भी कुछ व्याकुल हो गये। उन्हें अपने से अधिक कुसुम की चिन्ता थी। शान्ति-पूर्वक उन्होंने कुसुम से कहा—बेटी! इधर आओ! घबराती तो नहीं?

'नहीं। पर बाहर कोई बोलता क्यों नहीं? मैं आवाज़ दूँ?' कहकर कुसुम ने आवाज़ दी। कुछ मनुष्य बाहर से बोलते मालूम हुए। पर किसी से निकलने का एक भी रास्ता न खुल सका। धुएँ में से ज्वालाएँ निकलने लगीं। आग केवल एक ही हिस्से में थी और वह भी बहुत अधिक नहीं कही जा सकती थी। पर ऐसी होश्यारी से आग लगाई गई थी कि न अन्दर से बाहर जाया जा सकता था और न बाहर से अन्दर आया जा सकता था। कुसुम को पकड़कर विहारीलाल गिरते-पड़ते दरवाजे पर धक्के लगाने लगे। एक-दो बार वे गिर भी पड़े। आखिर निराश होकर बैठ गये। दोनों को आधा होश रहा होगा। मौत पास दिखलाई दी। सबके सिर पर मृत्यु की तलवार लटकती तो है ही, परन्तु यह तलवार जहाँ तनती दिखलाई दे, वहाँ होश में रहना सभी को शक्य नहीं है। विहारीलाल चाहे जिस तरह मर सकते थे, पर कुसुम को अपने पास रखने पर भी उसे जलकर खाक हो जाते देखना भारी से भारी दुःख था।

'ठीक, उसे तड़पा-तड़पाकर मारना है।' विहारीलाल बोले। कमरे की ऊँचाई के हिस्से में हवा आने की खिड़की उघड़ी और उसमें से एक कपड़ा डालकर

एक मनुष्य तेज़ी से नीचे उतर आया। उसी हवा आने की खिड़की में से टार्च का प्रकाश दिखलाई दिया। इस प्रकाश द्वारा धुएँ से दम घुटते, तड़पते दो मनुष्य उसकी नज़र पड़े। आनेवाला मनुष्य एकदम उनकी तरफ़ बढ़ा, और दोनों में से एक व्यक्ति को झकझोरा।

'कौन है?' कुसुम ने पूछा।

'मैं हूँ रमेश। चलो, चलो। देर न करो।'

'कहाँ?'

'मैं तुम्हें बाहर ले जाऊँगा।'

'मैं अकेली नहीं जाऊँगी। पहले भाई को ले जाओ।'

'कुसुम' देर न कर। मैं तेरे साथ ही हूँ।' कहकर बिहारीलाल भी खड़े होकर रमेश के पीछे घिसटने लगे। रमेश लटकते कपड़े के पास आया कि ऊपर से बत्ती बतानेवाले मनुष्य ने पूछा—मैं उतरता हूँ। क्या बत्ती की ज़रूरत है!

'जी नहीं।' रमेश ने कहा।

रोशनदान में से बाहर की तरफ़ वह उतर पड़ा। धुएँ की लपटों में रमेश ने कहा—कुसुम बहिन, यह कपड़ा पकड़कर ऊपर चढ़ जाओ।

कोई दूसरा दिन होता तो इस तरह चढ़ने की कुसुम अवश्य हिम्मत करती। किन्तु अर्ध-मूर्च्छा में प्रयत्न करने पर उससे एक हाथ भी ऊपर नहीं चढ़ा गया। सोचने का ज़रा भी समय न था। कुसुम के बाथरूम में टँगा कपड़ा खींच, दोनों हाथों में कपड़ा लटका, उसकी खोई बनाकर उस पर उसने कुसुम को बैठा दिया। केवल दो हाथों के बल से अपना और कुसुम का बोझ लेकर वह ऊपर चढ़ गया। पृथ्वीराज के समय के पुरुष स्त्री को सरलता से उठाने का सामर्थ्य रखते होंगे, किन्तु कुसुम की तरह हृष्ट-पुष्ट, ऊँची और पूर्ण युवती को इस तरह लेकर चढ़ते रमेश को अत्यन्त मेहनत और बहुत दिक़्क़त हुई। ऊपर खिड़की के पास वह पहुँचा। दूसरी तरफ़ भी कपड़ा बँधा था। पाँच-छ मनुष्य सामने से उसे लेने हाथ ऊँचे किये हुए थे। कुसुम के साथ ही वह कपड़े द्वारा उतरा और बाहर के बरामदे में कुसुम को सकुशल उतार दिया। बड़ी कोशिश से सर बिहारीलाल भी उसी कपड़े के ऊपर से चढ़कर बाहर निकल आये।

बाहर निकलते ही कुसुम बोल उठी—रमेश, मैं अब अमीर नहीं रही समझे!

तुम्हारी तरह ही ग़रीब हूँ। इतना कहकर वह मूर्च्छित हो गई। रमेश को कुछ समझ न पड़ा। सबने कुसुम और बिहारीलाल को पास के खंड में ले जाकर सुलाया। बिहारीलाल के पैर झुलस गये थे। आग आगे न बढ़ने पाये, इसका खूब प्रयत्न किया गया। बाहर से मनुष्य भी अन्दर घुस गये और पानी से आग बुझा दी गई। और आग फिर कमरे से आगे नहीं बढ़ पाई।

पुलिस-कर्मचारियों ने चोरी पकड़ने का काम बन्द रख आग में दोनों मनुष्यों को जलने से बचाने में रमेश को पूरी-पूरी सहायता दी। चोर को पकड़ने दौड़े आनेवाले अधिकारियों को खबर लगी कि सोते हुए पिता-पुत्री के कमरे के आस-पास आग लगी हुई है। बाहर निकलने के लिए कोई सरल रास्ता न था। अफ़सर की अनुभवी दृष्टि ऊपर की खिड़की पर पड़ी। वह तुरन्त ऊपर चढ़ गया और उसने चार-पाँच नौकरों के साफे लेकर दोनों तरफ बाँध दिये। रमेश भी उनके पीछे ही था। धुएँ में उतरने से अफ़सर को रोककर रमेश ने खुद ही कमरे में उतरना पसन्द किया। मनुष्य के तौर पर कर्त्तव्य बजाने के उपरान्त रमेश को अपने मालिक का कुटुम्ब बचाना था। अफ़सर ने उसे कमरे के अन्दर नीचे उतारा और टार्च की रोशनी से ऊपर चढ़ने का मार्ग साफ़ कर दिया।

रात ही रात में डाक्टर को बुलाकर दोनों का इलाज कराया गया। जगदीश को बचाने जी-तोड़ कोशिश करते रमेश को उसका ख्याल छोड़ देना पड़ा। सारी रात वह उपचार में ही रहा। बिहारीलाल सो रहे थे, कुसुम को देखने से भी यह मालूम नहीं होता था कि उसे पूरा होश है। उसे केवल इतना ज्ञान था कि जब वह जगती तब अपने पास बैठे रमेश को देखकर मुस्कराकर कहती—अब क्या है? मैं ग़रीब हो गई न?

रमेश यह न समझता और उसकी आँखों पर हाथ रखकर उसे सुला देता। रमेश के हाथ पर हाथ रख कुसुम फिर हँसती हुई सो जाती। रमेश सोचने लगा कि कुसुम को किसका भ्रम है?

सबेरा होने के पहले ही उठकर वह जगदीश के घर गया। उसके घर में ताला लगा था। पास के मकान में विजया सोच में खड़ी थी। उससे पूछने पर पता चला कि कोकिला तो स्टेशन चली गई है। गाड़ी छूटने को अधिक देर न थी। वह दौड़ा जैसे ही प्लेटफार्म पर पहुँचा, उसी समय ट्रेन रवाना हुई। दूर से कोकिला को

देखकर वह चलती ट्रेन में बिना टिकट चढ़ गया और कोकिला से वापस चलने के लिए आग्रह करने लगा। कोकिला ने उसका आग्रह न माना। इसलिए रमेश निराश हृदय से अगले स्टेशन से वापस लौट आया।

वापस लौटने पर वह सर बिहारीलाल के बँगले पर गया। सर बिहारीलाल की खबर पूछी। वे किसी काम में व्यस्त थे। कुसुम जागती हुई पड़ी थी। उसकी आँखें किसी को खोज रही थीं। रमेश को देखकर वह उठकर बैठ गई और बोली—तुम कहाँ गये थे ? मेरे पास बैठो न।

रमेश को समझ न पड़ा। उसकी पलकें तेज़ी से मुँदने-खुलने लगीं। उसने मन में सोचा कि शायद कुसुम सर बिहारीलाल को लक्ष्य कर भूल से ऐसा कहती होगी। उसने पूछा—मैं साहब को बुलाऊँ ?

'नहीं, मैं तो तुम्हें बुलाती हूँ।' कुसुम ने कहा।

इतना अधिक अपनापन प्रकट करनेवाली कुसुम ठीक-ठीक होश में है या नहीं, यह रमेश तय न कर सका। वह पास तो गया, पर उसके मुख पर घबराहट थी।

'यहीं बैठ जाओ।' कुसुम ने अपने पलंग के पास पड़ी कुर्सी पर उसे बैठाया। उसके मुख पर की घबराहट देखकर कुसुम हँसी और बोली—कल आग में उतरते हुए डर न लगा और इस समय डर लग रहा है ?

इतना कह उसने रमेश का हाथ पकड़ लिया और अपने सिर पर रख लिया। रमेश का हृदय धड़कने लगा। स्वस्थ मनुष्य की सार-सम्हाल सब कर सकते हैं, पर यह तो जुदी ही बात थी। रमेश से समझा न जा सके, ऐसा न था। उसे कुसुम का साहस भयंकर लगा और हृदय में होती धड़कन उसने ही नहीं, किन्तु कुसुम ने भी सुनी। रमेश ने बिना अर्थ का प्रश्न जैसे-तैसे साहस कर पूछा—अब आप कैसी हैं ?

कई संयोगों में शिष्टता हास्य-जनक लगती है। कुसुम की आँखों में यह हास्य चमक उठा। उसने उत्तर दिया—इस समय बहुत अच्छी हूँ। और आप कैसे हैं ?

रमेश को याद आया कि 'आप' शब्द पर कुसुम की टीका होती थी। उसने पूछा—मुझे क्या हुआ है ?

'कल मुझे लेकर ऊपर चढ़े, इससे वज़न न लगा होगा ?'

'नहीं, नहीं, इसमें क्या ?' जोश में रमेश को वज़न न लगा हो, ऐसा तो नहीं कहा जा सकता, पर इसकी उसने परवा नहीं की थी। इसलिए उसने कहा।

'तो फिर धनवान की लड़की सदा भारी होती है, ऐसा क्यों कहा जाता है?' कुसुम ने पूछा।

रमेश ने इस सूचना का मर्म समझा। पर उसे कोई उत्तर नहीं सूझा। इसलिए उसने कहा—ऐसा मैं कहाँ कहता हूँ?

'ऐसा नहीं कहा तो तुम्हारे मन में तो है ही। कहो—होना चाहिये।'

'कुसुमगौरी, अभी नर्स आयेगी तो मुझसे लड़ेगी कि इससे क्यों बातें करवाईं।'

'मुझे तुम्हारे साथ बातें करना बहुत अच्छा लगता है। मेरे प्राण बचानेवाला मेरे पास से हट जाय तो मुझे कैसे आराम होगा?'

'तो मैं बैठा हूँ। पर अब तुम बात न करो!'

'इस तरह मरे हुए की तरह तो नहीं पड़ा रहा जा सकता। भाई तुम्हें उपहार देनेवाले हैं। तुम क्या मांगोगे?'

'मैं तो कुछ भी नहीं माँगूँगा। मुझे भेंट चाहिये ही नहीं।'

'पर मुझे देनी हो तो! कहो, कैसा मन है?'

'आप कृपा कर सो जाइये!'

'नहीं, जब तक तुम भेंट के लिए मना करोगे तब तक मुझसे सोया नहीं जायगा।'

'अच्छा, जो दोगी, वह ले लूँगा, पर अब तुम एकदम आराम लो!'

'वाह कैसे समझदार हो! अब मैं जो दूँ, वह ले लेना, अब मैं खूब आराम करूँगी। मुझे अब बोलवाना मत!'

पास बैठने और रुकने की अपेक्षा भेंट देने की बात कम जोखिम भरी थी। रमेश को घबराहट कुछ कम हुई। उसने सोचा कि कोई पुस्तक या अपना फोटो कुसुम भेंट-स्वरूप देगी।

'तुम जल्दी स्वस्थ हो जाओ! फिर मैं अपनी भेंट ले लूँगा।'

'नहीं, मुझे तो अभी देनी है।'

'ऐसी नासमझी की बात न करो! अभी तुम्हें उठने को डाक्टर ने मना कर दिया है।'

'बिना उठे ही यदि दूँ तो?'

'तुम तो बिल्कुल नहीं सुनतीं और बोलती ही जाती हो! बिस्तर में सोते-सोते क्या कुछ दिया जा सकता है?'

कुसुम ने तकिये के नीचे हाथ डाला ; और मुट्ठी बन्द कर हाथ बाहर निकाला ; मानो मुट्ठी में की कोई वस्तु देनी हो, ऐसा भाव प्रकट करके कहा—लो !

रमेश ने हाथ बढ़ाया। कुसुम ने मुट्ठी खोल दी। मुट्ठी में कुछ भी नहीं था। रमेश को उस समय तो मज़ाक मालूम हुआ ; किन्तु कुसुम ने उसका बढ़ा हुआ हाथ पकड़ लिया, और दूसरे हाथ की उँगली में से अपनी अँगूठी निकालकर आश्चर्य-चकित रमेश की उँगली में पहना दी···रमेश ने फौरन हाथ खींच लिया ; और धड़कते हृदय से कहने लगा—कुसुमगौरी, यह क्या ? इसका क्या मतलब ?'

'इसका मतलब जो होता है वह। नहीं आता हो तो डिक्शनरी में देख लो न ! अब मत बोलना ! मुझे आराम लेने दो !'

कुसुम ने रमेश की तरफ़ अर्थ भरी दृष्टि डाली और फिर आँखें मूँद लीं। फिर प्राणलाल, बिहारीलाल और एक परिचारिका ने अन्दर प्रवेश किया।

'तुम कबके आये हो ?' बहुत धीरे से बिहारीलाल ने पूछा। आश्चर्य में लीन रमेश अँगूठीवाला हाथ छिपाकर खड़ा हो गया और बोला—जी, थोड़ी देर हुई।

'बहिन सोती है न ?'

'जी हाँ !'

'तो हम अब पास के कमरे में बैठ जायें। यह बाई इसके पास बैठेगी।'

रमेश सबके साथ कमरे में से बाहर हुआ, पर उसे ऐसा लगा कि मानो वह अपना हृदय उस कमरे में ही छोड़ गया है।

(२२)

जगदीश को मातृभूमि मिली और वहीं से वह सचमुच भूमि-भक्त हो गया। ओमकारिया की ऊजड़ जगह में एक पुराना शिवालय था। इस शिवालय में नाथबाबा कई वर्षों से रहता आया था। नाथबाबा की सिद्धि के प्रताप से धीरे-धीरे इस शिवालय के पास एक बड़ी धर्मशाला और आश्रम बन गया था। ज़मीन का अधिकांश भाग बाबा की देख-रेख में आबाद हुआ। मन्दिर के आसपास एक अच्छा बगीचा भी बनवाया गया था। किसान और मज़दूरों के झोपड़े अलग-अलग जगह बिखरे हुए थे। शिवालय के पीछे एक छोटी-सी मढ़ी थी, उसमें कभी-कभी नाथबाबा समाधि लगाकर बैठता था, ऐसा लोग कहते थे। नाथबाबा जब समाधि में होता, उस समय तक मढ़ी के पास कोई जाता नहीं था। जाता तो उसे नाथबाबा का डर रहता था।

तलवार लेकर भूत-प्रेत या राक्षस जैसी आकृतियाँ मढ़ी की रक्षा किया करती हैं, ऐसा सभी समझते थे। ऐसी आकृतियाँ देखने का ख्याल कई लोगों को था। कभी-कभी नाथबाबा लोप हो जाते थे, ऐसा भी उनके भक्त कहते थे।

उनके भक्तों में केवल ग्रामीण ही हों, ऐसा नहीं था। उनकी ख्याति शहरों में भी पहुँच चुकी थी। और कई अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे लोग भी वचनामृत का पान करने कभी-कभी ओमकारिया आते थे। नाथबाबा का क्रोध और विचित्रता सब सहन कर लेते थे। कारण, कई बार वह अपने भक्तों पर अद्भुत असर डालता था। महा मुश्किल से मिलता नाथबाबा कभी-कभी ओजपूर्ण अँग्रेज़ी भाषा में ऐसा सुन्दर भाषण करता कि अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे नास्तिक भी मुँह में उँगली डालते। नाथबाबा को ज़रा भी पक्षपात नहीं था। जैसे धार्मिक और मुमुक्षु पुरुष उसके प्रति पूज्य-भाव रखते, वैसे ही पापी और गुनेहगार भी उसके प्रति श्रद्धा-भाव रखते थे और ज़रूरत पड़ने पर उसके आश्रित होते थे। सरकारी अफ़सर और पुलिस के लोग भी नाथबाबा का आतिथ्य कई बार स्वीकार करते थे। पवित्र, भयंकर और गूढ़ वातावरण में छिपे किसी मस्त अवधूत की तरह नाथबाबा की प्रतिष्ठा थी।

जगदीश पर उसने बहुत ममता प्रकट की। जगदीश को इस जगह का एकान्त और गम्भीर सौन्दर्य पसन्द आ गया था। मातृभूमि की मूर्ति उसकी दृष्टि के सामने प्रत्यक्ष रहती थी। एक जगह हरी-हरी घास, दूसरी जगह सुन्दर फूलों के पुञ्ज, तीसरी जगह छायादार वृक्ष, चौथी जगह मोर, हिरन और मनुष्य को घूमने-फिरने लायक विशाल मैदान; और पाँचवीं जगह धूप और वर्षा से बचने के लिए छोटे-छोटे एक मञ्जिले घर और झोपड़े—सब धरती-माता ही देती थी। सवेरे जल्दी उठकर जगदीश फूल चुनता, क्यारियों को सँभालता, नई क्यारियाँ तैयार करता, और वेलों को गूँथता; कई बार चरस खींचना सीखता, हल चलाने का अनुभव प्राप्त करता, घास की गठरी बाँधता या फावड़ा लेकर पानी के प्रवाह को बाँधता और ठीक करता था। वह सोचता कि ऐसे मनोरंजक कार्यों को छोड़कर सभी क्यों कुर्सी या गादी पर बैठना चाहते हैं!

भूमि के सम्पर्क में रहनेवाले मनुष्य जड़ बन जाते हैं, ऐसा शहर में रहनेवालों का तिरस्कारपूर्ण कहना है। सबूत में वे अपने किसानों को आगे करते हैं। क्या ज़मीन से सम्पर्क रखनेवाले मनुष्य जड़ और मलीन बने रहें? पुष्प उत्पन्न करनेवाली पृथ्वी

मनुष्यों को म्लान या अरसिक रखे, यह जगदीश को असम्भव लगा। सूर्य-चन्द्र और तारों के छत्र के नीचे रहनेवाले मनुष्य, कंजूसी भरी दीवारों के पीछे छिपे रहनेवाले शहरियों की अपेक्षा क्यों अधिक अज्ञानी रहते हैं, इसका कारण खोजने में उसकी बुद्धि उलझ गई। वृक्ष-वृक्ष में कूकती कोयल की आवाज़ सुनकर, खेत खेत में मोरों के रंगीन नृत्य देखकर और ओस के असंख्य चमकते मोतियों से आच्छादित भूमि पर घूमते किसान जीवन का सुख भोगने के बजाय बेढंगे शहरों को तरफ़ नज़र फेरते थे, इसका अन्वेषण करने में जगदीश की दिलचस्पी बढ़ी। उसे ऐसा लगा कि बुद्धि को शहर की हाट में उसकी कीमत घटाकर नीलाम करने की अपेक्षा उसे गाँव-गाँव बेच डाला होता तो यह व्यर्थ खर्च न हो सकती थी।

एक नया वृक्ष बोने गढ़हा कर उसमें उसे रोपकर और उसके आस-पास बाड़ लगाते वह ऐसे विचार कर रहा था ; इतने में एक मनुष्य उसके पास आकर कहने लगा—तुम्हें पिताजी बुला रहे हैं।

'पिताजी आ गये ? कहना, इतनी-सी बाड़ लगाकर अभी आता हूँ।'

'अभी बुलाया है। ज़रूरी काम है।'

ज़रा हिचकिचाते हुए वह अपना काम छोड़कर मकान चला आया। मकान में उसने जुगलकिशोर को बैठा देखा। अचानक उसे देखकर वह आश्चर्य से खड़ा रहा।

'तुम यहाँ कहाँ से ?'

'तुम्हारे ही पीछे तुम्हें खोजता हुआ आया हूँ !'

'तुम्हें कैसे पता कि मैं यहाँ हूँ ?'

'मुझे खबर न पड़े, ऐसा तो कभी हो नहीं सकता।' ज़रा टोन से जुगलकिशोर ने कहा—मैं तुम्हें एक खुशखबरी सुनाने आया हूँ।

'हाँ, हाँ, तुम तो नाथबाबा को जानते हो। उन्होंने कहा होगा।'

'नाथबाबा मुझे कब मिलते हैं ?' अपनी प्रत्येक जानकारी होने की शक्ति का प्रतिकार होने से मानो वह गुस्सा हुआ हो, इस तरह उसने कहा।

'तीन दिनों से वे शहर गये हैं। उन्होंने तुमसे कहा होगा।'

'कहा होगा तेरे नाथबाबा ने। वह तो यहीं पर है।'

'नाथबाबा का तिरस्कार मत करो। वह जो चाहेंगे वह होगा, पर उन्होंने मुझे बचाया है।'

'क्या तुम्हें भाग छिपने को दूसरी जगह नहीं मिली ? तुम्हें यह न भूलना चाहिये कि तुम्हारी सिफारिश नाथबाबा से मैंने की थी। नहीं तो वह अघोरी तो ऐसा है कि तुम्हें फाड़ खाता।'

'नाथबाबा के इतिहास को तुम जान लो तो ज़रा अधिक उदार हो जाओगे।'

यह सुनकर जुगलकिशोर ज़ोर से हँस पड़ा। वह इस तरह निस्संकोच होकर बातें कर रहा था, मानो यह घर पराया नहीं है। उसका ढङ्ग ही ऐसा था। उसे कोई जगह पराई मालूम नहीं होती थी।

'तुमसे ही मुझे उसका इतिहास जानना है, ठीक ?'

'नाथबाबा आ गये हैं, और तुम इस तरह बातें करते हो। वह सुन लेंगे। अभी आते होंगे। मुझे यहाँ उन्होंने ही बुलाया है। कहो, क्या खुशखबरी लाये हो ? कोकिला से मिले थे ?' जगदीश को कोकिला की ही खुशखबर होगी, ऐसा लगा।

'जगदीश, तुझे इसका पता नहीं लगता कि मनुष्य बहुत क्रूर प्राणी है ? और वह दुःख को बहुत जल्द भूल जाता है ? मैं यही कहने आया हूँ कि तुम पर जिस दिन आरोप लगा, उसी दिन रात को कोकिला किसी के साथ भाग गई है, इसे तुम सच मानोगे ?'

'हरगिज नहीं।' जगदीश के उत्तर में निश्चय था।

'फिर कहता हूँ कि यही बात ठीक है।'

'भले ही तुम्हें हो। मुझसे यही खुशखबर कहनी थी ?'

जुगलकिशोर फिर हँसा और बोला—अब भी जैसे के तैसे नासमझ रहे। घबड़ाओ मत। तुम्हारी कोकिला नहीं भागी। वह वहीं पर है और तुम्हें उससे मिलने की आज से छूट है।

'ऐसा ? इस तरह बताओ कि मैं समझ सकूँ।'

'आज से अब तुम्हें छिपे रहने की ज़रूरत नहीं। तुम्हारे ऊपर लगा हुआ आरोप हट गया है।'

'वह किस तरह ?'

'लो, यह कल का अखबार पढ़ो।' जुगलकिशोर ने जगदीश के हाथ में 'गर्जना' की प्रति दे दी। उसमें नीचे लिखा समाचार उसने पढ़ा—

मिल की चोरी का भेद। मामला बहुत उलझ गया।

'सर बिहारीलाल की मिल में हुई पन्द्रह हज़ार रुपए की चोरी का पता लगाने की पुलीस ज़ोरों से छान-बीन कर रही थी, और भागनेवाले शकदार जगदीश को पकड़ने की तैयारी में थी; पर प्राणलाल के आफ़िस की अल्मारी में से पन्द्रह हज़ार रुपए की रकम मिल गई है। इसलिए अब यह मामला बढ़ने से रुक गया है। मेज़ की दराज में से गायब हुई रकम पास की अल्मारी में मिल गई और प्राणलाल अपनी याददास्त की भूल बताकर मामला वापस करने का प्रयत्न कर रहा है। शकदार का पक्ष लेने के लिए उसके मित्र बहुत प्रयत्न कर रहे थे। कहीं उसी का तो यह परिणाम नहीं है? चोरी की रकम के सिलसिले में बहुत-सा पैसा इधर-उधर बाँटे जाने की भी अफवाह है। प्रतिष्ठा और रिश्वत ये दोनों न्याय के विरोधी हैं। इन कारणों से गुनाह दब जायगा। गुनहगार दूसरे कसूर के लिए शिक्षा न पा सके, ऐसा नहीं होना चाहिए। जनता की यह आवाज़ क्या एक बार फिर सुनी जायगी?'

जगदीश यह पढ़कर ज़रा हँसा—जनता की आवाज़! इस आवाज़ में मैं अपनी आवाज़ भी मिलाता हूँ।

'अब तुम छूट गये। कोकिला से मिल आओ।'

'मैं अभी जाता हूँ, नाथबाबा से मिलकर।'

'जैसे मुझसे मिले वैसे ही नाथबाबा से भी मिल लिये समझो। जाओ! मैं कह दूँगा!'

'नहीं, नहीं! इस तरह बिना दर्शन किये नहीं जाया जाता। मुझे फिर वापस लौटकर यहीं आकर रहना है। महाराज कहीं मढ़ी में तो नहीं बैठे?'

'महाराज को अब सदा मढ़ी ही में रहना है।'

'तुम्हारा उन्होंने क्या बिगाड़ा है?'

जुगलकिशोर गादी पर उछला और कर्कश आवाज़ में बोला—इस हत्यारे साधु को मैं आज ज़िन्दा ही ज़मीन में गाड़ दूँगा।

जगदीश बड़े सोच विचार में पड़ा। उसने कभी जुगलकिशोर को इतना उत्तेजित होते नहीं देखा था।

'जुगलकिशोर, तुम्हारे बारे में मैंने बहुत सुना है। तुम्हें देखा है, पर अनेक रूपों में। परन्तु ऐसा क्रोध मैंने तुम्हारे मुख पर कभी नहीं देखा। तुम्हें यह अभि-

मान था कि संसार का कोई भी प्रसंग तुम्हें क्रोधित नहीं कर सकता। ठीक है न?' जगदीश बोला।

जुगलकिशोर ने शुष्कता से हँसकर उत्तर दिया—मैं तुम्हारे नाथबाबा की नकल करता हूँ। जाओ, देर होती है। घोड़ा तैयार कराओ। कोकिला यहाँ से तीन कोस के फासले पर ही है। तुम उस राधा को ले आये थे न? उसी के घर में वह रहती है।

'तुम इस तरफ़ के जानकार मालूम होते हो! तुम्हारा और नाथबाबा का क्या सम्बन्ध है?'

'तुम्हें इससे क्या मतलब?'

'शान्तागौरी के सम्बन्धी तो नहीं?'

'यह तुम्हें कैसे सन्देह हुआ?'

'महाराज पर तुम इतने अधिक गुस्सा हो, इसी से मुझे शक हुआ। महाराज ने अभी तक बतलाया क्यों नहीं?'

'तुम्हारा सन्देह ठीक है। तुम्हारे महाराज ने उस रात शान्ता पर हथियार उठाया तब मैं वहीं कमरे में ही था। यदि तुमने उस दिन महाराज का हाथ न पकड़ा होता तो मैं वहाँ खड़ा था, यह तुम देख सकते थे!'

'ऐसा? ठीक कहते हो?' अत्यन्त चकित होकर जगदीश बोला। वह बार-बार जुगलकिशोर को देखने लगा।

'अब तुम्हें कोकिला के पास जाना है या सारी दुनिया के सगे-सम्बन्धी तय करने हैं? जाओ, फिर शाम हो जायगी। घोड़ा तैयार करो!'

जगदीश गया। अकेले कमरे में से गुज़रकर वह सीढ़ी से उतर गया। जुगलकिशोर को विश्वास हो गया कि जगदीश नीचे उतर गया और कमरे में कोई नहीं है। यह नाथबाबा की बैठक का कमरा था। लोगों से मिलने और उपदेश देने के लिए यह जगह नियत की गई थी। पर उसमें बिना नाथबाबा की आज्ञा के कोई आ नहीं सकता था। इस कमरे के दोनों तरफ़ दो और बड़े-बड़े कमरे आमने-सामने थे। और इन कमरों के दरवाज़ों पर मोटे-मोटे आयने लगे हुए थे। कभी ये आपसे खुले रहते और कभी परदों से ढँक दिये जाते थे। इस तरफ़ इन दो कमरों के अति-रिक्त अगले कमरे के पीछे भी एक विशाल कमरा था। वह सदा बन्द ही रहता था।

उसमें नाथबाबा के सिवा और किसी को जाने का अधिकार नहीं था। जगदीश पर नाथबाबा को विशेष कृपा थी, परन्तु उसने भी इसमें कभी प्रवेश नहीं किया था। कांच के दरवाज़े वाले कमरे में जगदीश रहता था, फिर भी नाथबाबा से उसकी मुलाकात बाहर के ही कमरे में होती थी।

जगदीश सीढ़ियों से उतर गया, पर अन्तिम सीढ़ी पर वह खड़ा हो गया और कुछ सोचने लगा। बहुत ही धीमे पैरों से वह वापस ऊपर चढ़ आया। उसने छिप कर देखा तो नाथबाबा के गुप्त कमरे में उसे कोई जाता दिखाई दिया। यह विश्वास होने पर भी कि यह जुगलकिशोर ही होना चाहिए; उसकी जिज्ञासा बढ़ी। नाथबाबा के गुप्त कमरे में तो कोई जा नहीं सकता, फिर क्यों जुगलकिशोर को अन्दर जाना चाहिये? बाबा के सम्बन्ध में आज उसने विरुद्ध विचार प्रकट किये थे। जुगलकिशोर भी भयकंर और विश्वास न रखने योग्य मनुष्य माना जाता था। साधु को कहीं मारेगा तो नहीं?

जगदीश कमरे में घुसा। नाथबाबा के कमरे में जाने का दरवाज़ा बन्द था, पर अन्दर से जंजीर खुली हुई थी। धीरे से दरवाज़ा खोलकर वह अन्दर गया। अन्दर एक छोटी गली की तरह थी। गली की दूसरी तरफ़ पीछे दरवाज़ा था, उसमें होकर गुप्त कमरे में जाने का मार्ग होगा, ऐसा मालूम हुआ। वह इसी दरवाज़े के पीछे खड़ा हो गया और किसी तरह अन्दर क्या हो रहा है, यह देखने की कोशिश करने लगा। उसकी दृष्टि तो अन्दर न जा सकी; पर दो मनुष्यों को बातें करते उसने सुना। एक आवाज़ तो किसी स्त्री की थी और दूसरी आवाज़ जुगलकिशोर की तरह थी।

'शान्ता, तू यहाँ क्यों आई?'

'तुमसे क्षमा माँगने।'

'अच्छा किया। बिहारी ने भी मुझसे माफी चाही। इतना ही नहीं, किन्तु अपनी सारी जायदाद सार्वजनिक कार्यों में दे दी और मेरी इच्छा के अनुसार वह ग़रीब भी बन गया। इतने वर्ष तुम दोनों से बदला लेने की तरकीबों में ही बिता दिये, पर ठीक समय पर ही हृदय बदल जाता था। कोई अजीब कोमल भाव आगे आ जाता। बदला लेने की मेरी अशक्ति ने मुझे पागल बना दिया। कई मौके छोड़ते-छोड़ते आखिर तुझे घायल करने और बिहारी को जला डालने के लिए गया। इन दोनों प्रयत्नों में भी मैं असफल रहा। अब यह बात पूरी हुई। तुम दोनों ने माफी माँग

लो। इसलिए अब मुझे कुछ नहीं करना। अब संसार को मेरा डर नहीं और मुझे संसार का डर नहीं। आज मैं गायब हो जाऊँगा।'

'तुम अभी तक गायब ही तो थे! अब नये सिरे से फिर गायब रहना बाकी नहीं रहा। मुझे यही दुःख होता है कि तुमने भूल सुधारने का भी मौका नहीं दिया। मैं उदारता से तुम्हें पूजती। वहम को नष्ट करने का मेरा स्वभाव था।'

'मुझे भी अब ऐसा लगता है कि तू सचमुच उदारता से मुझे पूजती। मैंने तेरे सौन्दर्य को पूजा, किन्तु पिंजरे में बन्द पक्षी की तरह पूजा। तुझे उड़ना था। मैंने यदि तुझे उड़ने दिया होता तो तू अवश्य पालतू पक्षी की तरह हाथ पर आकर बैठती। अब आज आखिरी विदा!'

'किसलिए?'

'जीने के लिए कारण होता है। मुझे जीने में कोई रस नहीं रहा। इस समय मेरी ऐसी स्थिति है कि जीना और मरना एक जैसा बन गया है। देख, वह मैं तुझे बताऊँ?'

अन्दर खड़खड़ाहट हुई। फिर एक चीख सुनाई दी, वह ऐसी लगी मानो जान लेने के लिए हुई हो। जगदीश ने सारे जीवन के एकत्रित सामर्थ्य का उपयोग किया और दरवाज़े पर धक्का मारा। इससे जञ्जीर तो नहीं टूटी; पर दरवाज़ा खिसक पड़ा। जगदीश उसमें से अन्दर गया। नाथबाबा के हाथ में एक छोटी-सी प्याली थी, उसे वह मुँह की तरफ़ ले जाने का प्रयत्न कर रहा था। शान्ता ने सारा वज़न नाथबाबा के हाथ पर रख दिया था।

'तू क्यों आया?' नाथबाबा ने सख़्ती से जगदीश से पूछा।

'अरे, अरे, इस प्याली को ढुलका दो। इसमें विष है।' बहुत गिड़गिड़ाते हुए शान्ता ने जगदीश से कहा।

'विष किसे पिलाना है?' जगदीश ने पूछा।

'मुझे पीना है।' नाथबाबा ने दृढ़ता से, किन्तु हँसते हुए कहा। जगदीश को बड़ा अचरज हुआ। दूसरे को मार डालने के लिए तैयार रहनेवाला नाथबाबा खुद ही बड़ी सरलता से—बिना कुछ हिचके मृत्यु का आलिङ्गन करने को तैयार था।

'महाराज, महाराज, मुझ पर तो दया कीजिये! आप यह क्या करते हैं?' जग- ने हाथ जोड़कर कहा।

'जगदीश ! तू नाथबाबा के सामने पहली ही बार सिर झुका रहा है।' नाथबाबा ने हँसकर कहा और ज़रा प्याली ऊँची उठाई।

शान्ता के दोनों हाथ थकते मालूम हुए।

'महाराज, कहो तो मैं रोज पैर छूता रहूँ। पर यह क्या ?'

'जीवन में सुख हो तो जीऊँ ? उसके सिवा ? जीवन बहुत देख लिया। अब कुछ अधिक नहीं रहा। अब मृत्यु का सुख चखना चाहिए। आखिर में तो वह है ही। फिर वर्तमान और भविष्य के बीच का यह अभेद्य पर्दा अपने ही हाथों से क्यों न खींच डाला जाय ?'

'यह कभी नहीं होगा ! महाराज, जुगलकिशोर कहाँ है ?'

'जहन्नुम में ! तू क्यों एक भी बात मेरी इच्छा के अनुसार नहीं होने देता ?'

'जुगलकिशोर तो तुम्हारे सामने ही है। भूल क्यों करते हो ?' शान्ता ने जगदीश से कहा।

'क्या ? क्या ?' जगदीश ने दिङ्मूढ़ बन दोनों को एकटक देखकर पूछा।

नाथबाबा खिलखिलाकर हँसा और अपनी ही तरफ़ उँगली बताकर कहा—देख, जुगलकिशोर तो मैं ही हूँ।

'तुम मुझे पागल बना दोगे ! यह मुझसे माना नहीं जाता।'

'ज़िन्दगी में इतना ही काम मैं सफलता से कर सका हूँ। एक तरफ़ जुगलकिशोर बना और व्यवहार में संसार को छला। किन्तु आखिर में ही छला गया। मुझसे न जीवन भोगा गया और न बदला लिया गया। ओ हो हो ! बदला लेने के कितने मौके मैंने खो दिये ?'

अभी जगदीश के मुख पर अविश्वास था। नाथबाबा और जुगलकिशोर की उम्र में भेद था। उम्र के दस-पन्द्रह वर्ष छिपाने में कइयों को कठिनाई नहीं होती। इसमें मुख बदलने की कला जाननेवालों को तो इससे भी अधिक वर्ष छुपाना सम्भव है। फिर जुगलकिशोर कालेज में कहाँ से था ? संसार को भुलावे में डालने का यह एक अच्छे से अच्छा मार्ग था।

बातचीत में लगा देख नाथबाबा फिर मुँह तक प्याली ले आया। पर जगदीश भुलावे में नहीं पड़ा था। वह जुगलकिशोर और नाथबाबा—दोनों को खूब अच्छी तरह पहचानता था। दोनों एक ही हैं तो उसकी कुशलता बहुत अधिक बढ़ जायगी,

इसी डर से जगदीश ने नाथबाबा के हाथ की तरफ़ पूरा लक्ष्य दिया था। जैसे ही उसने प्याली होठों से छुआने को की वैसे ही जगदीश ने झपटकर हाथ से प्याली दूर फेंक दी। नाथबाबा ने हँसकर कहा—ओ मूर्ख! इसमें तो तेजाब है। देख, ये दाग।

शान्ता के पैरों पर तेजाब की दो-तीन बूँदें गिर पड़ी थीं। वह जल गई थी। पर उसने कहा—फिक्र नहीं। मैं भले ही जली।

'तुम चौबीसों घण्टे तो मेरे ऊपर पहरा नहीं रख सकते न?' नाथबाबा ने कहा।

'फिर भी रखेंगे!'

बाहर से कोई आवाज़ पर आवाज़ देता आता मालूम हुआ। सबने ज़रा शान्त होकर कान लगाया। कोई मनुष्य ज़ोर से आवाज़ दे रहा था।

'पिताजी! पिताजी! बाहर आओ न? मुझे गंडा चाहिये।'

अन्दर से ही नाथबाबा चिल्लाया—तुझे किसने ऊपर आने दिया? चलता हो! इस वक्त गंडा न बनेगा।

'पिताजी! निराश होकर जाने लायक हालत नहीं।'

'एक बार कहा, सुनता नहीं?' नाथबाबा ने धमकाकर कहा।

वह मनुष्य तो चले जाने के बदले और भी अन्दर घुस आया। नाथबाबा के गुप्त स्थान पर आज कई हमले हुए थे। क्रोध से भरकर नाथबाबा खड़ा हो गया और उस नये मनुष्य को मारने की तैयारी करने लगा। एकाएक वह रुका और बोला—अरे, तुझे किसके लिए गंडा चाहिए?

'ओ पिताजी! तुम्हारे पैरों पड़ता हूँ। चाहो तो मेरा सिर काट लो, पर मुझे गंडा तो दे ही दीजिये।'

'हाँ, हाँ, पर तुझे चाहिये किसके लिए?'

'भाभी के लिए।'

जगदीश को ऐसा लगा कि उसने इस मनुष्य को कभी देखा है।

नाथबाबा ने पूछा—तेरे भाभी कहाँ है? आसपास के गाँवों के लोगों को नाथबाबा अच्छी तरह पहचानता हुआ मालूम हुआ। बच्छराज ने उत्तर दिया—वह कोकिला भाभी! उस शहर से जो मेरे साथ आई हैं, वह।

'कौन? कोकिला! कहाँ है?' आँखें फाड़कर जगदीश ने पूछा।

'वे तो बेसुध हो गई हैं ; बोलतीं नहीं। ऐसा बुखार आया है कि कुछ कहा नहीं जाता।'

'उसे कहाँ रखा है ?' जगदीश ने पूछा।

'यहीं ले आया हूँ, पालकी में बिठलाकर। नीचे चौक में हैं।'

जगदीश सब छोड़ बाहर दौड़ा। अगले कमरे में एक-दो वस्तुओं के गिरने की आवाज़ हुई। नाथबाबा ने कहा—चल बच्छराज, मैं आता हूँ।

बच्छराज आगे चला। धीरे से नाथबाबा ने कहा—शान्ता, अब नहीं मरा जायगा।

'रश्मि ! ऐसा कौन है कि जिसके लिए जीना रसपूर्ण बन गया ?' शान्ता ने पूछा।

'मेरी पुत्री है।' नाथबाबा ने कहा।

'तुम्हारी ?' चौंककर शान्ता ने पूछा।

'क्यों चौंकती है ? जगदीश को पत्नी को मैं अपनी पुत्री मानता हूँ। ये दोनों स्वर्ग के जीव हैं। कोकिला के लिए जीना पड़ेगा।'

बच्छराज के बाद दोनों बाहर निकले। चौक के एक ढँके हुए भाग में एक पालकी पड़ी थी। उसमें कपड़े ओढ़े एक स्त्री पड़ी हुई दिखाई दी। जगदीश उसकी तरफ़ आँखें फाड़कर देख रहा था। अगर हो सकता तो वह पड़ी हुई कोकिला सहित सारी पालकी को उठाकर छाती से लगा लेता। उसने कोकिला के मस्तक का स्पर्श किया। अत्यन्त गर्म मस्तक को छूते ही वह चौंककर बोल उठा—कोकिला ! कोकिला !

प्रियतम के इस सम्बोधन में प्रियतमा के युग-युग का आवाहन था। वृद्ध मीर मंद पड़ गई आँखों से टटोलता-टटोलता तीन कोस से कोकिला के साथ आया था। कोकिला से उसे यहाँ तक स्नेह हो गया था। उसने कहा—माँ, देखो, यह कौन बुलाता है ?

कोकिला ने आँखें खोलीं, सामने जगदीश को देखा। फिर फौरन उसने आँखें बन्द कर लीं और उसके मुख पर कुछ मुस्कान झलक गई। 'इन खुली आँखों और मुस्कान के स्मरण में ही सुधि न रहे तो कैसा ?' जगदीश को विचार आया। पर अभागा मनुष्य, वह होश कैसे भूलता ? उसे तो मृत्यु की कराल रेखाएँ देखते और काल का पदा सुनते जीना होता है।

कोकिला सवेरे से ही बोली न थी। वृद्ध मीर ने उसे बुलाया। नाथबाबा के चमत्कारपूर्ण स्थान में कोकिला बोल उठेगी, ऐसा बहुतों का विश्वास था। मीर ने फिर कहा—माँ, बोलो न ?

कोकिला ने कोई उत्तर न दिया।

कोकिला के पास खड़ी राधा रो रही थी। उसे तेज़ी से आते बच्छराज और नाथबाबा ने सुना। निराधार वृद्ध की तेज-रहित आँखों को किसी का आश्रय दिखलाई न दिया। वृद्धावस्था से रुदनमय बने उसके कण्ठ से एक गीत गूँज उठा—

'तुम बिन मेरा कोई नहीं, गोपाल !'

(३४)

लालजी सेठ कौंसिल में बिना मुकाबले चुना गया। प्रसन्न-चित्त हो वह समाचार-पत्रों में अपने फोटो देखता था; और अपने प्रति लिखे गये प्रशंसात्मक शब्दों को एक बार पढ़ने से ही सन्तुष्ट नहीं होता था और बार-बार पढ़ता था। अपने को मिलनेवाले मानपत्रों के उत्तर उसने लिखवा रखे थे, वे अब याद करने पड़े थे। आज उसके मित्रों ने उसके मान में गार्डन-पार्टी का प्रबन्ध किया था। आरामकुर्सी पर बैठी विजयालक्ष्मी अभिनन्दन को आये ढेरों पत्र पढ़ने में व्यस्त दिखाई देती थी। कई बार पत्र पढ़ा गया मालूम होता तो वह अपने हाथ की सादी सोने की बँगड़ी घुमाने लगती, या छाती पर लटकते लाकेट को हिलाने-डुलाने लगती थी।

अपनी विजय के प्रति पत्नी ने, जितना चाहिये था, उतना उत्साह प्रदर्शित नहीं किया। ऐसा लगने पर लालजी ने पूछा—अरे, तू क्यों यों ठंडी पड़ गई ?

मूर्ख मनुष्य सभ्यता से भी बोले तो भी उसमें अशिष्टता मालूम होती है। शिष्ट व्यक्ति गाली भी दे तो उसमें प्रेम मालूम होता है।

विजया ने प्रश्न का उत्तर दिया—कौंसिल में तुम चुने गये हो। मैं थोड़े ही चुनी गई हूँ ?

लालजी सेठ का उत्साह ऐसे उत्तरों से मन्द पड़ता ऐसा न था। उसने आनन्द से मज़ाक किया—अभी तुझे कौंसिल में जाना बाकी है, ठीक ? तू वहाँ हो जाय तो कौन जाने क्या कर डाले ?

ऊँच-नीच करने की स्त्रियों की कुशलता का डर पुरुषों में बहुत हो गया है, इस के लिए कौन मना कर सकता है ?

'तुम तो अपनी तस्वीरें ही देखते रहते हो ; पर हमें बगीचे चलना है। इससे देर न होगी ?' विजया ने कहा।

'मैं तो कभी का कपड़े पहने बैठा हूँ। सिर पर पगड़ी पहनने की ही देर है। पता तो अभी तुम्हारा ही नहीं लगता।'

'मैं तो तैयार हूँ। मुझे कुछ नहीं पहनना है।'

अपनी पत्नी अच्छे से अच्छे कपड़े पहनकर बाहर निकले, यह कौन शौकीन पति नहीं चाहेगा ? कपड़ों की शौकीन विजया घर में भी पूरी सफाई से रहती थी। बाहर निकलने के प्रसंग में उसके कपड़े-गहने खूब भड़कीले होते थे। आज ऐसी दीप्ति का अभाव देखकर लालजी ने पूछा—इसी तरह चलना है ? और कुछ नहीं पहनना ?

'अब तुम बहुत बड़े आदमी बन गये हो ; इसलिए मुझे तो बहुत ही सादगी रखनी चाहिये।' विजया ने उत्तर दिया।

लालजी सेठ ने अत्यन्त सावधानी से पैरों से सिर तक उसे देखा ; और उसकी आँखों को विश्वास हो गया कि उसकी पत्नी के किसी भी अंग का सौन्दर्य सादगी से कम नहीं हुआ। उसका उत्साह ऐसा न था कि विचलित हो उठे, इसलिए उसने कहा—तू तो जो भी पहनेगी वह खिल उठेगा। देखो, समय हो गया ?

यह प्रशंसा विजया को पसन्द आई या नहीं, इसकी लालजी को परवा न थी। पति के कई जन्म-सिद्ध हक होते हैं, उनके अनुसार उसने विजया को मोटर में अपने साथ बिठलाया ; वह अपने सम्मान में की गई गार्डन-पार्टी में शामिल होने चल पड़ा। इस भोज का खर्च खानगी तौर पर लालजी सेठ देगा, ऐसी उसके विरोधी भले ही बातें करें, पर यहाँ तो उसे प्रतिष्ठित मेहमानों का मान मिला। सर बिहारीलाल कदाचित् ही ऐसे प्रसंगों में भाग लेते थे, तथापि आज तो उन्हें आग्रह-पूर्ण निमन्त्रण होने से वे अपनी पुत्री कुसुम के साथ पहुँचे थे। रमेश, प्राणलाल, सुखपाल, शान्तिप्रिय—ये सभी वहाँ दिखाई देते थे। जुगलकिशोर ने तो सेठ का कौन्सिल में प्रवेश ही कराया था और पैसे से तथा आतंक से विरोधियों को अलग हटाकर लालजी का मार्ग निर्भय कर दिया था ; इसलिए वह तो होने का ही ठहरा।

लालजी सेठ को आज सर बिहारीलाल के पास बैठने का मान प्राप्त हुआ था ; यह छोटी बात नहीं थी। उसने बातों के बीच पूछा—फिर उस चोरी का क्या हुआ ?

'शकदार तो इन्हीं का पड़ोसी है।' सुखपाल बीच में बोला।

'पड़ोसी नहीं, पर किरायेदार है। इसीलिए तो सेठ साहब की तरफ़ से जमानत का भी प्रबन्ध हुआ है।' शान्तिप्रिय ने कहा।

लालजी सेठ को आश्चर्य हुआ—मैं क्यों जमानत की तजवीज करूँगा? मेरा कोई सम्बन्ध नहीं।

विजया कुसुम के साथ बातचीत करने लगी।

सर बिहारीलाल ने कहा – यही बात व्यर्थ दोहराई जाती है।

'जगदीश ने चोरी की, ऐसा कहनेवाले शकर खाते हैं!' जुगलकिशोर ने कहा। विजया और रमेश उसकी तरफ़ देखने लगे।

जुगलकिशोर की यह बात सुनकर किसी ने आगे चर्चा नहीं बढ़ाई।

विजया ने मौका पाकर रमेश की तरफ़ देखा और नवीन परिचय के ढङ्ग का दिखाव करके कहा—जगदीश भाई का पत्र है।

'ऐसा? कहाँ से?' रमेश ने आश्चर्य से पूछा।

'यह खबर नहीं। पर वे कुशलपूर्वक हैं। यह समाचार कोकिला और आपको देने के लिए कहा है। आपसे तो कह दिया, पर कोकिला को किस तरह खबर करूँ?'

'मैं दो-तीन दिनों में कोकिला के पास जाऊँगा।'

इतने में जुगलकिशोर ने रमेश को खड़ा करके कहा—चोर मिल गया। जगदीश को नाहक हैरान किया।

'कौन है चोर?'

'यह आज प्राणलाल बतलायगा। उससे पूछ देखना।'

प्राणलाल सवेरे का बिहारीलाल के पास आया था। उसे एकान्त में मिलना था, पर एकान्त नहीं मिला। एक के बाद एक कई मनुष्य उनसे मिलने आते रहे। आग से बच जाने पर पिता और पुत्री का कुशल-समाचार पूछने लोग आ रहे थे। फिर एक-दो दिनों में बिहारीलाल हवा बदलने के लिए अपनी ज़मीन पर जाने को थे, इसलिए लोगों की भीड़ बढ़ गई थी। बगीचे में साथ-साथ जाकर प्राणलाल बिहारीलाल के साथ वापस मकान आया। मकान में बिहारीलाल, कुसुम, रमेश अकेले ही रहते थे। प्राणलाल ने एकान्त जगह चाही। बिहारीलाल ने कहा कि रमेश और कुसुम विश्वास को भंग करें, ऐसे नहीं हैं और ऐसी क्या छिपी बात थी कि प्राणलाल को ऐसा मांगना पड़ता?

प्राणलाल ने अपनी पगड़ी सर बिहारीलाल के पैरों में रख दी और हाथ जोड़कर कहा—साहब, गर्दन काटनी हो तो काट लो। पर मैंने गुनाह किया है।

बिहारीलाल इतना गिड़गिड़ाना देख ज़रा गुस्सा हुए। अपने पुराने विश्वासी नौकर का इतना तुच्छपन उन्हें अच्छा नहीं लगा। उन्होंने कहा—क्या करता है? पगड़ी पहन ले और ठीक तौर से बैठकर बात कर।

'साहब, अब पगड़ी आप ही पहनावें तब है। मेरी तो ज़िन्दगी धूल में मिल गई। आपसे कैसे कहूँ, यह मेरी समझ में नहीं आता।'

'प्राणलाल काका, ऐसा क्या हुआ!' कुसुम ने पूछा। उससे रहा नहीं गया।

'साहब, आज से नौकरी का इस्तीफा देता हूँ। प्राणलाल अब आपकी सेवा करने योग्य नहीं रहा।' कहकर अँगरखे की जेब में से प्राणलाल ने एक काग़ज़ निकालकर बिहारीलाल के हाथ में दे दिया। बिहारीलाल ने उसे पढ़ा और ज़रा हँसकर काग़ज़ को फाड़ डाला।

'भले आदमी! कुछ बतला तो सही या यों ही 'कसूर माफ करो—कसूर माफ करो' चिल्लाया करेगा?' बिहारीलाल ने कहा—अच्छा, तेरा बड़े से बड़ा कसूर माफ़ है, कुछ घाटा हुआ तो परवा नहीं, किसी दूसरी तरह वह पूरा हो जायगा।

'साहब, मेरे व्यापार में तो गल्ती नहीं, पर पन्द्रह हज़ार की चोरी का मामला है।'

'मैंने तो तुमसे कहा ही था। पुलिस को खबर करने में तुमने उतावली की। जगदीश रमेश का खास मित्र है। यदि ऐसा कुलीन मनुष्य दुःख में आकर भूल भी करे तो उसे सुधारने का भी मौका देना चाहिये। पुलिस तो उसे और भी पक्का गुनहगार बना देगी।' बिहारीलाल ने कहा।

यह सुन रमेश ज़रा प्रौढ़ता से बोला—नहीं साहब! जगदीश कभी चोरी नहीं करेगा।

'ठीक है।' प्राणलाल ने कहा—चोर तो मेरे घर ही में बैठा है।

'ऐसा?' बिहारीलाल ने पूछा। किसी को कुछ समझ नहीं पड़ा।

'चन्द्रकान्त ने चोरी की है।'

'ऐसा? वह व्यसनी तो बहुत हो गया है, इसका तो मुझे पता है।'

'अब लाज रखनी आपके हाथ है। आप कहें तो उसका कसूर मैं पुलिस को बतला दूँ।'

'इसके बिना क्या चलेगा नहीं?' बिहारीलाल ने पूछा।

'इसके बिना निरपराधी जगदीश पर वार आ जायगा और जुगलकिशोर इस बात की खबर पुलिस को दिये बिना नहीं रहेगा।'

'जुगलकिशोर को कहाँ से पता चला?'

'वह तो महा चालाक खटपटी मनुष्य है। उसका तो रोज़गार ही लोगों को डरा-धमकाकर पैसा लूटने का है। रास्ते चलते झगड़े-टंटों की ही फिराक में रहता है।'

'फिर अब क्या?'

'एक रास्ता है। सारे जीवन में मैं पहली बार झूठा होकर गुनाह छिपाऊँ, इसके सिवा तो इस दुष्ट लड़के के लिए हथकड़ी और सख्त सजा तैयार ही है।'

प्राणलाल बहुत ही विश्वासी था। उसकी साख बहुत ऊँची थी; उसका स्वभाव तेज, ओछा और वहमी था, परन्तु उसकी सत्य-प्रियता को सारे व्यापारी बखानते और इस कारण उसके स्वभाव की कमियाँ सह लेते। बिहारीलाल को तो उस पर पूरा विश्वास था, और एक-दो मौकों पर उसे परख देखने पर व्यापार का सारा कारबार उसी को सौंप दिया था। व्यापार में वह सिद्धहस्त माना जाता था। अपनी कुशलता के साथ ही उसे अपनी सचाई और वफादारी का अभिमान भी बहुत था। उसे जुगलकिशोर जैसे मनुष्यों को झंझटों में फँसा देखने में मज़ा आता था। एक बार मिल-मज़दूरों के झगड़े के प्रसंग में मज़दूरों के नेताओं को पैसा देकर फूट डालने की जुगलकिशोर की सूचना का तिरस्कार करते हुए प्राणलाल ने कहा था—ऐसी चालाकी और झूठ मेरे सामने नहीं चल सकती।

'प्राणलाल भाई, ज़िन्दगी में एक बार तो झूठ बोलो! इसका मज़ा जुदा ही है।' जुगलकिशोर ने कहा।

'यह मज़ा तुम्हें सौंपा। हमें तो जीभ पर सचाई और मस्तक पर ईश्वर रहे, इतना ही बस है।'

'ईश्वर का भार भी सिर पर बहुत हो जाय तो?' इतना कह जुगलकिशोर ने आलोचना करनी बन्द कर दी। पर चोरी के प्रसंग में पहले से ही चन्द्रकान्त पर [illegible]नेवाले जुगलकिशोर ने चन्द्रकान्त के व्यसनी और जुएबाज मित्रों की सहायता

से जान लिया था कि अमुक-अमुक दिनों में चन्द्रकान्त ने बहुत तादाद में रुपए बर्बाद किये थे। बैंक में से आये कितने ही नोटों के नम्बर मिलाते हुए वे चन्द्रकान्त के पास से ही अमुक-अमुक मनुष्यों के हाथ में गये थे; ऐसे भी उसे कई सबूत मिले थे। और व्यसन की धुन में चन्द्रकान्त ने कैसी सफाई से चाबियों का उपयोग कर मेज़ की दराज खोली, जगदीश की उपस्थिति और अनुपस्थिति का लाभ लेकर नोट निकाल लिये, जगदीश के सिर ही आरोप लगा दिया था, इसका उसने अपने मुख से ही वर्णन किया, और छिपे हुए प्राणलाल ने यह सुना। प्राणलाल की समझ में अब आया कि सच्चे सबूतों का प्राप्त करना, जितना बाहर सहल है, उतना घर के अन्दर प्राप्त करना सहल नहीं। जुगलकिशोर ने सलाह दी—पन्द्रह हज़ार किसी अलमारी में रात को रख दो, और सवेरे अकस्मात् खोलते यह रक़म मिल गई है, ऐसी पुलिस को सूचना देकर, मामला वापस ले लो। अपनी याददाश्त पर ही सारा दोष मढ़ दो। नहीं तो लड़का बचेगा नहीं।

विश्वास का असह्य बोझ प्राणलाल ने फेंक दिया और सर बिहारीलाल को सच्ची बातें कह दीं, और अपनी योजना के लिए उनकी सम्मति माँगी। बिहारीलाल को अपने इस वफ़ादार और विश्वासी सेवक के मान-भंग का प्रसंग बहुत दया-जनक लगा। उन्होंने उसे धैर्य दिया, समाधान की बातें कीं और सान्त्वना दी।

'प्राणलाल, मैं जल-वायु बदलने जाऊँ, इसके पहले तुमसे एक सलाह लेनी है।'

'आप आज्ञा कीजिये, मैं तैयार हूँ।'

'मुझे अब कुसुम की चिन्ता होती है, इसका विवाह हो तो अच्छा, क्यों?'

विवाह हो जाना ही स्त्रियों के लिए सबसे अच्छा मार्ग है, यह भाव रखनेवाले प्राणलाल ने कहा—मैं तो कभी का कह रहा हूँ, पर आप कहाँ मानते हैं?

'इसमें मेरे मानने की नहीं, कुसुम के मानने की बात है।'

कुसुम और रमेश ने परस्पर एक दूसरे को देखा और नज़र फेर ली। ऐसी बातें हों तो इससे सम्बन्ध रखनेवाले युवक या युवती को चला जाना चाहिये, पर इस समय दोनों में से कोई भी नहीं खिसका।

'उसका मन पूछेंगे तो काम नहीं चलेगा। बहुत स्वतन्त्रता और बहुत सलाह लेने में पंचायत खड़ी होती है।' प्राणलाल ने नवीन युग की सुन्दर दशा पर सम्मति दी।

'और उससे पूछकर ही काम चले तो?' सर बिहारीलाल ने कहा।

कुसुम का हृदय धड़कने लगा। रमेश से अधिक नहीं बैठा गया। वह खड़ा हुआ और कोने में पड़ी एक मेज़ के पास जाकर कुछ लिखने लगा। पर उसके कान बातचीत की ही तरफ़ लगे थे।

'तो फिर बातचीत का परिणाम निकल आयगा।'

'प्राणलाल, ज़रा इससे पूछो तो कि रमेश के साथ इसका विवाह करना इसे पसन्द होगा या नहीं?' कुसुम का हृदय स्नेहमय पिता से छिपा नहीं रह सका था। प्राणलाल को पूछने का काम सौंप सर बिहारीलाल खड़े हो गये और कोई भी उत्तर मिले, इसके पहले रमेश को बुलाकर कमरे के बाहर हो गये।

सर बिहारीलाल और रमेश पाँच मिनट दूसरे कमरे में बैठकर बातें करने लगे। इतने में प्राणलाल कुसुम का उत्तर लेकर उनके पास पहुँच गया—कुसुम तो कहती है कि आपकी मर्ज़ी ही उसकी मर्ज़ी है।

'ठीक। मेरे ऊपर ही भार रखो। यह रमेश भी मना कर रहे हैं।' सर बिहारीलाल ने कहा।

प्राणलाल को ऐसा लगा कि रमेश जैसा मूर्ख दुनिया में कोई है ही नहीं। उसे खुद भी कुसुम की पसन्दगी बहुत पसन्द नहीं आई। कुसुम के लिए कोई लखपती या सिविलियन होना चाहिये, उसकी यह धारणा थी; इसलिए रमेश के प्रति बिहारीलाल का विचार प्राणलाल को अच्छा न लगा। पर रमेश ऐसी लक्ष्मी का सम्बन्ध क्यों नहीं चाहता, यह उसकी समझ में नहीं आया। उसने पूछा—पर यह क्यों चूकता है?

'वह कहता है कि कुसुम का पोषण करने की उसकी शक्ति नहीं।'

'एक दृष्टि से तो यह बात ठीक भी है साहब!' रमेश के प्रति प्राणलाल का मान बढ़ गया। उसे यह विश्वास हो गया कि इसमें समझ है।

'प्राणलाल भाई, मैं अपना सुख चाहकर दूसरे को दुःख में डालूँ, यह कैसे हो सकता है? यहाँ तो राजवैभव है और मुझसे झोपड़ा भी नहीं बनवाया जा सकता।'

रमेश ने प्राणलाल की सहायता माँगी। पर ऐसी सहायता देने को इस समय प्राणलाल तैयार न था। उसने कहा—अरे, साहब की नज़र होगी तो खाली जगह में महल खड़ा हो जायगा। समझे?

'यह मैं मानता हूँ। पर इसमें साहब की प्रतिष्ठा का भी तो सवाल है। मेरा

क्या ? पर साहब की मर्ज़ी के बिना झोपड़ा बनवाने की मुझमें शक्ति न हो तो उन्हें और उनकी लड़की को मैं धोखा देता हूँ, मुझे तो ऐसा मालूम होता है।'

'ठीक। पर तुममें यदि ऐसा सामर्थ्य हो जाय तो फिर तुम स्वीकार करोगे या नहीं ?' सर बिहारीलाल ने पूछा।

'आपके साथ सम्बन्ध होना, सद्भाग्य की निशानी तो है ही !' 'हाँ' या 'ना' के बदले रमेश ने इतना बड़ा उत्तर दिया।

'तुम हम तक न पहुँचो, पर हम तुम तक तो पहुँच ही सकते हैं।' सर बिहारीलाल ने कहा। रमेश ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया।

उन्होंने कहा—तो अब अपना तम्बू भेज दो। कुछ समय में हमें जाना पड़ेगा।'

'मैं आगे जाकर व्यवस्था करूँ तो कैसा ? मुझे उस तरफ़ काम है ; जगदीश की पत्नी से मिलना है।' रमेश ने कहा।

'अच्छा, तुम वहाँ और तम्बू लगवा देना।'

रमेश बाहर निकला। कुसुम न जाने कहाँ से एकदम निकल आई और उसके सामने खड़ी हो गई।

'कहाँ जाते हो ?'

'इस समय तो कहीं नहीं जाता।'

'तो फिर यहाँ आओ ! मुझे तुमसे कुछ कहना है।'

'मुझे माफ करो ? आपने बहुत कुछ कहा है, और मैं घबरा रहा हूँ।'

अपने दोनों हाथ गालों पर रखकर कुसुम हँसी। रमेश को ऐसा लगा कि उसकी जंजीर में एक-एक कर कड़ी बढ़ती जा रही है, और बन्धन दृढ़ होता जा रहा है।

'यह घबराहट कब मिटेगी !'

'मैं कल यहाँ से जाऊँगा और कोकिला भाभी से मिलूँगा। उस बीच में शान्ति से विचार कर सकूँगा।'

'किसी का सिफारिशी पत्र तो मुझे नहीं लाना पड़ेगा न ?' कुसुम ने हँसते-हँसते पूछा। इस हास्य में जादू था।

इतने में प्राणलाल गुस्से में बड़बड़ाता बाहर निकला।

'क्या हुआ ?' कुसुम ने पूछा।

'मुझसे सभी बातों में 'हाँ' नहीं निकल सकती। साहब को न जाने क्या सूझता है?' प्राणलाल ने कहा।

'पर हुआ क्या, यह तो बताओ?'

'ठीक है, धर्म-दान करो; भारी से भारी पुण्य करो; पर यह क्या? सारी जायदाद ही धर्मादा? फिर बाद में हम क्या भीख माँगेंगे?'

'कौन सारी जायदाद धर्मादा कर रहा है?'

'साहब और कौन? मुझसे ऐसी लिखतंग पर हस्ताक्षर नहीं हो सकते। भले ही मुझे नौकरी से अलग कर दो। दो लाख रुपए अलग नहीं रख छोड़ना? ऐसा धर्म मुझे नहीं कराना!'

दरवाज़े के सामने सर बिहारीलाल दिखाई दिये। वे प्राणलाल के पास आये और उसके कन्धे पर हाथ रखकर शान्ति से बोले—प्राणलाल, तुम नहीं समझे। देखो, इधर आओ। इतना कहकर उसका हाथ पकड़ बाहर ले गये।

रमेश ने कुसुम से पूछा—साहब सारी जायदाद सार्वजनिक बना रहे हैं?

'हाँ, मुझसे पूछा था।'

'तुमने 'हाँ' कहा था?'

'क्यों नहीं? उनका पैसा है, चाहे जो करें, और फिर दान की भी कोई सीमा है?'

'तुम्हारे लिए क्या रखा है?'

'कुछ नहीं।'

रमेश सचमुच चौंक पड़ा। और बोला—फिर तुम क्या करोगी?

'कुछ नहीं। तुम हो न?'

रमेश कुसुम के सामने देख रहा था। उसे ऐसा लगा कि जैसे दान की कोई सीमा नहीं, वैसे ही प्रेम की भी कोई सीमा नहीं।

(३५)

कोकिला ने आँखें खोलीं। उसे मालूम हुआ कि वह एक स्वच्छ कमरे में चारपाई पर पड़ी है। दीपक धीमा-धीमा जल रहा था। दृष्टि डालने पर उसे आसपास जान पड़ी और कई लोग बैठे दिखाई दिये। राधा और जगदीश की भूली

आँखें उस पर लगी थीं। उसके मुख पर सन्तोष छा गया। राधा को आँख के इशारे से उसने पास बुलाया और पूछा—चित्र कहाँ है ?

जगदीश को लगा कि कोकिला उसका फोटो माँगती है। राधा ने कोकिला के तकिये के नीचे से एक चित्र निकाला ; और एक छोटी मेज़ पर ले जाकर इस तरह रख दिया, जिससे कोकिला की उस पर दृष्टि पड़ सके। यह चित्र जगदीश का नहीं था। चित्र में तो कृष्ण की रमणीय मूर्ति चित्रित थी।

'ऐसा क्यों ? जगदीश के हृदय में प्रश्न उठा। पत्नी ईश्वर की आराधना करे, यह प्रेमी पति को अखरा। कोकिला यह समझी कि ऐसा क्यों, पर कौन जाने किस कारण वह कुछ क्षण जगदीश के सामने देखती रही। वह निर्बल हो गई थी। नाथ-बाबा के आश्रम में आकर पहले दिन जगदीश के स्पर्श से खुली आँखें उसके बाद तीन दिन में खुली थीं। बातचीत तो वह किसी की सुनती ही कैसे ? मृत्यु के घोर अन्धकार के आगमन की सूचना देनेवाली डरावनी शान्ति ने सबकी नींद उड़ा दी थी। आँखें खोलकर कोकिला ने सूचित किया कि मृत्यु ने उसका जीवन पीछे लौटा दिया है। जागरण का श्रम भूलकर सबको आशा हुई कि कोकिला का जीवन फिर लौटेगा।

सार-सम्हाल करनेवाले सब एक के बाद एक कमरे में से बाहर के बड़े बरामदे में चले गये। जगदीश और कोकिला अकेले रह गये। कोकिला की आँखों की तरफ़ लगातार दृष्टि रखते-रखते जगदीश के मुख पर दया-जनक निराधारता छा रही थी। कोकिला जगदीश की तरफ़ देखकर फीकी-फीकी हँसी। जगदीश ने उसके सिर पर हाथ फेरा और अपना मुख उसके पास ले गया। बहुत ही धीरे से—केवल जगदीश ही सुन सके, इस तरह के निर्बल उद्गारों में कोकिला बोली—तुम्हें देखकर ही सोई और तुमको ही देखते-देखते जाग रही हूँ।

जगदीश ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह केवल प्रेम से कोकिला के शरीर पर हाथ फेरने लगा। प्रियतम के हाथ से अमृत बरसता था। कोकिला का शरीर ही इस अमृत का साक्षी था। कुछ ठहरकर उसने अपनी छाती पर फिरते हाथ को अपने निर्बल हाथ से पकड़ा और मानो जीवन में यही कार्य परम आनन्द देता हो, इस तरह आँखें मूँदकर हाथ के स्पर्श का आनन्द लिया। कुछ देर में उसने आँखें खोलीं और जगदीश से पूछा—यह जो चित्र रखा है, वह तुम्हें पसन्द न आया, ठीक है न ?

प्रेमीजन पारस्परिक विचार किस तरह परख लेते हैं ; यह भाग्य से ही समझ पड़ता है। जगदीश चौंका और बोला—क्यों पसन्द न आयगा ? यह तो मैंने तुम्हें भेंट में दिया था। कितना सुन्दर है ?

'इसके सिवा दूसरा विचार नहीं आया ?'

जगदीश अधिक असत्य न बोल सका। वह बोलता भी तो कोकिला उसके विचार जान गई थी। उसने कहा—मुझे एक क्षण को ऐसा लगा कि मेरा चित्र तुमने अपने पास क्यों नहीं रखा ?

'वह चित्र तो दूर है। पर तुम्हारा चित्र तो अहं ! यह रह।' कोकिला ने जगदीश का छाती पर रखा हाथ दबाया ; और आँखें मूँदकर छाती में जड़ी कोई तस्वीर देखती हो, ऐसा भाव अपने मुख पर प्रकट किया। कुछ ठहरकर उसने आँखें खोलीं और फिर बोली—और इस चित्र की मैं प्रार्थना करती हूँ कि मेरे हृदय में अङ्कित चित्र, हृदय बन्द हो जाय तो भी यह अलग न हो।

इतना कह कोकिला ने फिर आँखें बन्द कर लीं। कोकिला का वाक्य सुनकर जगदीश का हृदय भर आया। यदि वह भारी प्रयत्न न करता तो शायद रो देता। क्या कोकिला मृत्यु को देख रही है ?

ऐसा होता तो जगदीश कर भी क्या सकता था ? वह इलाज करता, सम्हाल करता, खबरदारी रखता। उसके प्रयत्नों को मृत्यु हँसकर टाल देगी ? समस्त विश्व के मनुष्यों को तैयार कर कोकिला की रक्षा के लिए वह खड़ा कर सकता तो वह यह भी करता। उसने पुण्य का पारावार कोकिला पर ढाल दिया। अपने सत्कार्यों का समस्त फल कोकिला को अर्पण कर दिया ; और ईश्वर से जीवन भर कुछ नहीं माँगा था, इसका गर्व छोड़ उसने ईश्वर से कोकिला को आराम कर देने के लिए बार-बार अभ्यर्थना की ; अब वह पुण्य, सत्काम और ईश्वर को न माननेवाला, काल के सामने खड़ा-खड़ा इनकी निरर्थकता नहीं बतलाता था।

जगदीश निराशा के गर्त में डूब गया। उसके शरीर में शिथिलता आ गई। उसे ऐसा लगा कि हाथ हिलाने या सिर ऊँचा करने की शक्ति भी उसमें नहीं रही है। उसे ऐसा लगा मानो उसे कोई गहराई में से बुला रहा हो—जगदीश ! जगदीश !!

बड़ी कठिनाई से उसने सिर उठाया। मानो स्वप्न देखता हो, इस तरह उसे नाथ-रमेश, कुसुम और कोई अनजान मनुष्य पास खड़े लगे। उसे अचरज हुआ ;

स्वप्न है कि नहीं, यह विश्वास करने में प्रयत्नशील उसकी बुद्धि ने समझा कि यह स्वप्न नहीं है ; कारण नाथबाबा ने उसे हाथ पकड़कर खड़ा किया और कहा—जगदीश, तू थोड़ी देर सो जा। हम बैठे हैं।

'तुम कहाँ से ?'

'मैं डाक्टर साहब को लेकर आया हूँ।' रमेश ने उत्तर दिया।

जगदीश खड़ा रहा। डाक्टर जाँच करके क्या बतलाया है, यह जानने की उसे उत्कण्ठा हुई। ऐसे समय आशा का एक शब्द भी लाख रुपए की कीमत का मालूम होता है। डाक्टर ने बहुत होशियारी से जाँच की और काफ़ी समय तक चिकित्सा करके बतलाया—रोगिणी अब तक कैसे ज़िन्दी रही, यह नहीं समझ पड़ता। पर अब कोई डर नहीं रहा। रोगिणी में कोई अपूर्व आत्म-बल है जिसके कारण आराम बहुत जल्द होगा।

वैद्यकीय दृष्टि से यह बीमारी आश्चर्यजनक थी। हृदय की अत्यन्त वेदना को शरीर सह न सका, इसलिए शरीर असाध्य बीमारी से ग्रस्त हो गया। हृदय को व्यथित करनेवाली स्थिति के टल जाने से रोग साध्य बन गया। इतना ही नहीं, पर आराम दिखाई दिया। हृदय और शरीर के सम्बन्ध का शास्त्रीय अन्वेषण इस युग में भी अभी बाल्यकाल में ही है। कवियों और कलाकारों के प्रेरणाजन्य ज्ञान, विज्ञानियों को देखते इस विषय में आगे बढ़ जाता है। 'दर्दे जिगर' हकीमी शब्द नहीं। रोगों की सूची में उसका नाम नहीं है। पर ऐसा कोई दर्द है, ऐसा पागल सूफी और कवि बतलाते हैं। इसे स्वीकार न करनेवाले डाक्टर-हकीम भी इस दर्दे-जिगर के कई बार शिकार हो जाते हैं, यह खास ध्यान देने की बात है।

डाक्टर का कहना सबको जँचा। जगदीश का शरीर थोड़ा आराम चाहता था। उसे आग्रह करके सामने के कमरे में सोने भेज दिया गया। इसके पहले रमेश किस तरह वहाँ आ पहुँचा था, यह जगदीश ने पूछ लिया। जगदीश पर से आरोप दूर हो गया, इसकी खबर कोकिला को देने और उसकी खबर लेने रमेश बच्छराज के गाँव तक आया था। वहाँ उसे खबर पड़ी कि सख्त बीमार हुई कोकिला को लेकर बच्छराज और राधा ओमकारियावाले नाथबाबा के पास गण्डा बँधाने गये हैं। न मिटनेवाला रोग नाथबाबा का धागा बाँधने से मिट जाता है ; ऐसा लोगों का कहना था। गूढ़ नाथबाबा ने गंडा देने में कठिनाइयाँ बढ़ाकर गण्डे के चमत्कार का लोगों पर असर कायम रखा था। मरीज़ को खुली पालकी में दो-तीन कोस तक ले आने का साहस

करनेवाले इस ग्रामीण दम्पति पर उसे बहुत क्रोध आया। पर दूसरा कोई इलाज न था। वह शहर वापस गया और सर विहारीलाल से छुट्टी लेकर एक अच्छे डाक्टर को साथ लेकर फौरन ओमकारिया चल पड़ा।

सर विहारीलाल ने कहा—हम दो दिन बाद जायेंगे। मुझे भी उस नाथबाबा ने बुलाया है। डाक्टर तो मेरे साथ होगा ही, इसलिए तुम्हें खास छुट्टी लेने की ज़रूरत नहीं। एकाध दिन वहाँ रहूँगा; इतने में तम्बू खड़े हो जायेंगे। हमारी ज़मीन भी कौन वहाँ से दूर है?

इस प्रकार संयोगों का लाभ ले रमेश डाक्टर को ले आया था। उसने भी आग्रह कर जगदीश को सोने भेज दिया, और कितनी ही देर तक खुद कोकिला की सार-सम्हाल के लिए बैठा रहा। दो घण्टे रहकर डाक्टर और रमेश सोने के लिए जगदीश के कमरे में गये। ऐसा मालूम हुआ कि जगदीश सोते-सोते किसी से बातें कर रहा हो। धीरे से दोनों अन्दर जाकर खड़े हो गये। जगदीश अकेला बोल रहा था—अकेली ही?…नहीं…फिर किसके लिए मैं जीऊँगा?…यह तो मेरी है!…तुम क्यों लिये जाते हो?…वहाँ बहुत सुख है?…ठीक…मैंने बहुत दुःख दिया…किन्तु फिर मेरा कौन?…कोकिला!…इस तरह भला हँसकर भागना चाहिये?

इतना कहकर जगदीश उठ बैठा। डाक्टर ने धीमी आवाज़ दी—जगदीश!

'ओ! मुझे बुलाया?…तो मैं साथ आऊँ न?…ना, ना! छोड़कर न जायगी। मैं न कहता हूँ…ऐसा? तो देख। कैसी पकड़ी?…अब देखता हूँ, तू कैसे जाती है!' इतना कह बिस्तर पर बैठकर जगदीश ने दोनों हाथ ऊँचे करके खींच लिये।

डाक्टर ने कहा—स्वप्न में है। जब बहुत गहरा स्वप्न होता है तो स्वप्न में ही मनुष्य चलने लगता है।

रमेश ने पास जाकर उसे हिलाया और आवाज़ दी—जगदीश! जगदीश!!

'हाँ, तुम कहाँ से आये?…' ज़रा आँखें मलते जगदीश समझा कि वह स्वप्न में था और रमेश इस स्वप्न के अनुसन्धान में वहाँ नहीं आया था; पर स्वप्न को नष्ट करने का प्रयत्न करता था। एकदम वह जाग्रत हो गया और रमेश तथा डाक्टर की पहले की उपस्थिति का खयाल आते ही वह समझ गया। उसने पूछा—कोकिला कैसी है?

'बहुत अच्छी है।' डाक्टर ने कहा—तुम अब सो जाओ!

'मुझसे सोया नहीं जाता। मुझे भयानक स्वप्न आते हैं। मैं कोकिला के पास ही बैठता हूँ।' कह जगदीश उठकर चला।

निद्रा और स्वप्न के गूढ़ रहस्यों का डाक्टर विचार करने लगा। जीवन के साथ इनका क्या सम्बन्ध है ? भूत, भविष्य और वर्तमान की सीमाओं को मिलानेवाला स्वप्न कैसा चमत्कार है ?

'यह संसार भी किसी महा जीवन का एक स्वप्न ही है क्या ?' डाक्टर विचारक बन गया।

(३६)

नाथबाबा का गुप्त माना जानेवाला कमरा अब सबकी चहल-पहल के लिए खुल गया था। नाथबाबा का जीवन-कक्ष भी खुल गया था। पहले रश्मिकान्त—विलासी, प्रेमी और धनाढ्य रश्मिकान्त—उग्र भावना और कठोर मनोबलवाली पत्नी के हृदय में प्रेम-पर्दा न डाल सका। उसकी मित्रता में आगे बढ़नेवाला शान्त, सभ्य, कम बोलनेवाला पर रसिक और चरित्रवान् विहारी शान्ता को अधिक आकर्षक लगा। छोटी-छोटी बातों, और झगड़ों से मामला बढ़ गया और आपस का मित्र-भाव नष्ट होकर प्रेम ने तिरस्कार में बदलकर विपरीत गति ग्रहण कर ली। दोनों की सहज उदारता से दाम्पत्य-जीवन को बर्बाद होने से बचाया जा सकता था। किन्तु मनुष्य ज़रूरत के मौके पर भाग्य से ही उदारता दिखा सकता है। शान्ता के पुत्र पैदा हुआ। मित्र के तौर पर बालक को खिलाते हुए प्रशंसा के लिए विहारी ने पूछा—इसका मुख किसकी तरह होगा ?

पति के सन्देहों पर घाव करके बदला लेने को आतुर शान्ता ने उत्तर दिया—तुम्हारी तरह मुख हो तो मुझे बहुत अच्छा लगेगा।

फौरन दाम्पत्य-जीवन का अन्त आ गया—इतना ही नहीं, किन्तु दोनों से भयंकर बदला लेने की वृत्ति रश्मिकान्त ने ठान ली। क्रोध से जलकर वह गुम हो गया, और जुगलकिशोर तथा नाथबाबा दोनों के रूप में संसार में उसने फिर अवतार लिया। उसके बदले का भाव सारी मानव-जाति के प्रति बढ़ गया। जुगलकिशोर के रूप में संसार के गृहस्थ जीवन पर वह आघात करने लगा ; चमत्कारी और भस्म धारण करनेवाले के रूप में वह संसार की श्रद्धा और धर्म-भावना पर प्रहार करने लगा। अँधेरे में ही जिनकी आँखें खुलती हैं, ऐसे मनुष्यों की संसार में कोई कमी नहीं है। ऐसे मनुष्यों का पूरा उपयोग कर उसने वैर को सन्तुष्ट करने का प्रयत्न किया। फिर भी उसे अपने

लम्बे और सफल प्रयत्नों में निष्फलता की छाया दिखाई पड़ा करती थी। पत्नी और मित्र पर आघात करने का मौका आने पर उसके हाथों में ऐसी कोई शिथिलता समा जाती थी कि उसे अपने प्रति घृणा हो जाती थी। प्रत्येक मौके में अधिक से अधिक वैर सुलगाकर वह आगे बढ़ता था; पर बदला भरा हाथ उठाते ही उसकी वैर-वृत्ति तृप्त बन गई मालूम होती अथवा वह पक्षाघात के असर में दिखलाई देती थी।

बहुत दिनों बाद वह समझा कि संसार की दुष्टता उसे ही विराम देने का प्रयत्न कर रही है। प्रेम के नाम पर विलास भोगनेवाला प्रेमी, पशु बनकर आखिर थक जाता है; और पुरानी आदत से खिंचते हुए भी विलास से भड़कता ही रहता है। दुष्टता में रहनेवाला राक्षस संत नहीं बन जाता, किन्तु अपनी दुष्टता से अन्त में डरकर कभी विराम तो चाहता ही है। उसका आश्रित डाकू किसान बन गया था, उसका स्नेही मित्र गुनाहों की खबर देने के रूप में बदल गया, इतना अधिक संघर्ष करने पर भी मानव-जाति की वृत्ति ऊर्ध्वगामी तो नहीं? ऐसा उसे लगा। बदला लेने का उसने अन्तिम निश्चय किया; और मित्र को मारने के लिए जाने पर वह अपनी छुरी तोड़कर वापस आ गया और उसे ऐसा मालूम हुआ मानो वह अकेला डरता है। पत्नी को मारने जाने पर संसार से बदला लेने को तैयार हुए जगदीश को उसने अपने साथ लिया। उसकी निष्फलता ने उसे अधीर बनाया। और आखिरी प्रहार में सफलता मिलने के लिए वह भयानक पागलपन के आवेश में हुआ। किन्तु प्रहार करने के लिए उठा हुआ हाथ उसके साथी ने ही खींच लिया।

जगदीश के प्रति उसका आकर्षण उसे लुभाता था। कितने ही मनुष्य दोष रहने पर भी स्नेह करने के योग्य रहते हैं। उनका दिखाव या स्वभाव स्नेह की लहरें उत्पन्न करता है। असफल जगदीश जीवन की सरलता का एक सुन्दर नमूना था। विचारों और आचारों का एक जगह समावेश करने लिए अशक्त समाज में कठिनाई से तैरता यह तारा था, इसकी व्यग्रता रस उत्पन्न करनेवाली होती थी। आत्मभोग के किसी क्षण में कोकिला को पुत्री के तौर पर स्वीकार करने का जुगलकिशोर का मन हुआ था। उसने इस वृत्ति के उत्पन्न होने पर अपने हृदय को वचन भी दिया था। ऐसे कई वचनों को जुगलकिशोर के रूप में उसने भंग भी किया था। किन्तु कोकिला और जगदीश के प्रेम के पागलपन में उसे कुछ-कुछ प्रेम-आदर्श मिल गया था। और प्रेम तथा उसकी ... में विश्वास खोने पर भी कोयले की खान में चमकते हुए हीरे की तरह इस

अपवाद का और अधिक निरीक्षण करने का उसका मन हुआ था। उनके प्रेम के पागलपन में उसे एक यह शिक्षा मिली कि प्रेम में प्रतिशोध नहीं होता आत्मभोग होता है। स्वार्थ का बांध, प्रेम को बाधा नहीं दे सकता। प्रेम के साथ उदारता का अस्तित्व भी रखना पड़ता है। सनम की बेवफ़ाई के गीत गानेवाले सूफ़ी सनम को ही खोजने में क्या जीवन नहीं बिताते?

अन्दर के कमरे में नाथबाबा और जगदीश दोनों बैठे थे।

'आज सर बिहारीलाल को यहां फिर आना है। पर वह अभी तक आते नहीं मालूम होते?' नाथबाबा ने पूछा।

'गाँव के रास्तों में गाड़ी बराबर नहीं चलती। यदि गाँवों के रास्ते सुगम हो जायँ तो बहुत-सी कठिनाइयाँ कम हो सकती हैं।' जगदीश ने उत्तर में एक ग्राम्य-जीवन का प्रश्न उपस्थित किया।

'तुझे गाँव बहुत पसन्द मालूम होता है।'

'जी हां। मेरा गाँव छोड़ने का मन नहीं होता।'

'कोकिला अब ठीक हो गई है। वह तुझे शहर में खींच ले जायगी तो?'

'वह तो जहां खींचेगी वहां मैं जाऊँगा। पर वह राधा के गाँव की बहुत प्रशंसा करती है।'

'फिर तेरा क्या विचार है? लालजी सेठ के दो-तीन पत्र आये हैं। उसके सेक्रेटरी के तौर पर रहने में क्या अड़चन है?' साधु ने कहा।

'महाराज, मुझे तो दो-तीन बीघा ज़मीन दे दो। कुछ में बगीचा लगाऊँगा और कुछ में खेती करूँगा।' जगदीश ने कहा।

'तू भी धुनी मनुष्य है! अफसरी खोई जो अब मिल नहीं सकती। पर खेती में पड़ेगा तो देश का नेता बनने की भी फुर्सत नहीं रहेगी।'

'महाराज, मुझे नेता नहीं बनना। किसान बनूँगा, बस!'

'तू इनकार करेगा तो विजयालक्ष्मी मर ही जायगी, समझे!' हँसकर साधु ने कहा।

'बिहारी!' जगदीश के मुख से उद्‌गार निकल गये।

सर बिहारीलाल, रमेश और कुसुम वहां आ पहुँचे। दूर कोने में शान्तागौरी छ पढ़ रही थी, वह भी पास आई। उसने कुसुम को अपने पास बिठलाया। नाथ-

बावा ने हँसकर बिहारी की तरफ़ देखा। बिहारीलाल ने भी मुसकराते हुए कहा—किसी-न-किसी तरह मुझे मरना है।

नाथबावा खिलखिलाकर हँस पड़ा और बोला—बिहारी, कहे न कहे, पर तेरी पुत्री, शान्ता को तो बहुत प्यारी लगती है।

शान्ता समझ गई। पर वह कुछ बोली नहीं। रश्मि के हास्य से वैर लुप्त हो गया था। उत्तर न देने पर शान्ता ने बिहारीलाल से पूछा—कुसुम का विवाह कब करना है?

'दो महीने में। रमेश कहता है कि उसकी कोकिला भाभी जब तक पहले की तरह शहर वापस न पहुँचेगी तब तक विवाह नहीं होगा।'

रमेश उठकर चलने लगा, किन्तु उसे रश्मिकान्त ने बुलाया—रमेश, उस मृग-चर्म के नीचे पत्र पड़ा है, उसे ज़रा उठा तो लाओ, चाहिए।

रमेश वह पत्र ले आया और उसे रश्मिकान्त के हाथ पर रख दिया।

'यह किसकी दस्तावेज है, यह तू जानता है न?'

'जी हाँ, मुझे पता है। साहब ने बहुत-सी जायदाद आपको लिख दी है।'

'देख, यह जायदाद मैं तुझे और कुसुम को फिर सौंपता हूँ।'

कहकर साधु ने दस्तावेज के टुकड़े-टुकड़े कर दिये। यह देख सब आश्चर्य में डूब गये। सर बिहारीलाल ने कहा—बीस वर्ष पहले कहीं ऐसी उदारता सीखी होती तो?

'तो आज का तीव्र आनन्द कहीं भोग सकता था?' साधु ने कहा।

जगदीश और रमेश दोनों वहाँ से कोकिला के कमरे में गये। कुसुम और शान्ता भी बगीचे में घूमने चली गईं। बच्छराज की सहायता से फूल तोड़ते हुए पीयूष और अमर के साथ इस सुन्दर कार्य में ये दोनों भी शामिल हो गईं।

राधा कोकिला के पास बैठी थी। वह जगदीश और रमेश के आने पर उठकर चली गई। उसका पिता भूपताजी उससे मिलने आया था।

कोकिला कुर्सी पर बैठी थी। उसका मुख मुर्झाया हुआ था, फिर भी पुराना लड़कपन मुख पर आकर छा गया था। रमेश को देखकर उसने कहा—रमेश भाई, वापस जाओ! अकेले क्यों आये?

'अकेला कहाँ हूँ! जगदीश मेरे साथ है न?'

'मैं यह नहीं देखना चाहती? तुम अकेले क्यों आये? कुसुम के बिना आओगे अपने कमरे में नहीं घुसने दूँगी।'

'तुम इसे क्यों हैरान करती हो ? अभी विवाह तो हो जाने दो!' जगदीश बोला।

'विवाह होने के बाद यह मुझे या तुम्हें क्या फिर हैरान करने देंगे, ऐसा समझते हो ? वह तो इनका पक्का है। आज विवाह करोगे तो आज ही करवा लेंगे।' कोकिला ने कहा।

थोड़ी देर बात-चीत करने पर शाम हो गई। रमेश खुली हवा में घूमने कमरे से बाहर चला गया। कुछ ठहरकर कोकिला ने भी अगले कमरे के छज्जे पर जाने की इच्छा की। जगदीश ने धीरे से उसे खड़ा किया। अभी कमज़ोरी थी, इसलिए किसी का सहारा मिलने पर ही वह आराम से चल सकती थी। पति के हाथ के सिवा सम्पूर्ण भार जिस पर छोड़ दिया जाय, ऐसा सहारा और कहाँ मिल सकता है ? कमरे के दरवाज़े के आगेवाला अगला कमरा खाली दिखाई दिया। बड़ी और खाली जगह के एकान्त में मन में उमङ्ग उठती है। कोकिला ने अपना सिर जगदीश के कन्धे पर रख दिया। सामने के कमरे के किवाड़ के आयने पर शाम के समय का उनका धुँधला प्रतिबिम्ब पड़ रहा था। कपोल का सामीप्य चुम्बन-प्रेरक है, यह रसमीमांसक कहते हैं, और आयने की सृष्टि, मूक होने से बोलते हुए प्रेमियों की रस-पूर्ति करती है।

जगदीश ने बहुत दिनों बाद कोकिला के अधरों का चुम्बन किया।

कोकिला एकाएक हँस पड़ी और ताली बजाकर बोल उठी—यह आयना नहीं है। यह तो कुसुम बहिन और रमेश हैं।

सचमुच, रमेश और कुसुम ही सामने कमरे के दरवाज़े में एक दूसरे को सहारा दिये खड़े थे; और संध्याकाल के धुँधले प्रकाश में जगदीश और कोकिला ने अपनी आकृति को आयने में पड़ते प्रतिबिम्ब को अपना समझकर भूल की थी। मुग्ध युगल का भयपूर्ण—अनुभवहीन चोरी जैसा स्नेहोपचार स्नेहप्रगल्भ कोकिला ने पकड़ लिया। जगदीश के चुम्बन लेने पर, आयने में ध्यान से देखने पर कोकिला ने दोनों के बीच होता आलिंगन देखा और पहचाना। इसलिए उसने हँसकर आवाज़ दी—पकड़े गये चोर की तरह। कोकिला का स्वर सुनकर कुसुम और रमेश फौरन गायब हो गये।

इसी समय नीचे से मीर ने नित्य नियम के अनुसार एक गीत गाना शुरू किया:—

मीरा भक्ति करे प्रकट की
नाथ तुम जानत हो सब घट की।

संसार की स्नेहमयी मीरा के लिए उसका कृष्ण प्रकट हुआ।

× × ×

पर यह कामना अपूर्ण ही रह जाती है। अपने अप्रकट कृष्ण की भक्ति करत विजयालक्ष्मी एक हाथ की सोने की बँगड़ी दूसरे हाथ से फेरते हुए उसके वर्तुल जगदीश का चित्र देखती थी। किसी-किसी समय जगदीश लालजी सेठ की नौकर स्वीकार किये बिना ही, उसे भाषण लिख देता था, यह बात ठीक थी। ऐसे मौकों प जगदीश और कोकिला अपने पुराने मकान में ही रहने जाते और विजया के मेहमान बनते थे।

× × ×

सुखपाल और शान्तिप्रिय अभी भी आगे-आगे घूमते हैं जिनकी कुसुम के सा विवाह करने की तीव्र इच्छा थी। तथापि वह नहीं मिली तो वे चुपचाप बैठ रहते ऐसी भीरु वृत्ति उन्होंने कभी धारण नहीं की। ईश्वर ने इसका बदला दिया, औ प्रत्येक को योग्य युवती मिलने पर गृह-संसार का देश-सेवा में क्या स्थान है, य उन्होंने अपने दृष्टान्त से देश को दिखा दिया।

× × ×

और मनोहर? रश्मिकान्त से उसका मिलना स्वीकार न हो सका। उसने सार इतिहास गुप्त रहा! *उसकी जायदाद तो थी ही। ज़मीन और आश्रम के* हू, क अपने वारिस को सौंपने के बजाय रश्मिकान्त ने सब कुछ अपने आत्म-वारिश जग दीश को सौंप दिया। मनोहर ने भी कुछ दिनों में कुसुम को लक्ष्य कर कहा, 'मैं सुखी हूँ यह कौन कहता है? और दुखी हूँ, इससे भी अब क्या?' आखिर, सबकी सलाह मान एक लड़की से विवाह कर उसका नाम उसने कुसुम रखा। इस तरह यादगारी ताज़ी रखने में कोई रसिकता नहीं है, ऐसा कौन कहेगा?
